राम चमक रहे भानु समाना

श्री राम उवाच–21

सूर्य नमस्कार

आचार्य श्री रामलाल जी म.सा.

श्री राम उवाच–21

सूर्य नमस्कार

आचार्य श्री रामलाल जी म.सा.

प्रकाशक
साधुमार्गी पब्लिकेशन
श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ

श्री राम उवाच–21

सूर्य नमस्कार

आवृत्ति	:	प्रथम संस्करण, जुलाई 2021 4000 प्रतियाँ
मूल्य	:	₹ 100/-
प्रकाशक	:	**साधुमार्गी पब्लिकेशन** अन्तर्गत - श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ समता भवन, आचार्य श्री नानेश मार्ग, श्री जैन पी. जी. कॉलेज के सामने, नोखा रोड, गंगाशहर, बीकानेर-334401 (राज.) ☎ 0151-2270261, 3292177, 2270359 e-mail : ho@sadhumargi.com visit us : www.sadhumargi.com
ISBN No.	:	978-81-951493-5-3
मुद्रक	:	**सांखला प्रिंटर्स** विनायक शिखर, शिवबाड़ी रोड बीकानेर-334003 (राज.)

'सूर्य नमस्कार' में छिपा है संदेश

बहुत से व्यक्ति प्रतिदिन सूर्य नमस्कार करते हैं। अधिकांश को यह जानकारी नहीं कि वे ऐसा क्यों करते हैं। उनमें से कुछ परम्परागत पूजा-अर्चना मानकर उससे ऊर्जा प्राप्त करने के लिए ऐसा करते हैं तो कुछ सर्वश्रेष्ठ योगासन समझकर। सबकी अपनी-अपनी मान्यता।

मान्यताएं अपनी जगह। दरअसल 'सूर्य नमस्कार' कुछ संदेशों का निमित्त मात्र है। वह अपने पीछे कई संदेश समेटे हुए है। जरूरत है उस संदेश को समझने की... उसे जानने की... उस पर अमल करने की... यह संदेश है सूर्य को नमन करने का। नमन करने का यानी लचीला बनने का... सशक्त बनने का... वेदनामुक्त बनने का...

जिसने उस संदेश को जान लिया, जो उसे समझ गया, वह अपने आपको लचीला, सशक्त और वेदनामुक्त तो बनाता ही है, अपने हृदय को प्रकाशपुंज से संबद्ध करके आंतरिक ऊर्जा भी प्राप्त करता है। जिसने इस छिपे हुए संदेश को अपने व्यवहार में उतार लिया, उसका सम्यक् निर्वहन कर लिया, वह लक्ष्य की दिशा में तेजी से बढ़ जायेगा। न सिर्फ तेजी से बढ़ेगा वरन् उसे प्राप्त भी करेगा। फिर कोई बाधा उसकी राह में रोड़े नहीं अटका सकती। फिर कोई भी मुश्किल उसे विचलित नहीं करेगी। फिर कोई कठिनाई उसके उत्साह को मंद नहीं कर पायेगी। ठीक वैसे ही, जैसे सूर्य की राह रोकने में कोई शक्ति सफल नहीं हो पाती है।

इसे थोड़ा और स्पष्ट समझें। सूर्य नमस्कार में शरीर को झुकाना होता है, मोड़ना होता है, लचीला बनाना होता है। इस बात को ही ध्यान में रखना है। केवल सूर्य नमस्कार के समय ही नहीं। जीवन के प्रत्येक पल में। प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में वह समय आता है जब उसे झुकने की जरूरत पड़ती है। जब उसे लचीला बनने की आवश्यकता होती है। जब उसे मुड़ना होता है। उन समयों में जो अपने आपको झुका लेता है, अपने आपको मोड़ लेता है, खुद को लचीला बना लेता है, वह स्वस्थ रहता है, सुखी रहता है और अपने लक्ष्य को प्राप्त करता है।

ऐसा नहीं है कि सूर्य का यह संदेश केवल दूसरों के लिए है। ध्यान देने वाले को पता चलेगा कि सूर्य खुद इन पर अमल करता है। वह भी झुकता है। उत्तरायण में उत्तर की ओर और दक्षिणायन में दक्षिण की ओर। सूर्य के संदेश को समझकर हम भी नमें। हम नमें बड़ों के प्रति। हम नमें व्यक्तियों के प्रति। हम नमें प्राणिमात्र के प्रति। हम नमें भगवान के प्रति। हम नमें महावीर के प्रति। हम नमें सभी तीर्थंकरों के प्रति। किसी को नमन करते समय, किसी के सामने झुकते समय ध्यान रहे कि वह दिखावटी न हो। नमन हृदय से हो। अन्तरात्मा से हो। सच्चे मन से हो। सच्चे मन से किया गया एक बार का नमन भी निर्वाण की प्राप्ति में सहायक बन सकता है। क्योंकि यह केवल किसी व्यक्ति को नमस्कार नहीं है। केवल किसी देव या भगवान को नमस्कार नहीं है। यह भीतरी तेज और शक्तियों को नमस्कार है।

सूर्य नमस्कार में छिपे संदेश की तरह ही लोग अपने भीतरी तेज और शक्तियों से भी अनजान रहते हैं। भीतरी तेज और शक्तियों का बोध करना है तो लीजिए आचार्य श्री रामलाल जी म. सा. का सान्निध्य। आचार्य श्री इनका बोध कराते रहते हैं। संदेश देते रहते हैं। आचार्य श्री के ऐसे ही संदेशों से भरी है पुस्तक '**सूर्य नमस्कार**'। आचार्य श्री का यह संदेश प्रवचनों के रूप में जोधपुर में सन् 2019 में सम्पन्न चातुर्मास के दौरान एवं उसके पश्चात् आमजन को प्राप्त हुआ था। 2019 में प्रवचन के रूप में प्राप्त संदेशों को पुस्तक के माध्यम से जन-जन तक पहुंचाने की कड़ी में यह आठवीं और अंतिम पुस्तक है।

इसके प्रकाशन में गलतियों से बचने का तो पूरा प्रयास किया ही गया है, भाव भी वही रखने का प्रयास है, जो आचार्य श्री ने व्याख्यान फरमाते हुए व्यक्त किये थे। सारी सतर्कता के बावजूद आचार्य श्री के भावों को जस-का-तस व्यक्त करने में हमसे कोई चूक हो गयी हो तो यह हमारी कमी है। अपनी इस कमी के लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं। क्षमा के साथ हम यह भी चाहेंगे कि पाठक हमारी गलतियों को हमसे बतायें, जिससे भविष्य में हम उन गलतियों से बच सकें। हम उनके आभारी होंगे जो किसी भी प्रकार की त्रुटि से हमें अवगत करायेंगे।

संयोजक

साधुमार्गी पब्लिकेशन

संघ के प्रति अहोभाव

हे पितृ तुल्य संघ! हे आश्रयदाता संघ!

संसार के प्रत्येक जीव की रक्षा के लिए सतत प्रयत्नरत संघ! तुम्हारी शीतल छांव तले हम अपने परिवार के साथ तप-त्याग से युक्त आध्यात्मिक, सुखद जीवन जी रहे हैं। तुम्हारे ही आश्रय में रहकर हमने अपने नन्हें चरणों को आध्यात्मिकता की दिशा में बढ़ाया है। तुमने ही हमें आत्मा के अन्वेषण हेतु प्रेरित किया। तुम्हारी ही प्रेरणा से प्रेरित होकर हमने अपने जीवन को सन्मार्ग की ओर बढ़ाया है। इस हेतु हम संघ का अभिवादन करते हैं।

संघ ने हम अकिंचन को इस पुस्तक '**सूर्य नमस्कार**' के माध्यम से सेवा का अनुपम अवसर प्रदान किया। इस हेतु हम अपने आपको सौभाग्यशाली समझते हैं। अन्तर्भावना से संघ का आभार व्यक्त करते हुए यह विश्वास करते हैं कि भविष्य में भी परम उपकारी श्री संघ शासन हमें सेवा का अवसर प्रदान करता रहेगा।

- अर्थ सहयोगी -

राजदेवी जयचन्दलाल डागा चैरिटेबल ट्रस्ट
बीकानेर

।। सेवा है यज्ञकुण्ड, समिधा सम हम जलें।।

विषयानुक्रमणिका

क्र.सं.	विषय	पृष्ठ संख्या
1.	अहं नमे तो अहं जगे	7
2.	स्वाद चखा जब उपशम रस का	18
3.	बजे अभय की शहनाई	30
4.	अपने घर की देहरी में	42
5.	बरसे चाहे घनघोर हथौड़े	53
6.	यह वक्त है कहानी लिखने का	72
7.	दाता कर दातारी	84
8.	एक परत जो दिल को भाती	100
9.	श्रम हमारी साधना	112
10.	चाह नहीं तो राह सही	125
11.	भक्ति से हृदय हो भाव विभोर	139
12.	नये पथ का निर्माण करें हम	148
13.	महावीर का मंगल पथ	160
14.	खोलें आँख अस्तित्व की	170

1

अहं नमे तो अहं जगे

श्री सुपार्श्व जिन वंदिये...

श्री सुपार्श्वनाथ भगवान को वंदन करने की बात कही गई है। ललना को प्रेरित किया गया है। ललना अर्थात् मति, बुद्धि, चेतना। उसको प्रेरित किया गया कि सुपार्श्व जिन भगवान के चरणों में तू वंदन कर, अपने आपको नमा ले। नमन कर।

बुद्धि तर्क का उदय करने वाली होती है। उसने तर्क पैदा किया कि 'कसट्ठा' यानी किसलिए? सुपार्श्वनाथ भगवान के चरणों में वंदन करें तो किसलिए? वहां वंदन करने से, उनके चरणों में वंदन करने से मुझे क्या लाभ होगा? मुझे क्या फायदा होगा?

इसका उत्तर है कि यह सुख और सम्पत्ति का हेतु है। तीर्थंकर देवों के चरणों में वंदन करना सुख और सम्पत्ति का हेतु है। उससे सुख और सम्पत्ति प्राप्त होती है। दूसरा हेतु बताया गया 'भव सागरमा सेतु' अर्थात् संसार सागर को पार करने के लिए सेतु के समान है। उसके आधार पर हम भव सागर को पार कर सकते हैं। वैसे शरीर को नौका कहा गया है और इधर वंदना को नौका कहा गया है। सेतु कहा गया है। सेतु का अर्थ होता है, पुलिया। जिसके आधार पर एक तरफ से दूसरी तरफ जाया जा सकता है। वंदन संसार सागर का सेतु है। संसार के इस किनारे से हम उस किनारे तक, उस किनारे पर पहुंच सकते हैं।

यह बात वंदना के संदर्भ में बताई गई है। यह 'नमन से निर्वाण' की बात को पुष्ट करती है। एक बार भी सच्चा नमन हो जाए तो निर्वाण की प्राप्ति हो जाए। जब तक निर्वाण की प्राप्ति नहीं होती है तब तक निर्माण का कार्य होता है। नमन, निर्माण और निर्वाण। नमन के फल रूप से प्राप्ति निर्वाण है। एक प्रश्न खड़ा होता है कि वंदना से निर्वाण होगा कैसे?

इस पर विचार करते हैं तो समाधान मिलता है। समाधान मिलता है कि बिगाड़ करने वाला, बखेड़ा करने वाला अहंकार है। हमारे जीवन में कहीं भी त्रुटि पैदा करने वाला, लोगों से झगड़ा पैदा कराने वाला, बखेड़ा पैदा कराने वाला अहंकार है, इगो है। वह लड़ाई मोल लेकर आता है और बिगाड़ करता है। नमन करने से अहंकार नमता है। जब अहंकार नम गया तो निर्वाण की प्रक्रिया चालू हो गई। फिर बहुत आसानी से निर्वाण होगा।

एक व्यक्ति कन्सट्रक्शन का कार्य कराना चाह रहा था। उसने नींव खुदवाई लेकिन सरकार की तरफ से रोक दिया गया कि तुम यहां निर्माण नहीं कर सकते। दुविधाएं खड़ी हो गईं। सरकारी खाना पूर्ति होने के बाद निर्माण चालू हो जाता है। सरकारी रुकावटों की तरह हमारे अहंकार की रुकावट भी आ जाती हैं। यहां भी यदि नींव खुदाई है तो वह पड़ी रह जाएगी। उस पर निर्माण नहीं हो सकता। निर्माण तभी होगा जब सरकारी खाना-पूर्ति की तरह अहंकार की खाना-पूर्ति होगी। जब अहंकार की खानापूर्ति होगी तो निर्वाण हो जाएगा।

बहुत प्रसिद्ध उदाहरण है बाहुबलि जी का कि छोटा-सा अहंकार उनके कार्य में बाधक बना हुआ था। एक छोटा-सा अहंकार। जिसको देखें तो कोई मायने नहीं था किंतु माइनर रुकावट भी मायने रखती है। एक छोटा-सा तार भी अलग हो जाए तो बिजली का फ्लो जो आगे बढ़ने वाला है, रुक जाएगा। एक छोटा-सा तार आगे-पीछे हो जाए तो चलती हुई गाड़ी रुक जाएगी। ऐसा नहीं सोचें कि छोटा-सा दोष क्या रुकावट पैदा करेगा।

पैर में लगा एक छोटा-सा कांटा हमारी चाल को रोक देता है। बाहुबलि जी के छोटे भाई, लघु भ्राता ऋषभदेव भगवान के पास पहले दीक्षित हो गए थे। तीर्थंकर देवों के शासन की मर्यादानुसार जो पहले दीक्षित होता है, वह बाद में दीक्षित होने वाले के लिए वंदनीय-पूजनीय होता है। इस सम्बंध में बाहुबलि जी के मन में एक छोटा-सा भाव था, उनका विचार था कि मैं साधना कर लूं। मुझे केवलज्ञान प्राप्त हो जाए उसके बाद भगवान के समवसरण में, भगवान के चरणों में उपस्थित होऊं ताकि मुझे उन छद्मस्थ मुनियों को नमस्कार नहीं करना हो। अन्यथा उनको वंदना करनी होगी। यह एक छोटा-सा विचार किसको रोके हुए था? (प्रतिध्वनि- केवलज्ञान को) वह बहुत बड़ी उपलब्धि को रोके रखा था। थोड़ा हम विचार कर लेते हैं, यहां पर हम निर्वाण चाहते हैं। क्या करना चाहते हैं? आप कहेंगे कि मोक्ष चाहते हैं। बोलना बहुत आसान है, पर हम मोक्ष किसके

भरोसे जाना चाहते हैं? भाग्य-भरोसे? भागचंद जी किसके भरोसे?

भाग्य-भरोसे! भाग्य-भरोसे काम होता है क्या? भाग्य-भरोसे बैठे रहेंगे तो मोक्ष नहीं मिलेगा। निर्माण करते हुए निर्वाण तक जाना पड़ेगा। हम सीधी छलांग लगाना चाहें जैसा की बाहुबलि जी विचार कर रहे थे कि छलांग लगा लूंगा, केवलज्ञान हो जाएगा तो ऐसे केवलज्ञान नहीं होता। ऐसे में उन्हें केवलज्ञान हुआ क्या? वे 12 महीने तक खड़े रहे। उनको नहीं हुआ। भरत चक्रवर्ती को हुआ तो वे कितनी देर खड़े रहे थे? कितनी देर खड़े रहे? शरीर पर वस्त्रों-आभूषणों को सजाया जा रहा है। एक अंगूठी गिरी और अंगुली सूनी लगने लगी, फीकी लगने लगी। उन्होंने सोचा कि यह क्या? क्या यह सारी रौनक बाहर की है? यह बाह्य पदार्थों की रौनक है? रत्नों और आभूषणों की है? उन्होंने दूसरी अंगूठी उतारी, तीसरी उतारी। एक-एक कर उतारते गए और शरीर को देखते चले गए। अंगूठियों को देखते हुए चले गए। शरीर के अवयवों को देखते हुए चले गए। उनके मन में यह विचार पैदा हुआ कि इस रौनक को पाने के लिए, इस रौनक के लिए मन बेताब बना रहता है। इस रौनक में हम अपनी रौनक को भुला बैठते हैं।

उनका मन उद्वेलित हुआ कि मेरी रौनक क्या है? कैसी है आत्मा की आभा? हम भक्तामर स्तोत्र से अनुभव करें। वहां बताया गया है कि मेरा रूप क्या है? यह तो पौद्गलिक है। यह आभा पुद्गलों की है। मेरी आभा कैसी? भगवान आपकी छवि जिसने एक बार देख ली, वह दूसरी तरफ देखता है तो कहीं पर भी उसकी निगाहें रुकती नहीं हैं। वापस कहां आती हैं निगाहें? (प्रतिध्वनि- भगवान पर) दूसरी जगह निगाहें जाती हैं तो मन भरता नहीं है। मन भर नहीं पा रहा है। कहीं भी ठहराव मिल नहीं पा रहा है। वस्तुत: जिसने अन्तर् की छवि देख ली वह फिर बाहर क्या देखे। जिसने भीतर की छवि को निहार लिया, जिसने आपकी छवि को देख लिया, अब वह बाहर क्या देखे? देखने जैसी चीज बाहर है कहां? है ही नहीं जहां पर मन विराम ले। मन विराम नहीं लेता है। हमारी आंखें दौड़ती रहती हैं। हमारी आंखें चपल बनी रहती हैं। कभी इधर देखती हैं, कभी उधर देखती हैं। दृश्य पदार्थ को देखने में वह लालायित बनी रहती हैं किंतु जब मन तृप्त हो जाए, अपने भीतर की छवि को देख लिया गया, परमात्मा की छवि को देख लिया गया तो यह मन, ये आंखें कहीं भी दौड़ती नहीं हैं। उनको विश्रांति मिल गयी।

वैसे ही भरत चक्रवर्ती विचार करने लगे कि बाहर की रौनक में मैं आज तक उलझा रहा। मेरा अपना रूप क्या है? जैसे ही अपने रूप की तरफ उनका ध्यान गया, अध्यवसाय बढ़े और वे क्षायिक श्रेणी पर आरूढ़ हुए। मोह कर्म को नष्ट किया। मोह कर्म नष्ट हो अध्यवसाय और आगे बढ़े कि तत्काल ज्ञानावर्णीय, दर्शनावर्णीय, अंतराय घाती कर्मों को क्षय कर दिया। नष्ट कर दिया। युगपत, एक साथ तीनों घाती कर्मों का क्षय हो गया। केवलज्ञान और केवलदर्शन की ज्योति से आलोकित हो गए। अब मालूम पड़ा कि मेरा रूप क्या है? अब ज्ञात हो पाया कि मेरी आभा क्या है?

लोगस्स का पाठ किस-किस को याद है?

'चंदेसु निम्मलयरा, आइच्चेसु अहियं पयासयरा'

क्या अर्थ होता है? 'चंदेसु निम्मलयरा' यानी चंद्रमाओं से भी। ध्यान रहे, चंद्रमा से नहीं, चंद्रमाओं से भी। बहुवचन है। सारे चंद्रमाओं से भी जो निर्मल है और सारे सूर्यों से भी प्रकाशमान है। सारे सूर्यों से भी जो अधिक प्रकाशवान है। हमने सूर्य से बढ़कर और कोई प्रकाशवान चीज देखी नहीं। आपने चाहे कितने भी रत्न को देख लिया, मणियों को देख लिया हो किंतु सूर्य से ज्यादा प्रकाशवान और कोई चीज नजर आई क्या? (प्रतिध्वनि- नहीं) नहीं ना! केवलज्ञान को उससे भी ज्यादा, उससे भी अधिक प्रकाशवान बताया जा रहा है। कैसे समझेंगे इसको? कैसे समझ में आएगा? एक नहीं सारे सूर्यों के प्रकाश से भी ज्यादा। जब केवलज्ञानी विराजमान होते हैं तो उनकी तरफ देखना क्या हमारे लिए संभव हो पाएगा? (प्रतिध्वनि- नहीं)

सूर्य को आंखों से देखा जा रहा है क्या? उगते हुए सूर्य को तो फिर भी देख लें किंतु भरी दोपहरी के सूर्य को, जिस समय उसकी किरणें जाज्वल्यमान होती हैं, उस समय उसे आंखों से देखना चाहें तो क्या नजर आएगा? (प्रतिध्वनि- नहीं) कठिन है कि हम सूर्य को देख सकें। जब एक सूर्य की ऐसी बात है तो असंख्यात सूर्यों के प्रकाश का तो कहना ही क्या? सारे सूर्य कितने हैं? असंख्यात सूर्य हैं। वैज्ञानिकों की तरफ मत जाना। मैं आगमों की बात कर रहा हूं। विज्ञान का विषय अलग है। हमारे हिसाब से पूरे पृथ्वी लोक में, इस लोक को आलोकित करने वाले असंख्यात सूर्य और असंख्यात ही चंद्र हैं। उन असंख्यात सूर्यों व चन्द्रों के प्रकाश को इकट्ठा किया जाए तो कितना प्रकाश होगा? एक सूर्य का प्रकाश देखा जाना संभव नहीं है। एक सूर्य को जाज्वल्यमान

किरणों में देखा जाना संभव नहीं है तो केवलज्ञानी को कैसे देख पाएंगे?

बात ऐसी नहीं है। हमने उदाहरण को गलत रूप से घटित कर लिया। जैसे सूर्य की किरणें प्रखर हैं, वैसे ही केवलज्ञानी की किरणें प्रखर नहीं होतीं। यदि ऐसा होता तो हम कहानियों, कथाओं में पढ़ते हैं कि पुष्प चुला महासती को केवलज्ञान हो गया। वह बरसते पानी में गोचरी लेकर आई थीं। गुरुजी के पूछने पर उन्होंने कहा कि मैं सचित्त जल का स्पर्श करके नहीं आई। मैं अचित्त जल में आई। गुरु भगवन ने कहा कि तुम अचित्त जल में आई हो, ऐसा तुम्हें कैसे ज्ञात हुआ? महासती ने कहा कि आपकी कृपा है।

मैं यह बताना चाह रहा हूं कि यदि केवलज्ञान की किरणें उतनी ही प्रखर होतीं तो किसी केवलज्ञानी को देख पाना कैसे संभव होता? पुष्प चुला को भी केवलज्ञान प्रकट हुआ था तो उस प्रकार का प्रकाश प्रकट हो जाना चाहिए था। कहानी में ऐसा नहीं है। तो ऐसी स्थिति में क्या यह समझना कि किसी का केवलज्ञान प्रकाशित होता है और किसी का प्रकाशित नहीं होता है।

ऐसा नहीं है। सबका केवलज्ञान एक समान होता है। केवलज्ञान में कोई अंतर नहीं है। चाहे भगवान महावीर का केवलज्ञान हो या गौतम स्वामी का, ऋषभदेव भगवान का केवलज्ञान हो या भरत चक्रवर्ती का या महासती पुष्प चुला का। केवलज्ञान एक समान है। उसमें कोई अपवाद नहीं है कि उनका केवलज्ञान एक कोने में कम देखता है और उनका केवलज्ञान उस कोने में ज्यादा देखता है। ऐसा भेद केवलज्ञान में नहीं होता क्योंकि वह निरावरण है। उस पर कोई आवरण है ही नहीं। दुनिया का कोई भी आवरण उनके बीच में नहीं है। वह तो आवरण रहित है। समग्र अवस्थाओं, समग्र पदार्थों, समग्र क्षेत्रों, समग्र भावों को वह केवलज्ञान युगपत एक साथ देखता है। 'आइच्चेसु अहिय पयासयरा' का अर्थ क्या हुआ? असंख्यात सूर्य से भी बढ़कर जिसका प्रकाश है, जिनका प्रकाश है असंख्य सूर्यों से भी बढ़कर।

थोड़ा और गहराई में उतरते हैं। असंख्यात सूर्य मिलकर कितने आकाश को प्रकाशित करते हैं? यह सूर्य जो हमारे यहां पर आया है और हमारी मान्यता के अनुसार जंबू द्वीप को प्रकाशित करने वाले सूर्य दो हैं। दो सूर्य हैं ना? (प्रतिध्वनि- हां) कितने सूर्य हैं? (प्रतिध्वनि- दो) ये दो लाइटें नहीं हो तो जंबू द्वीप पूरा प्रकाशित नहीं होगा। पूरे जंबू द्वीप को प्रकाशित करने के लिए कितनी लाइटें चाहिए? दो सूर्य का प्रकाश चाहिए। पूरे तिरछे लोक में असंख्यात द्वीप हैं,

असंख्यात ही समुद्र हैं। इतने द्वीप समुद्रों को आलोकित करने के लिए कितने सूर्यों एवं चन्द्रों की जरूरत होगी? जब एक जम्बूद्वीप को प्रकाशित करने के लिए दो सूर्य व दो चन्द्र की जरूरत पड़ती है तो असंख्य द्वीप समुद्रों को आलोकित करने के लिए कितने सूर्य-चन्द्रों की जरूरत पड़ेगी? कम-से-कम असंख्यात सूर्यों और असंख्यात चंद्रों की जरूरत होगी ही।

उलझन तो नहीं बढ़ रही है ना? (प्रतिध्वनि- नहीं) उलझन बढ़ रही हो तो कोई और विषय ले लेते हैं। मेरे खयाल से उलझन बढ़नी तो नहीं चाहिए क्योंकि हम लोगस्स का पाठ पढ़ते तो हैं ही। उसके निचोड़ में क्या भरा हुआ है? इसको निचोड़ने पर ही हमें मालूम होगा कि क्या भरा हुआ है?

हम ध्यान में लेंगे, विषय को समझने का प्रयत्न करेंगे तो समझ में आता रहेगा। असंख्यात द्वीप और समुद्रों को आलोकित करने वाले असंख्यात सूर्य और असंख्यात ही चंद्रमा हैं किंतु पूरे तिरछे लोक का स्थान कितना है? श्रीमल जी कितना स्थान है? पूरे तिरछे लोक का स्थान कितना है? पूरे जोधपुर जितना, पूरे भारत जितना या पूरे एशिया जितना या कितना है? मैं जटिलता में आपको नहीं ले जाता हूं। तिरछा लोक 18 सौ योजन का बताया गया है। ऊंचाई में 18 सौ योजन है और लंबाई-चौड़ाई व गोलाकार में एक रज्जु प्रमाण है। एक रज्जु प्रमाण क्षेत्र तिरछे लोक का है। ऊंचाई में 18 सौ योजन है और पूरा लोक 14 रज्जु प्रमाण है। केवलज्ञान से तिरछा लोक देखा जाता है या अधोलोक देखा जाता है, ऊर्ध्व लोक देखा जाता है या पूरा लोक देखा जाता है या लोकालोक देखा जाता है? क्या देखा जाता है? (प्रतिध्वनि- लोकालोक देखा जाता है) लोक से अलोक कितना बड़ा है? उत्तर- बड़ा है। बड़ा तो है, पर कितना बड़ा है? इतना बड़ा है कि लोक जैसे अनंत लोक और हो जाएं, अनंत और बन जाएं तो भी अलोक का अंत नहीं आने वाला है।

ध्यान में लेना विषय। मतलब लोक के क्षेत्र से अनंत गुना अलोक का क्षेत्र हो गया। केवलज्ञानी लोक से बाहर अलोक में भी पूरे अलोक को देखते हैं। और सारे के सारे सूर्य मिलकर कितने क्षेत्र को देख रहे हैं? वे खाली तिरछे लोक के एक रज्जु प्रमाण क्षेत्र को देख रहे हैं। वह ऊंचाई में केवल 1800 योजन का है। उससे ऊपर नहीं। उसमें भी जहां रुकावट आ गई तो आ गई। सारे सूर्य मिलकर 1800 योजन को आलोकित करते हैं, पर केवलज्ञानी पूरे लोकालोक को प्रकाशित करने वाला है तो असंख्यात सूर्यों-चन्द्रों से बढ़कर हुआ या नहीं

हुआ? (प्रतिध्वनि- हुआ)

हमारे सामने सबसे ज्यादा प्रकाशवान पदार्थ सूर्य है। सूर्य भी एक नहीं, असंख्यात है। सूर्य के प्रकाश से बढ़कर केवलज्ञानी का प्रकाश है। इसको थोड़ा और स्पष्ट कर देना चाहता हूं। यहां प्रकाशित करने का अर्थ है उतने क्षेत्र में रहे हुए पदार्थों को दिखाना। सूर्य-चन्द्र मात्र तिरछे लोक में रहे हुए पदार्थों को दिखा पाते हैं, जबकि केवलज्ञान लोकालोक में रहे हुए पदार्थों को देखने और दिखाने का सामर्थ्य रखता है। इस मायने में केवलज्ञान सूर्य-चन्द्र से अनंत गुना अधिक प्रकाशवान है। ऐसा रूप हमारी आत्मा का जब हमें अनुभूत हो जाए तो फिर क्या बाहर के पुद्गलों पर हमारी दृष्टि टिकेगी? क्या बाहर की रौनक हमको भायेगी? कभी नहीं हो सकता है। कहीं भी हमारा मन ठहरेगा नहीं। यह रूप हम कब प्रकट कर सकते हैं? जब तक बाहर के रूप को देखते रहेंगे, जब तक दर्पण में अपने चेहरे को देखते रहेंगे और मुग्ध होते रहेंगे, तब तक वह संभव नहीं है।

दर्पण के सामने अपना चेहरा देखकर, निहार करके सत्यभामा मुग्ध हो रही है कि मैं कितना खूबसूरत हूं! कई लोग अपने रूप लावण्य को देखकर पागल हो जाते हैं कि आहा! मैं कितना खूबसूरत हूं। मैं कितना खूबसूरत हूं। पर यह खूबसूरती किसकी? यह गर्व किसका? अपने रूप के गर्व का ग्राफ बढ़ता गया कि मैं रूपवान, मैं रूपवान और उस समय यदि उनके कर्मों का बंध हुआ तो अष्टावक्र ऋषि जैसे कौन बनेगा? हरकेश बाल मुनि जैसा कौन बनेगा?

भगवान कहते हैं कि रूप का गर्व मत करो। यह कुछ भी नहीं है। जब तक तुम स्वयं के रूप को नहीं देख रहे हो, तब तक ही गर्व कर रहे हो। जब यह रूप छूट जाएगा, रहने वाला नहीं है, रहेगा ही नहीं तो गर्व क्यों? जब तक इसमें गर्वित होते रहेंगे तब तक वह चीज हमको हासिल होने वाली नहीं है।

कांच के कंचों में जो खुश हो जाए, उसको हीरे कहां से मिलेंगे? कांच के कंचों में खुश हो जाए, जो राजी हो जाए कि आहा! आहा! इतने सारे कंचे मिल गए। बच्चा उन कंचों को पाकर बहुत खुश हो गया। बच्चा नहीं समझ रहा है इसलिए उसको एक डब्बा भरकर कांच के कंचे दे दो, वह खुश हो जाएगा। वह डब्बों में भरे हुए कांच के कंचों को पाकर नाचने-उछलने लग जाएगा। आपको 4 डब्बे भरकर दे दें तो?

अध्यक्ष साहब क्या बात है? आप नींद तो नहीं ले रहे हो? (प्रतिध्वनि- नहीं बावजी जागता हूं) जागते हो तो मेरे पास आओ। मेरे पास

आओ तो मालूम पड़े कि जाग रहे हो। अभी पूरे नहीं जगे हो। पूरे जाग जाते तो फिर क्या करते? चौमासे में चार चांद लगा देते ना? अभी तक कितने चांद लगे चौमासे में? (प्रतिध्वनि- एक) अरे! एक चांद लगा, वह तो सांखला परिवार का चांद लगा बाकी परिवार के चांद कहां पर हैं?

बच्चे को 4 डब्बे कंचे के भरकर दे दो तो वह खुश हो जाएगा। आपको 4 डब्बे कंचों के नहीं देकर, एक हीरे की अंगूठी गढ़ा करके दे दें तो वह कहेगा कि हा-हा, आपको तो इतना-सा कांच का टुकड़ा ही मिला है, मुझे तो इतने कंचे दिए हैं। राजी कौन हो रहा है? बच्चा। हम किसमें राजी हैं? किसमें राजी हो रहे हैं? कांच के कंचों में मन रम रहा है, मुग्ध हो रहा है। आहा! अरे! क्या बात है! आहा! अरे क्या है? 'छवि अन्तर् की देखी जिसने वह फिर बाहर क्या देखे' नहीं देखा। उसने नहीं देखा। वह जब दिख जाएगा, जिस दिन बच्चे को मालूम पड़ जाएगा कि हीरे की कीमत कितनी है और मेरे को दिए हुए कांच के कंचों के डब्बे की कितनी कीमत है तो फिर वह अंगूठी लेना चाहेगा या कांच के कंचों में ही मन रमाता रहेगा? वह बोलेगा कि मेरे को नहीं चाहिए ये कांच के कंचे। नहीं चाहिए। ऐसा कब बोलेगा? इंद्रचंद जी आंखों को बाद में मसल लेना। कब बोलोगे कि नहीं चाहिए? कब हो जाएगी पहचान?

हीरे की कीमत भाई, कुंजड़ो तो जाणे कोई,
जौहरी सूं परख कराओ रे भवि भाव।
आवश्यक अति सुख दायी रे भवि,
भाव आवश्यक अति सुख दायी रे।।

स्वयं हम हीरे की कीमत नहीं जान रहे हैं। हीरे की पहचान नहीं कर पा रहे हैं और किससे पहचान करवा रहे हैं? किससे पहचान करवा रहे हैं? अंधो अंध पुलाय। अंधा अंधे से पूछे कि दिन कैसा है तो अंधा बोलता है कि चोखा है। अब अंधे को दिन के बारे में पूछ रहे हैं। स्वयं भी अंधा और बताने वाला भी अंधा। अंधे-अंधे आपस में ही राजी हो रहे हैं।

आपको कड़वा लग रहा होगा? कड़वा लग रहा है तो बता देना। कठोर लग रहा होगा कि महाराज, आज कैसी-कैसी बातें बोल रहे हैं? ज्ञानियों की दृष्टि में देखें तो हम कहां हैं? क्या हैं हम? भले ही हमारी आंखों में ज्योति बढ़िया होगी। भले ही बढ़िया चश्मा लगा लिया होगा किंतु हम क्या देख रहे हैं? किसको देख रहे हैं? हमारी दृष्टि कांच के कंचों पर अटकी हुई है या किसी हीरे

को तलाश रही है? कितने लोग हैं जो हीरे की तलाश कर रहे हैं? हो सकता है कि हम सामायिक कर रहे हैं, स्वाध्याय कर रहे हैं, किंतु हम अपने रूप की पहचान के लिए 'हुं कोण छुं, क्यांथी थयुं, शुं स्वरूप छे मारुं खरुं' अर्थात् इसको जानना है कि मेरा रूप कैसा है? मेरे भीतर कितनी ललक भावना पैदा हुई है? अपने आपको जानने के लिए कितना बहुताप हुआ? अब नहीं चाहिए मुझे संसार की सारी व्यवस्थाएं। मुझे मेरे रूप को देखना है और भरत चक्रवर्ती की दृष्टि जैसे ही मुड़ी, उन्होंने अपने रूप को देख लिया। जब तक अटके रहे बाहुबलि जी अटके रह गए। किसमें अटके रहे? (प्रतिध्वनि- अहंकार में) अहंकार में। और हम कहां अटके हुए हैं?

आचार्य पूज्य गुरुदेव के भावनगर चातुर्मास का प्रसंग है, घटना है। चातुर्मास के अंतिम दिन पूज्य श्री सरदार मुनि जी म.सा. व्याख्यान में फरमाते हैं कि मैं कई संतों के सान्निध्य में आया हूं और बहुतों को निकट से देखा है। आचार्य प्रवर को चार महीनों से मैं साथ में रहकर देख रहा हूं। इनकी कथनी और करनी में अंतर नहीं है। जहां जैसा देखते हैं वैसा कहते हैं। जैसा कहते हैं, वैसा करते हैं। और समता किसको कहते हैं? 'जैसा जानो वैसा कहो।' कथनी और करनी में भिन्नता नहीं होना समता है। वस्तुत: ये समता में जीने वाले हैं और समता की पराकाष्ठा हमें अपने रूप को दिखाने वाली होती है। समता का विकास होते-होते चरम तक पहुंच जाना ही वीतरागता है। उसी का नाम संपूर्ण समता है। उसी का नाम सर्वज्ञता कह सकते हैं। उसे सर्वदर्शी अवस्था कह सकते हैं। वह अवस्था हमें समता से ही प्राप्त हो सकती है। किंतु जब तक हम गिल्ली-डंडे का खेल खेलते रहेंगे कि कहना कुछ और करना कुछ तो वह स्थिति नहीं बन पाएगी।

बाहुबलि जी रुके हुए हैं। अनुभव भी कर रहे हैं कि मुझे लघु भ्राता से वंदना करनी तो चाहिए किंतु थोड़ा मन अटका हुआ है। मैं बड़ा हूं कैसे करूं? उसके कारण से जो जान रहे हैं वैसा हो नहीं रहा है। हम भी बहुत बार किसी से थोड़ी अनबन हो गई, थोड़ा किसी से खिंचाव हो गया तो व्याख्यान सुनते हैं या कोई किताब पढ़ते हैं तो उसमें आए हुए मैटर को देखकर, पढ़कर, सुनकर कि क्यों रखना वैर-विरोध? खमत खामणा कर लेना। मन में भाव-विचार उठे किंतु पांव नहीं उठे। मन होता है या नहीं होता है? मन तो होता है पर पांव नहीं उठता है। इसलिए नहीं उठता है क्योंकि अहं गला नहीं है। अहं और अहंकार नमे

तो अहं (आत्मा) जगे। उसके बिना आत्मा का अहं प्रत्यय कैसे जगे।

वही हालत बाहुबलि जी की है। जान तो रहे हैं किंतु थोड़ा और कर लेता हूं, थोड़ा और कर लेता हूं और कितना करो? 12 महीने तो बीत गए। 12 वर्ष भी निकल जाते तो भी केवलज्ञान हो जाता क्या? (प्रतिध्वनि- नहीं) 12 महीने तो बीत गए। बीते थे ना 12 महीने? बीते ना? 12 महीने बीत गए। उससे ज्यादा भी बीत जाते। संवत्सरी से संवत्सरी, 12 महीने। संवत्सरी का खमत खामणा कर लेंगे। 12 महीने भार क्यों रखना? संवत्सरी को करने को तैयार हैं तो पहले क्यों नहीं कर लेते हैं? क्योंकि जब तक पूरा मन शिथिल नहीं होता है तब तक नमन करने के तैयार नहीं होते हैं। देखने के लिए तैयार नहीं हैं। जब तक देखने के लिए तैयार नहीं होते हैं, जब तक निर्माण नहीं होता है तो निर्वाण नहीं होगा। निर्वाण की तो कल्पना ही करना बेकार होगा। बाहुबलि जी को बहिन सुंदरी ने जैसे ही बात कही कि हाथी से उतरो। दादी मां को तो हाथी पर बैठे हो गया केवलज्ञान। तुम हाथी पर बैठे रहोगे तो केवलज्ञान नहीं होगा। दादी मां का हाथी तो कुछ और था और तुम्हारा हाथी कुछ और है। बाहुबलि जी को लगा कि मैं हाथी पर कहां हूं? लेकिन हाथी पड़ा हुआ था, गुफा में। अन्तर् की गहराई में पड़ा हुआ। अरे! मैं उस हाथी पर बैठा हूं। अहंकार के हाथी पर बैठा हुआ हूं। तो यह बात है। यह अटकाव है। धिक्कार है मेरी आत्मा को कि मैंने साधु बनकर इतने समय तक अपने से अग्रज मुनियों की अवज्ञा की, उनकी आसातना की। अब मुझे जाकर उन मुनियों को वंदन-नमस्कार करना चाहिए, क्षमा याचना करना चाहिए। कहते हैं कि पांव उठा ही नहीं। पैर उठा या नहीं उठा? एड़ी होती है ना, वह उठी भी नहीं और केवलज्ञान हो गया। कितनी जल्दी हो गया? कोई देरी नहीं।

केवलज्ञान की कोई देरी नहीं है। वह तो एकदम तैयार बैठा है। पर जब तक हमारे कपट की पट्टी बंधी रहेगी, जब तक कहना कुछ और करना कुछ बना रहेगा तब तक कल्याण होने वाला नहीं है। हमने तो गुरुदेव का सान्निध्य प्राप्त किया। बहुतों ने दर्शन भी किए। हम कोई बात कहें, वह अलग है और दूसरे संप्रदाय के संत कहें तो वह बात महत्त्व वाली बन जाती है। श्री सरदार मुनि जी म.सा. ने फरमा दिया, इसलिए गुरुदेव का महत्त्व बढ़ गया, ऐसी बात नहीं है। गुरुदेव का अपना महत्त्व था ही किंतु उस महत्त्व से दूसरे भी प्रभावित हुए। ऐसा नहीं कि श्री सरदार मुनि जी म.सा. के कहने से गुरुदेव का महत्त्व बढ़ गया है। यह

सोच है तो गलत है। सूर्य की प्रशंसा करें तो किसी की प्रशंसा करने से सूर्य का प्रकाश है क्या? सूर्य का प्रकाश है, इसलिए उसकी प्रशंसा हो रही है। वैसे ही आचार्य गुरुदेव की कथनी-करनी, एक होने से प्रशंसनीय थे।

जैसा जानो, वैसा करो। जिसके भाव सच्चे, जोग सच्चे, करण सच्चे हो जाते हैं उसकी नौका रुकती नहीं है। वह दूरी मिट जाती है। जहां सत्य आ जाए, वहां फिर कल्याण का बोध अग्रसर होता हुआ चला जाता है। हम भी आत्म कल्याण की दिशा में अपने आपको बढ़ाना चाहते हैं। हमारा लक्ष्य बने। हम केवल सुनें ही नहीं, हम पढ़ें ही नहीं, हम संवर और पौषध करें ही नहीं, उसको शोधें। स्वयं को साधें। अपने भीतर की शोध करें कि मेरे जीवन में दुविधा कितनी है। मेरे जीवन में दुविधा है इसलिए मेरे जीवन में कथनी और करनी में अंतर हो गया। उसको दूर कैसे करें? उसको हटाने का प्रयत्न करेंगे, प्रयत्न करते जाएंगे और हमारा निर्माण होता जाएगा। एक दिन निर्वाण की भूमिका को स्पर्श करने वाले बनेंगे। ऐसा कर पाएंगे तो धन्य बन जाएंगे।

हम अपने आपमें चिंतन करें, मनन करें कि क्या करना है। हमें नमन से निर्वाण तक पहुंचना है। पर जब तक नमन सही नहीं होगा तब तक निर्माण नहीं होगा और बिना निर्माण के निर्वाण नहीं हो पायेगा। इसलिए नमें। ऐसा नमें कि लोग बाहुबलि जी को भूल जाएं। अवश्यमेव हम कल्याण के पथ पर बढ़ेंगे, निर्वाण को प्राप्त करेंगे, धन्य बनेंगे।

इतना ही कहते हुए विराम।

दिनांक-06.11.2019

2

स्वाद चखा जब उपशम रस का

चंद्रप्रभ मुख चंद, सखी।
मुने देखन दे रे।
देखन दे रे सखी मुने देखन दे।
चंद्रप्रभ मुख चंद, सखी।

चंद्रप्रभ भगवान इस अवसर्पिणी काल में आठवें तीर्थंकर हुए। चंद्रप्रभ जैसे यानी चंद्रमा की प्रभा सौम्य होती है, मन को भाने वाली होती है। वैसे ही जब विचारों में, कल्पनाओं में चंद्रप्रभ भगवान के दर्शन हुए और उसी के साथ स्तुति का प्रकटीकरण हो गया। मानो हमारी सम्यक् मति, मिथ्या मति को संबोधित कर रही है, हे बहन! हे सखी! मुझे चंद्रप्रभ भगवान के दर्शन करने दे। तुमने अनादि काल से अपनी सत्ता जमा रखी है, जिससे मुझे आत्मदर्शन नहीं हो पाया। जो मेरा आत्मदर्शन है, वही परमात्म-दर्शन है।

जो चंद्रप्रभ भगवान का दर्शन है, वही मेरी आत्मा का दर्शन है। निगोद में, अनंत काल तक मैं रहा। निगोद में तुम्हारा साम्राज्य रहा। तुमने मुझे दर्शन करने नहीं दिया। पांच स्थावर - पृथ्वीकाय, अपकाय, तेउकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय, इनमें भी तुमने मुझे चंद्रप्रभ भगवान के दर्शन नहीं करने दिए। बेइंद्रिय, तेइंद्रिय, चतुरिंद्रिय, असन्नी, पंचेंद्रिय अवस्थाओं में भी तुमने मुझे दर्शन नहीं करने दिए। हे सखी! अब ये अवसर आया है, यह चांस आया है। मैं दर्शन करना चाहती हूं चंद्रप्रभ भगवान के, उनके दर्शन कैसे हैं?

उपशम रस नो कंद,
सखी मुने देखन दे।

'उपशम रस नो कंद,' बड़ा मधुर लगता है उपशम शब्द। मन को भाता है। जो शब्द मन को सुहावे, वह अवस्था कितनी महत्त्वपूर्ण होगी? जैसे नीबू का

नाम लेते हैं, इमली का नाम लेते हैं तो कहा जाता है कि मुंह में पानी आ जाता है। उस शब्द से ही उसका इतना प्रभाव है तो उस पदार्थ का कितना प्रभाव होगा? वैसे ही उपशम शब्द इतना सुहावना लगता है, इतना सुंदर लगता है। मन को प्रफुल्लता देने वाला है। तो वह अवस्था उपशम अवस्था यदि प्राप्त होती है, उसका कहना ही क्या? हमने कभी राम, कृष्ण, महावीर आदि-आदि उपशान्त पुरुषों के फोटो देखे हों, तसवीरें देखी होंगी। उनका चेहरा हमें कैसा लग रहा होता है? कैसा लगता है? शरीर पर झुर्रियां नहीं हैं। चेहरे पर झुर्रियां नहीं हैं। चेहरे पर कहीं आपको तनाव नजर नहीं आएगा। कहीं दु:ख-द्वंद्व की झलक उस चेहरे पर नहीं आएगी।

थोड़ी देर के लिए हम उस कल्पना लोक में चलते हैं, जहां हम ये मान लें कि मेरे सारे तनाव समाप्त हो गए। मेरे मन की सारी दुविधाएं दूर हो गईं। मेरे मन के सारे द्वंद्व मिट गए। मेरा मन किसी प्रकार के तनाव में नहीं है। किसी के प्रति मेरे मन में द्वेष भाव नहीं है। ईर्ष्या भाव नहीं है। न शत्रुता के भाव हैं, न मुझे किसी प्रकार की कोई पीड़ा है। न शारीरिक पीड़ा है, न मानसिक पीड़ा है। कुछ भी नहीं, वह अवस्था कैसी होगी? उस अवस्था में हमारा मन कैसा होगा? हम केवल कल्पना कर सकते हैं, क्योंकि जब तक उस दशा को हमने नहीं पाया, तब तक उसकी अनुभूति कैसे करेंगे? तब तक उसकी अनुभूति हो ही नहीं पायेगी। किसी ने कभी ए.सी. रूम में बैठने का प्रयत्न ही नहीं किया। क्या वह जान सकता है कि ए.सी. की ठंडक कैसी होती है? ए.सी. कितनी शीतलता देने वाली होती है, वह क्या जाने?

आगमों में एक उदाहरण दिया है, उससे हम समझें। एक मेढकी ने संयोग से चंद्रमा के अलौकिक दृश्य को देखा। एक तालाब के ऊपर शैवाल थी। वह शैवाल हवा से थोड़ी हटी और ऊपर झांका तो वह रात शरद पूर्णिमा की थी। उसने आजतक ऐसा अलौकिक दृश्य नहीं देखा। बड़ी उमंग हुई, उसको बड़ा प्रमोद हुआ। बहुत प्रसन्नता हुई। आहा! ऐसी भी कोई दुनिया है? ऐसा भी कोई स्वरूप है? वह थोड़ी देर उसमें निमग्न होती रही। बहुत खुशी में रही थी, प्रसन्नता में रही और चंद्रमा के उस अलौकिक रूप में, उस मधुरिमा में वह आनन्द लेती रही, किंतु इतने में उसको याद आया कि ये दृश्य मुझे अपने पारिवारिक जनों को भी दिखाना चाहिए। वे भी इसको देखें और वह झट से नीचे डूबी। पानी में डुबकी लगाई और तैरकर परिवार वालों के पास गई। उनसे उसने

कहा कि आप लोग मेरे साथ चलो। परिवारजन कहते हैं - अरे! साथ में आकर क्या करेंगे? मेढकी - अरे! चलो तो सही। मैं आपको अजूबा दिखाती हूं। वे बोले कि क्या दिखाओगी? अरे! तुम चलो तो सही। अलौकिक दृश्य, ऐसा दृश्य जो कभी देखा नहीं, वैसा दृश्य दिखाती हूं।

वह सबको उत्साहित कर, सबको कौतूहलिक बनाकर लाती है। इतने में हवा का झोंका आया और शैवाल वापस पानी पर आ गया और वह विवर ढक गया। अब इधर-उधर वह उस विवर को ढूंढ़ रही है, किंतु वापस न वह विवर मिलता है और न ही वह दृश्य उसको नजर आया। वह उस दृश्य को वापस देख नहीं पाई। उसने विचार किया कि मैंने स्वयं अपने पैरों पर कुल्हाड़ी चला ली। यदि परिवार का विचार नहीं करती, उनको दिखाने का मन में कुतूहल भाव पैदा नहीं होता तो मैं आनन्द लेती रहती। मैं उस आनन्द में निमग्न होती रहती। परिवार के मोह ने मेरे आनन्द को लील लिया। जो आनन्दमय अवस्था मुझे मिली थी, वह अवस्था मैं खो चुकी। वह अवस्था मेरे हाथों से चली गई और यह होता है परिवार के मोह के कारण, परिवार के प्रति राग के कारण, परिवार के ममत्व के कारण। हम अनेक बार दु:खी होते हैं। यदि हम स्वतंत्र, अकेले हो जाएं तो हमें बताओ किसका दु:ख होगा? जितना अटैचमेंट होगा, उतना ही ज्यादा दु:ख हम पाएंगे। बड़े के बड़े दु:ख, छोटे का छोटा दु:ख।

एक आदमी का बहुत बड़ा परिवार है। उस परिवार के डेढ़ सौ, दो सौ सदस्य हैं। कठिन बात नहीं है, असंभव बात नहीं है। पचास साल पीछे जाओगे तो ऐसा दृश्य मिल सकता है। एक-एक माता-पिता के एक दर्जन, सवा दर्जन पुत्र-पुत्रियां होते थे। फिर उनका परिवार, फिर उनके आगे का परिवार। ऐसे 4-5 पीढ़ियों में कितना हो जायेगा। अब नजर नहीं आते हैं तो बात अलग है। अभी जैसे मुमुक्षु बहिन की दीक्षा स्वीकृत हुई, उन्होंने बताया कि उनके पापा की 12 बुआ हैं और उनका परिवार और अभी तक हमारा आपसी रिलेशन है तो लगभग दो सौ सदस्य हो जाते हैं। जब दो सौ सदस्यों का परिवार होगा तो कभी खुशी के समाचार मिलेंगे और कभी दु:ख के समाचार मिलेंगे। कभी किसी को ज्वर हो गया, कभी किसी को बुखार हो गया, कभी किसी के ये रोग हो गया, किसी के वो रोग हो गया। किसी का हाथ कट गया, किसी का पांव कट गया। किसी के हाथ में फ्रैक्चर हो गया, किसी का कहीं एक्सीडेंट हो गया। जितना बड़ा परिवार होगा, उतनी सूचनाएं रोज मिलेंगी। मिलेंगी या नहीं मिलेंगी?

(प्रतिध्वनि- मिलेंगी)

यदि हम यह समझ लें कि पूरा भारत एक परिवार है तो कितने लोग हैं? (प्रतिध्वनि- 135 करोड़) 135 करोड़। 135 करोड़ हो गए क्या? (प्रतिध्वनि- हां) 135 करोड़ हैं। 135 करोड़ का एक ही कुनबा हो, एक ही परिवार हो तो हमको रोज मृत्यु के समाचार मिलेंगे या नहीं मिलेंगे, यह बताओ? (प्रतिध्वनि- मिलेंगे) रोज ही शोक, रोज ही शोक रहेगा या नहीं रहेगा? (प्रतिध्वनि- रहेगा) कोई-न-कोई रोज मरने वाला मरेगा या नहीं मरेगा? रोज मृत्यु के समाचार मिलेंगे या नहीं मिलेंगे? (प्रतिध्वनि- मिलेंगे) रोज ही मृत्यु के समाचार मिलेंगे तो जन्म के भी समाचार मिलेंगे या नहीं मिलेंगे? (प्रतिध्वनि- मिलेंगे) मरने वाले ज्यादा हैं या जन्म लेने वाले ज्यादा हैं? मरे ज्यादा या जन्मे ज्यादा? (प्रतिध्वनि- जन्मे ज्यादा) क्या पता? क्या पता?

साफ ही बता रहा है कि अभी जनसंख्या बढ़ी है तो जन्मे ज्यादा हैं। नहीं तो जनसंख्या इतनी बढ़ती क्यों? इसका मतलब है कि जन्म दर ज्यादा है और मृत्यु दर कम है। अभी दो-पांच दिन पहले की बात होगी। पढ़ा नहीं, किंतु ऐसी बात कोई उठी थी कि वैज्ञानिकों ने मनुष्य के जीवन दर को बढ़ा दिया। पहले कभी 50-55 की जीवन दर थी। अब वह दर 65-70 तक चली गई है। पर समस्या हो गई कि जनसंख्या बढ़ती हुई चली गई, क्योंकि मरते जाते थे और आदमी जन्म भी लेते जाते थे तो संख्या बढ़ती नहीं थी। अब इधर मरना कम हो गया है और जन्म लेना ज्यादा हो गया तो जनसंख्या में बढ़ोत्तरी होना शुरू हो गई। वह संख्या बढ़ने लगी।

मैं यह बता रहा हूं कि जितना बड़ा परिवार होगा, उतने ही सुख और दु:ख के समाचार व्यक्ति को मिलते रहेंगे। सौ करोड़ वाले समाज में, सौ करोड़ वाले परिवार में आप रहोगे तो रोज ही जाजम बिछाए रखनी पड़ेगी। किसके लिए? रोज एक उठावणा करना पड़ेगा। रोज एक बारहवां करना पड़ेगा और रोज एक महीने का शोक करना पड़ेगा ना? एक महीने का होता है ना? (प्रतिध्वनि - अब तो कम हो गया है) कम तो हो गया है, किंतु पूरे बंद तो नहीं हुए ना? रोज एक दरी बिछाए रखनी होगी। रोज एक उठावणा होता रहेगा और रोज का रोज यह सब होगा। वैसे ही रोज एक ज्योतिषी को बुलाकर कहना पड़ेगा कि घर में बेटे का जन्म हुआ है तो उसकी कुंडली बनाओ। इसका जन्म हुआ तो इसकी कुंडली बनाओ, उसका जन्म हुआ तो उसकी कुंडली बनाओ। उन सारे लोगों के कष्ट को

यदि कोई कष्ट मानकर चलेगा तो वह कभी सुखी हो पाएगा क्या? (प्रतिध्वनि - नहीं) उसकी दुविधाएं कभी दूर हो पाएंगी? (प्रतिध्वनि - कभी नहीं)

तब आप कहोगे कि म.सा. अब तो बहुत बढ़िया है कि छोटा परिवार, सुखी परिवार है। सरकार ने बहुत अच्छा नारा दिया है, 'छोटा परिवार-सुखी परिवार' और मैं तो कहता हूं कि अकेले हो तो कितने सुखी होगे? इसकी यदि चर्चा करनी हो और आपके पास यदि चर्चा करने का साधन हो तो नमिराज ऋषि से करो। जब तक इस शरीर के प्रति भी उनका ममत्व था, वे दु:खी थे या नहीं थे। शरीर तप रहा था। भयंकर जलन हो रही थी। कितना ही उपाय करो, ठंडे पानी और बर्फ के सेक करो तो भी कुछ भी फर्क नहीं पड़ रहा है। जैसे ही दृष्टि मुड़ी 'जहां देह अपनी नहीं, वहां न अपना कोई' मैं जिस शरीर को मेरा मान रहा हूं, जिस काया को मेरी मान रहा हूं, ये काया मेरी कहां है? अभी सुनते हो इसलिए, किंतु है तो मेरा मेरा ही। कौन छोड़ रहा है? हम किसको कह रहे हैं कि मेरी नहीं है? ये परिवार मेरा, ये घर मेरा, वो गाड़ी मेरी और वो बंगला भी मेरा। ये गाड़ी मेरी और ये घर मेरा। ये लड़की मेरी और ये लड़का मेरा। यह पुत्रवधू मेरी।

यह मेरा-मेरी की आग जितनी प्रसारित होगी, वह हमें संक्लेश देगी। किंतु नमिराज ऋषि उन सबसे अलग हो गए। एकत्व भाव में आ गए कि एक मेरी आत्मा ही शाश्वत है। दुनिया में कोई किसी का नहीं है।

तुम भूल के अपने आप, रहा कर पाप, ओ चेतन प्यारा,
दुनिया में कौन तुम्हारा।

तू भूलकर अपने आप रहा कर पाप ओ चेतन प्यारा, दुनिया में कौन तुम्हारा? कौन है तुम्हारा? बापूजी बैठे हुए हैं। 70 साल के हो गए। 75 साल के हो गए। बड़ी तमन्ना है, बड़ी इच्छा है कि बेटा एक बार मिल जाए। साल में एक बार बेटा खोज-खबर कर लेता है। एक बार आकर मिल लेता है, किंतु इस बार समाचार आ रहे हैं कि पापा, बहुत, बहुत तेजी का दौर चल रहा है, बहुत व्यस्तता चल रही है। अभी निकलकर आने की स्थिति नहीं है। बाप सोचता है कि एक बार उसको देख लूं, बेटे का चेहरा देख लूं। बाप सोच रहा है कि बेटे का चेहरा देख लूं। बेटा सोच रहा है कि बाप का चेहरा देख लूं। पता नहीं कब तक रहेंगे? क्या रहेंगे?

बाप बड़ी तमन्ना लेकर जी रहा है, किंतु फिर भी बेटे को फुर्सत नहीं है। क्या करे? वह भी क्या करे? उसको उलझन में डाला किसने? उसको किसने

डाला उलझन में? यदि बाप ने उसको व्यापार-धंधे में नहीं लगाया होता। व्यापार-धंधे की ज्यादा शिक्षा नहीं दी होती, व्यापार-धंधे के गुर नहीं सिखाए होते, ज्यादा कूवत नहीं दी होती तो वह व्यापार-धंधा फैलाता कैसे? उसमें अब इतनी समझ आ गई कि वह रोज नया व्यापार फैला रहा है और नया व्यापार जितना फैलेगा, वह उसमें उलझेगा या उसे फुर्सत मिलेगी? जब तक बापू के हाथ-पांव कांपने नहीं लग जाते हैं, तब तक तो बापू को बड़ा अच्छा लगता है कि बेटा खूब पैसा कमा रहा है, खूब पैसा कमा रहा है। किंतु अब बाप को बेटे की आवश्यकता लग रही है कि बेटा आकर थोड़ी देर पांच-दस मिनट बतिया ले। पांच-दस मिनट आकर हाल-चाल पूछ ले तो बाप खुश है। आकर हकीकत बता ले तो बाप खुश है। अब बेटा आता ही नहीं है। ऐसा होता है। इससे पीड़ा कैसी होती है? उस पीड़ा को कौन जान रहा है?

नमिराज ऋषि पहले भले ही पीड़ित रहे होंगे, किंतु उन्होंने विचार कर लिया कि एक मेरी आत्मा ही शाश्वत है। उसके रिश्ते-नाते कुछ भी नहीं हैं। इंद्र विचार करने लगे कि ये मुनि बनने की तैयारी कर रहे हैं। ये साधु बनने की तैयारी कर रहे हैं। किंतु इनका मन कितना मजबूत है, इसकी परीक्षा करनी चाहिए। वे ब्राह्मण का रूप बनाकर नमिराज ऋषि के पास पहुंचे और मिथिला को धू-धू करके जलाना शुरू कर दिया। उनके पास वैक्रिय शक्ति थी तो उन्होंने ऐसा दिखा दिया कि मिथिला जल रही है। वे कहते हैं कि राजन्! राजन्! देखो, देखो, तुम्हारी मिथिला जल रही है। तुम्हारी मिथिला जल रही है। तुम्हें दीक्षा लेनी है तो दीक्षा ले लेना, पहले मिथिला को तो बुझा लो। उसको तो शांत कर दो। दीक्षा के लिए कौन-सा मुहूर्त चूक रहा है? नमिराज ऋषि क्या जवाब देते हैं?

वे कहते हैं कि मिथिला जलने से मेरा कुछ भी नहीं जल रहा है। जबकि अंत:पुर कहां पर है? सारी रानियां कहां पर हैं? (प्रतिध्वनि- वहीं पर) सारी रानियां भी वहीं पर हैं, किंतु नमिराज ऋषि क्या कह रहे हैं? मिथिला जलने से मेरा कुछ नहीं जल रहा है। मैं सुख से रह रहा हूं। मैं सुख से जी रहा हूं। नो टेंशन, एकदम फ्री। कोई तनाव नहीं है। वहां इंद्र देखकर विचार करने लगे कि जिस मिथिला के लिए राजा ने जी तोड़कर मेहनत की, आज उस मिथिला को अपनी आंखों के सामने जलती देखकर भी उनको कोई दु:ख नहीं हो रहा है। यदि वह वैराग्य का भाव नहीं आया होता, यदि मिथिला के साथ नमिराज ऋषि का अटैचमेंट होता तो इस मिथिला को जलते हुए देखकर पता नहीं कितना दु:ख-

दर्द होता। हार्ट अटैक नहीं आया होता तो बात अलग है, किंतु वे दु:खी होते या नहीं होते, यह बताओ? (प्रतिध्वनि - दु:खी होते) वे बेहोश होकर गिर जाते या नहीं गिर जाते? (प्रतिध्वनि - गिर जाते) शायद गिर ही जाते। होश आने पर वे कहते कि हा! मेरी मिथिला, मैंने कितना जतन किया उसके लिए, पर आज यह मेरी मिथिला जल रही है। रानियों की चीख-चिल्लाहट, ये-वो। कुछ नहीं कर पा रहे हैं और कर भी क्या सकते हैं? कहीं पर यदि ऐसी ही आग लग जाए, भीतर घुसने की स्थिति न हो। हमारे सामने सारे रो रहे हैं, सारे तड़प रहे हैं। बोलो कौन बचाएगा? बेटा भीतर है तो कोई बचा पाएगा? पत्नी भीतर है तो कोई बचा पाएगा क्या?

सोने की लंका। रावण की लंका, क्या हुआ? (प्रतिध्वनि- जल गई) लंका तो अभी भी है, पर रावण वाली है क्या? (प्रतिध्वनि-नहीं) सोने वाली लंका अब कहां? लंका तो होगी पर रावण वाली नहीं है। महाभारत जिन्होंने देखी है, उन्होंने देखा ही होगा कि द्वारिका जल रही है। निकलने की कोशिश कर रहे हैं, किंतु लोग निकल नहीं पा रहे हैं। पहले ही बता दिया था कि कृष्ण वासुदेव निकल सकते हैं, देवकी निकल सकती है, बलराम निकल सकते हैं, बाकी लोग वहां से नहीं निकल पाएंगे। इस द्वारिका दहन की बात को सुनकर बहुत-से लोगों ने अरिष्टनेमि भगवान के पास दीक्षा ले ली।

हम भी आज विचार कर लें, लोग कुछ वर्षों पहले बोल रहे थे कि 2012 में विप्लव होगा, किंतु 2012 तो निकल गया। अब कौनसी घोषणा हो रही है? अभी कुछ दिन पहले ही किसी भाई ने बताया कि एक महात्मा जी ने घोषणा की है कि 4 नवंबर, 2019 से 20 जनवरी तक बड़ा विप्लव योग है। सोच लो अब। 20 जनवरी हमारी जिंदगी में आएगी या नहीं आएगी? फिर क्या करना है? क्या करना है? यदि सुख की राह लेनी है तो क्या करना? बोलो, क्या करना है? द्वारिका में जैसे बहुत सारे लोग जले। दुनिया जलेगी तो हम लोग भी जल जाएंगे। बहुत सारे लोग यही सोचते ना? लोग सोचते हैं कि जो सबका होगा, वही हमारा हो जायेगा। जो सबका हाल होगा, वही हमारा हाल हो जायेगा। अगर सब जलेंगे तो हम भी जल जाएंगे। अरे! सबको छोड़ो तुम तो तुम्हारी सोचो। तुम तो अलग निकल जाओ।

अलग निकल जाने की सोच बहुत कम बनती है। इतने लोग हैं, मैं घर छोड़ दूंगा तो क्या हो जाएगा? हम चार लोगों के निकल जाने से क्या हो

जाएगा? क्या जोधपुर खाली हो जायेगा? इतनी जनसंख्या है तो इतने में विप्लव थोड़ी ना हो जाएगा? हकीकत में हम उस दर्शन को नहीं देख पाएंगे। उस जलती हुई द्वारिका को नहीं देख पा रहे हैं, किंतु हमारी जिंदगी, वह निरंतर जल रही है। निरंतर-निरंतर जल रही है। समाप्ति की ओर निरंतर बढ़ रही है। यह जीवन हमको लगता है कि एक साल बड़ा हो गया। बड़े शौक से, बड़े मजे से परिवार वालों को बुलाते हैं और वर्षगांठ मनाते हैं। एक गांठ और बढ़ गई है। एक गांठ और। कितनी गांठें पड़ गई? जितनी गांठें पड़ती गईं, उतना ही जीवन दुरूह हो गया। यह गांठ खुल गई होती तो जीवन सुलझ गया होता। जीवन में सुलह हो जाती, किंतु हम हर साल नई गांठ लगाने के लिए तैयार हैं।

नमिराज ऋषि को ऊपर-नीचे करके इंद्र ने बहुत टटोल लिया। अनेक प्रश्न पूछकर टटोल लिया, किंतु नमिराज ऋषि, जो भीतर से अनुभव कर चुके, जिसने अनुभव किया कि मैं किस दशा में था? मेरा सारा शरीर झुलस रहा था। सारा शरीर जल रहा था। उस समय परिवार का कौन सदस्य मुझे बचाने वाला था? मुझे कौन बचाने में समर्थ हुए? कौन बचाने में समर्थ हुआ? सभी ने प्रयत्न किया। सभी ने प्रयास किये, किंतु अनेकानेक प्रयत्न करने के बावजूद मुझे लाभ क्या हुआ? बहुत स्पष्ट है कि कोई भी दु:ख से बचाने में समर्थ नहीं है और जब नमिराज ऋषि उस अवस्था में पहुंचे, उपशम भाव में पहुंचे तो अनुभव हुआ कोई मेरा नहीं है। यह शरीर भी मेरा नहीं है। मुझे इस शरीर की कोई ममता नहीं है।

'लाखों वर्षों तक जीऊं या मृत्यु आज ही आ जाए' कोई मतलब नहीं है। कोई दु:ख नहीं है। कोई दर्द नहीं है। मेरी आत्मा अजर है, अमर है। वह मरने वाली नहीं है। फिर मुझे काहे की चिंता? फिर मुझे किसकी चिंता? मर गया तो मर गया। मरा तो शरीर मरा, मेरी आत्मा नहीं मरेगी। ये विचार जिस समय हमारे भीतर होंगे, उस समय हमारे चेहरे को कोई देखेगा, उस समय हमारे चेहरे की रौनक देखेगा, उस समय की दिव्यता देखेगा, उस समय की भव्यता का जो अनुभव करेगा, वह कोई अनुभवी ही कर सकता है।

आचार्य पूज्य श्री नानालाल जी म.सा., जब ध्यान साधना में प्रवृत्त होते तो पहले अलग रूम में नहीं बैठा करते थे, किंतु धीरे-धीरे देखा कि लोगों में कुतूहल पैदा हो रहा है, तब उन्होंने दरवाजा बंद करके ध्यान करना शुरू कर दिया। किंतु किसी समय कोई खिड़की खुली रह गई और किसी ने अनुभव किया तो वह दिव्य छवि, वह दिव्यता, वह देखने वाला अपने आप में सौभाग्यशाली ही

बना होगा।

होता है ऐसा। जिस दिन सबसे अलग हो गए। किसी से कोई सरोकार नहीं। न साधु मेरा है, न साध्वी मेरी है, न श्रावक मेरा है, न श्राविका मेरी है। एक मात्र आत्मा। उस आत्मपरिणति का जो दृश्य होता है, जो अनुभव होता है, वह अनुभव, वह अनुभूति हम किससे पूछें? और पूछ लेने पर होगा भी क्या?

वैराग्य भाव जब गहराता है, तब सारी दुनिया फानी लगती है। उसके भीतर से स्वर फूटते हैं कि -

वैरागी हूं, वैरागी को न धन चाहिए, ना घर चाहिए,
एक वीर प्रभु की शरण चाहिए।।

क्या चाहिए? क्या चाहिए वैरागी को? (प्रतिध्वनि - वीर प्रभु की शरण चाहिए) कोई नोटों की माला पहनाए। कोई कुछ पहनाए। कोई आभूषण पहनाए। कोई ऐसा वरघोड़ा निकाले, कोई वैसा वरघोड़ा निकाले और राजाओं के राज में होता था कि दीक्षार्थी राजकुमार को माता-पिता कहते - बेटा, एक बार तुमको राजा बनाना है। एक बार राजा बने हुए देखना चाहते हैं। बना दो राजा। बना भी। राजा बनने-बनाने से क्या भाव बदला? क्या बदल जाते विचार? कोई ऐसा ढोंग रचे वैराग्य का और घर वाले राजा बना दें तो राजा बन गया। बैठ गया राजा बनकर। किंतु ऐसा होता नहीं है। नकली, नकली होता है और असली, असली होता है। जहां वैराग्य असली होता है, वहां कितना भी लोभ दे दो, लालच दे दो, कितना भी उसको आप सब्जबाग दिखाओ, वह उस वश में आने वाला नहीं होता है।

जंबू कुमार की बात है तो आठों धर्मपत्नियों ने विचार किया कि एक बार सब मिलकर एक साथ जोर लगा लें और जोर लगाते हुए अपनी बातें कह रही थीं। उन बातों में, हालांकि मनों-मन में विचार था ही। मन में फाइनल कर लिया कि अपना प्रयत्न कर लेते हैं। यदि रुक जाते हैं तो अच्छी बात है और नहीं तो पति की जो गति होगी, वही अपनी गति होगी। निर्णय वही है। यदि पति दीक्षा ले और हम संसार में रहें, वे दुःख भोगें और हम सुख भोगें तो यह पतिव्रता धर्म का रिश्ता नहीं है।

राम के साथ सीता वन में गईं, वह बोलीं - मैं आपके साथ चलूंगी। आप अकेले जाओगे तो आप अधूरे रह जाओगे। आप पूरे नहीं हो पाओगे, आधे रह जाओगे। क्योंकि पत्नी अर्धांगिनी होती है। आधा अंग तो मैं हूं, आधी

शक्ति तो मैं हूं। सीता जी घर में नहीं रुकीं, महलों में नहीं रुकीं। आज ऐसा नहीं है। पति दीक्षा ले तो कभी पत्नी घर में रह जाती है, कभी पत्नी दीक्षा लेती है तो पति घर में रह जाता है।

जंबू कुमार को वे कह रही हैं कि नाथ! हमारी एक बात सुनिए। जिस नदी में जल्दी पानी आता है या जो बरसाती नदी होती, वह बरसात होने पर बहती है तो पानी आ जाता है। बरसाती नदी में बाढ़ भी जल्दी ही आ जाती है और जैसे ही बरसात रुकती है, वह पानी सूख भी जल्दी जाता है। वह नदी थोड़े दिनों तक ही चलती है। थोड़े दिनों में उसका पानी खलास हो जाता है। वैसे ही बरसाती नदी के समान आपका वैराग्य है। एक सुधर्मा स्वामी का व्याख्यान सुना और आप कह रहे हो कि वैराग्य है, दीक्षा लेनी है। वैराग्य इतने समय में परिवर्तन हो जाता है क्या? बदलाव में क्या देर लगती है? कितनी देर में बदलता है? कितने समय में आता है बदलाव? अरे! एक झटके में बदलाव आ जाता है और बदलाव तो वही होता है।

आपने एक व्याख्यान सुना और आप इतने प्रभावित हो गए कि आप कह रहे हो कि मैं संसार को त्याग रहा हूं। अभी आपने संसार को जाना ही क्या है? संसार को समझा क्या? अत: यह जो वैराग्य आया है, यह बरसाती नदी के पूर के समान है। इसलिए हमारा निवेदन है कि कहीं यह क्षणिक विचार बाद में ठंडा नहीं पड़ जाए। दीक्षा लेने के बाद उस समय यह साधु जीवन इतना दुरूह हो जाएगा, इतना कष्टप्रद हो जाएगा कि उसकी कल्पना करना भी शक्य नहीं है। साधु जीवन में कठिनाई आ जाएगी। यह कथन अयथार्थ नहीं है, किंतु गृहस्थ जीवन तो आसान है? शादी के बाद नार कर्कशा आ जाए, बेटा कोणिक आ जाए तो? कितने कोड़े मारे थे? कितने कोड़े मारे? किसको मारे और किसने मारे? (प्रतिध्वनि - बेटे ने बाप को मारे)

यह मत कहना कि पांचवें आरे की बात चल रही है। यह तो चौथे आरे की बात है। चौथे आरे में भी बाप को बेटे के द्वारा कोड़े मारे गए। आप बोलोगे कि फिर तो कोई बात नहीं है। हम तो पांचवें आरे के हैं। हम भी कोड़े मारें तो कोई बात नहीं है। चौथे आरे में यह सब हो रहा था तो पांचवें आरे में तो कहना ही क्या? फिर भी मैं कोड़े नहीं लगाता। सिर्फ मुंह से बोलता हूं। बोलना तो पड़ता है, मैं कोड़ा नहीं लगा रहा हूं। हां, मुंह से बोल रहा हूं। बोलना क्या कोड़े लगाने से कम है? ऐसे में क्या संसार आसान होगा ? क्या संसार सोरा/सुखी हो जाएगा?

संसार में सुख होगा या दु:ख होगा? सोरा होगा या दोरा होगा?

इस प्रकार की बातें जब उन्होंने कही तो जंबू कुमार कहते हैं कि मैं तुम सबका आभारी हूं कि मेरे प्रति तुम्हारा इतना सद्भाव है। मेरे प्रति तुम्हारे बहुत अच्छे विचार हैं। तुम मेरी भलाई चाहती हो। इसलिए मैं तुम्हारा आभारी हूं, किंतु साथ में भय भी दिखलाती हो। उस संदर्भ में कहना है कि साधु जीवन में कठिनाइयां आयेंगी, यह मैं मान कर चल रहा हूँ, किंतु इतना विश्वास भी है कि उन कठिनाइयों से मेरे पैर कभी पीछे नहीं हटेंगे। मैं आपको एक बात बताता हूं कि एक व्यक्ति को भोजन नहीं मिलता है तो वह दु:खी होता है, रोता है, चिल्लाता भी है, हाय-हाय भी करता है। ठीक उसी तरह ज्ञानी व्यक्ति को भी भोजन नहीं मिलता है। वर्षा हो रही है तो साधु गोचरी में नहीं जा रहा है तो साधु को भोजन नहीं मिल रहा है, उपवास हो गया, बेला भी हो जाता है। इस पर वह चिल्लाता नहीं है। वह कहता है कि मेरे कर्मों का उदय है किंतु प्रसन्नता है कि आज सहज ही मुझे उपवास और बेला करने का मौका मिल रहा है। रोज नहीं होता और आज सहज ही मुझे मौका मिल गया है। वह रोता नहीं है, वह चिल्लाता नहीं है। यह दृष्टि का चमत्कार है।

उसी प्रकार जिसने जन्मों-जन्मों की व्यथा को जान लिया। वह जान लेता है कि यह जन्मों का, कर्मों का परिताप है, इसको मुझे भोगना पड़ेगा। मेरे किए हुए कर्मों को कौन भोगेगा? क्या पड़ोसी भोगेगा? बाकी चीजों में बंटवारा हो सकता है, किंतु किए हुए कर्मों में कोई बंटवारा होने वाला नहीं है। इसलिए वह साधु ऐसा नहीं सोचता है कि आज मुझे भोजन नहीं मिला तो कष्ट आ गया, कठिनाई आ गई। वह सोच रहा है कि मेरा कर्जा चुक रहा है। घटना एक है, किंतु अलग-अलग व्यक्तियों के चिंतन, अलग-अलग हो जाते हैं। एक दु:खी होता है और एक मन में शांत हो रहा है। इस प्रकार समभाव से जो सहना सीख लेता है, उसके लिए कोई कठिनाई नहीं है। तब तक उसको कोई कहीं-से-कहीं तक पीड़ा देने वाला नहीं है। जंबू ने फिर कहा - तुम कह रही हो यह तुम्हारा सद्भाव है, अच्छा भाव है, किंतु मैं संसार की दशा को जान चुका हूं। मेरी कोई भावुकता नहीं है। मैं संसार की रग-रग का अनुभव कर रहा हूं। जंबू कुमार को जन्मों-जन्मों का अनुभव हो रहा है। पिछले जन्मों की सारी स्थितियां भले ही देख नहीं रहे हैं, किंतु सारी अवस्थाओं का अनुभव कर रहे हैं।

उस संबंध में इतना अवश्य कहना चाहूंगा, जब यह वैराग्य भाव

जगता है तो सारी दुनिया उसके लिए एक अलग रूप बन जाती है। उससे उसका ममत्व छिन्न हो जाता है। परिवार वालों का ममत्व बना रहता है, किंतु उसका ममत्व छिन्न हो जाता है। वह कहता है कि कौन किसका है? उसके प्रश्न का जवाब देने वाला कोई है? आज मेरे भीतर नमिराज ऋषि जैसी देह की ज्वाला हो जाए तो इलाज करवाने वाला कौन? इलाज करवा भी दें तो क्या इलाज के बाद ठीक हो जाना तय है? बहुत बार बीमारी ठीक हो भी जाती है, किंतु बहुत बार ये जांच करवा ली, ये जांचें करवा ली, वो जांचें करवा ली। सारी जांचें करवा ली, किंतु डॉक्टर कहता है कि सारी रिपोर्ट्स नॉर्मल है। कोई बीमारी नहीं है। मरीज दु:खी है। मरीज को बीमारी है। अब डॉक्टर क्या इलाज करे? जब उसकी जांचों में कोई रोग है ही नहीं तो क्या इलाज करे?

ऐसी बहुत सारी घटनाएं हैं, जिनका इलाज संभव ही नहीं है। कुछ कर्मों का योग है, उनको तो भोगना ही पड़ेगा। इसलिए यह प्रश्न जब खड़ा होता है तो उस समय हमारे पास क्या उत्तर है? क्या जवाब है? हम आपकी सब चीजें कर सकते हैं, किंतु इस प्रश्न का जवाब हमारे पास नहीं है। इस प्रश्न का उत्तर आज तक न तो था, न है और आने वाले समय में कौन जवाब दे सकता है? किंतु दृढ़ भावना, दृढ़ता रहती है। जिस समय वैरागी का भाव होता है, उस समय दुनिया को देखता है तो उसको लगता है कि दुनिया क्या है? लोग संसार में भटकने के लिए, रुलाने के लिए, कितने प्रयत्न करते हैं? क्या वस्तुत: इनकी बातों में आना चाहिए या मुझे अपने भावों में रहना चाहिए? क्या करना चाहिए? इन्होंने उस उपशम रस का अनुभव किया ही नहीं होगा तो ये क्या जानें? यह हर किसी के बूते की बात भी नहीं है। जिसकी सन्मति जगती है, दुर्मति हटती है, तभी ऐसे सुखद भाव बन पाते हैं। अत: मुझे अब उपशम रस के अनुरूप अपनी आत्मा को समझना है

वैरागी हूं,
वैरागी को न धन चाहिए, न घर चाहिए,
एक वीर प्रभु की शरण चाहिए।

इतना ही कहते हुए विराम।

दिनांक - 07.11.2019

3

बजे अभय की शहनाई

शीतल जिनपति ललित त्रिभंगी,
विविध भंगी मन मोहे रे।

शीतलनाथ भगवान की स्तुति करते हुए तीन मुख्य गुणों का कथन किया गया है। ललित त्रि भंगी, तीन भंगी - करुणा, तीक्ष्णता और उदासीनता। कहा कि भगवंत तीनों गुण तीन तरह के हैं, तीनों की दिशाएं तीन तरफ की हैं। करुणा की दिशा अलग है, तीक्ष्णता की दिशा अलग है और उदासीनता की दिशा अलग है, किंतु ये तीनों गुण आप में एकत्रित होकर रह रहे हैं। यह आपकी ही विशेषता है कि आपमें तीनों गुणों ने समावेश कर लिया। उदाहरण देकर बताया कि 'सर्व जंतु हित करनी, करुणा।' आपकी सर्व जीवों के लिए हितकर भावना करुणा है। आपके मन में सारे जंतुओं के प्रति, सारे जीवों के प्रति हित का भाव है, करुणा का भाव है। आप सबका हित चाहते हो। आपकी वाणी का प्रस्फुटन भी जगत के समस्त जीवों की करुणा रूप, दया रूप, रक्षा के लिए फलित हुआ है।

तीर्थंकर भगवान उपदेश क्यों करते हैं? उसके दो कारण बताए गए। प्रथम कारण है कि जगत के समस्त प्राणियों की रक्षा रूप दया के लिए भगवान ने प्रवचन कहे। दूसरा हेतु - इनको अपने कर्मों की निर्जरा करनी थी। कर्मों का क्षय करना था। कर्मों की निर्जरा के लिए उन्होंने उपदेश किया। 'अभयदान ते मल क्षय करुणा।'

करुणा की दूसरी व्याख्या 'अभयदान ते मलक्षय करुणा।' निश्चय नय-सापेक्ष है। 'सर्व जंतु हित करणी करुणा', यह व्यवहार नय-सापेक्ष है, व्याख्या है। थोड़ा ठीक से समझना। एक व्यावहारिक धरातल होता है और एक धरातल नैश्चयिक होता है। अभी आप सुन रहे थे। मदन मुनि जी म.सा. फरमा

रहे थे कि उपकारी का उपकार मानना, कृतज्ञता स्वीकार करना व्यावहारिक धरातल है। यह व्यवहार है। नैश्चयिक क्या है? कौन किसका है? यानी कोई किसी का नहीं है। जब कोई किसी का है ही नहीं तो कौन उपकारी और कौन अपकारी? वहां तो आत्मा ही कर्ता-विकर्ता है। वह शत्रु व वही मित्र है। अत: उपकारी कौन और उपकार किसका? दूसरा पक्ष है व्यवहार। वह कहता है बड़ों का आदर करो। उपकारी का उपकार मानो आदि उक्त नयानुसार व्याख्या बताई गई है कि तीर्थंकर देव सर्व हितैषी होते हैं। सबका हित करने वाले होते हैं। सर्व जीवों के हितकारक होते हैं। यह उनकी व्यावहारिक करुणा है। निश्चय करुणा क्या है?

'अभयदान ते मलक्षय करुणा', अपनी आत्मा को अभय देना। अपनी आत्मा को भय से मुक्त करना। यह निश्चय करुणा है और अपनी आत्मा को हम अभय कब दे पाएंगे? उसका हेतु बताया कि 'मल छेदन' हमारे भीतर जो मैल पड़ा हुआ है, कण पड़ा हुआ है, कर्म पड़े हुए हैं, उनको नष्ट करना, उनको समाप्त करना। जब तक हमारे भीतर मोह का मैल रहता है, हम भयभीत होते हैं। मोह का क्षय कर दिया तो कोई भय नहीं है, निर्भय। चाहे सामने शेर भी आ जाए। चाहे कोई भी आ जाए, हमें कहीं-से-कहीं तक कोई भय नहीं होगा। मेरे भीतर ममता है, मूर्च्छा है, मोह है, आसक्ति है, जीने की आकांक्षा है, अभिलाषा है, वहां मेरे भीतर भय रहेगा। मेरे भीतर डर बना रहेगा। परिपूर्ण निर्भयता मेरे भीतर प्रकट नहीं हो पाएगी, किंतु जैसे ही मैंने मोह कर्म को हटाया, अपने को उससे स्वयं उपरत कर लिया तो अब मुझे किसी प्रकार का कोई भय नहीं होगा।

सुना है, आचार्य पूज्य श्री गणेशलाल जी म.सा. जिस समय पहाड़ी इलाके से विहार कर रहे थे, उस समय एक बार सामने से सिंह आता हुआ नजर आ गया। संतों ने कहा - गुरुदेव! सिंह आ रहा है। गुरुदेव ने कहा कि रेल के डब्बों की तरह सब मेरे पीछे लग जाओ और चलते रहे। शेर साइड से निकल गया। सिंह से यदि कोई आंख मिला ले तो सिंह उस पर वार नहीं करता है। सिंह से यदि कोई आंख मिला लेता है तो सिंह उसकी आंख में भांप लेता है कि वह क्या है? और सिंह से आंख कौन मिला पाएगा? (प्रतिध्वनि - जो निर्भय हो) जो निर्भय होगा, वह सिंह से आंख मिला पाएगा। उसकी निर्भयता को भांप लेता है तो सिंह उसका कुछ बिगाड़ नहीं करता है।

हमारे भीतर भय की झलक होती है, वही हमारे पर आक्रमण कराने वाली बन जाती है और निर्भयता हमें विजय दिलाने वाली होती है। ध्यान रखना कि सिंह से कभी आंख मिलाने का मौका मिले तो मिला लेना, किंतु कुत्ते से, श्वान से कभी भी आंख मत मिलाना। कुत्ते से यदि आंख मिला ली तो वह नहीं भौंकता होगा तो भी भौंकेगा। नहीं भौंकने वाला होता है तो भी वह भौंकने लग जाता है। ऊंची जाति के लोग ऊंचाई वाले होते हैं। सिंह ऊंची जाति वाला है। आंख मिलाने पर वह उसके सामर्थ्य को जान लेता है, किंतु श्वान (कुत्ता), आंख मिलाने पर भड़क जाएगा, वह भौंकेगा। इसलिए कहते हैं कि कुत्तों से कभी भी आंख मत मिलाना। उससे आंख मिलाने में खतरा होगा और सिंह से आंख मिलाने से खतरे टल जाएंगे।

विषय है कि हमारे भीतर निर्भयता, अभय का भाव हो। भय रहित अवस्था कैसे प्राप्त हो? हम अपने भीतर के दुर्भावों को दूर करें, हमारे दुर्भाव दूर होंगे तो भीतर अपने आप ही भय का अस्तित्व गौण हो जाएगा, दूर हो जाएगा। भय रह नहीं पाएगा। ज्ञानीजन तो कहते हैं कि सम्यक् दृष्टि भाव भी यदि हमारा गहरा है तो हमारे भीतर निर्भयता रहेगी। हमें डरने की आवश्यकता ही नहीं है। 'पाको सो खरे', क्या बोल हैं? 'पाको सो खरे' पेड़ पर जो फल पक जाता है, वह खिरता है। 'पाको सो खरे'। 'फूटो सो झरे' फूटे हुए बरतन से पानी टप-टप-टप-टप झरेगा। 'झूठो सो डरे' डर किसको है? सांच को आंच नहीं और झूठे व्यक्ति को निर्भयता नहीं। हम यदि सच्चाई में जी रहे हैं तो हमारे में निर्भयता रहेगी।

इनकम टैक्स ऑफिसर हमारी दुकान पर आ जाए तो हमारे मन में भय होगा या हम निर्भयता से उससे बात करेंगे? आप सोचना कैसे क्या स्थिति रहती है? आपमें भय का संचार होता है या निर्भयता बनी रहती है? क्या होता है? यदि मेरे मन में थोड़ा भी भय संचरित होता है तो इसका मतलब है कि कहीं-न-कहीं खोट पड़ी हुई है। बिना खोट के भय की बात ही नहीं है। गहरीलाल जी वया मुंबई में रहते हैं। बंबौरा के पास छोटे से गांव, जिसका नाम शायद गुडली है, के हैं। बातचीत में उन्होंने बताया कि दो नंबर का कोई काम नहीं है और कभी इनकम टैक्स का आदमी आ गया तो चाय तक मैंने उसको नहीं पिलाई है। क्यों पिलाना? किसलिए पिलाना? होते हैं, बहुत-से लोग ऐसे, किंतु नजरों में कम आते हैं। अधिकांशतया हम यह मान लेते हैं कि ऐसा कोई नहीं होगा जो इनकम

टैक्स की चोरी नहीं करता हो। हमारी धारणा ऐसी बनी हुई है या नहीं बनी हुई है? हम ऐसी धारणाएं मन में लेकर जीते हैं या नहीं जीते हैं? किंतु बहुरत्ना वसुंधरा ने ऐसे बहुत-से रत्नों को जन्म दिया है। उनसे भरी हुई है।

वसुंधरा पर बहुत-से ऐसे रत्न हैं, जो सच्चाई में जीते हैं। सच्चाई से जीने में भय नहीं होगा और निश्चय की व्याख्या यह है कि जो अपनी करुणा कर सकता है, वह सच्ची करुणा है। किन्हीं पांच भाइयों से व्यसन को छुड़ा दिया। किन्हीं पांच बहिनों को कुमति से छुड़ा दिया। किन्हीं पांच बछड़ों को छुड़ा दिया, किन्हीं पांच बकरों-बकरियों को छुड़ा दिया, किन्हीं पांच भिखारियों को कुछ दे दिया तो यह भी अनुकंपा है, यह भी रक्षा है, यह भी करुणा है। यह व्यावहारिक करुणा है। निश्चय करुणा वह है कि आप अपने पर उपकार करो। अपने पर उपकार करोगे तो दुनिया का उपकार अपने आप हो जाएगा। मैंने नियम ले लिया कि मैं किसी जीव की हिंसा नहीं करूंगा। बहुत-से जीवों पर उपकार हो गया या नहीं हो गया? (प्रतिध्वनि - हो गया) दिनेश जी, श्रावक का पहला व्रत क्या है? प्रतिक्रमण याद है या नहीं है? कितने दिन में कर लोगे? कितने दिन में याद कर लोगे? चातुर्मास में दिन बचे ही कितने हैं? बोलो कितने दिन में याद कर लोगे?

दिनेश जी सांखला अटक गए, अब क्या करें? निकालो बात को निकालो। खड़े तो हो जाओ। कोशिश तो कर ही सकते हैं। कोशिश करना है तो बोलो। 6 साल लगे, 60 साल लगे, कोई दिक्कत नहीं। 15 मिनट रोज प्रतिक्रमण को याद करना है। रोज समय निकाल कर 15 मिनट प्रतिक्रमण को दोगे तो याद हो जाएगा। याद नहीं होता तो कोई बात नहीं है, किंतु 15 मिनट किताब लेकर लिखा-पढ़ी करना है। कितने मिनट? 15 मिनट। दिला दूं नियम? (प्रतिध्वनि - हां, दिला दो) नियम यह रहेगा कि 15 मिनट नहीं हो पाए तो उस दिन संवर करना है समता भवन में आकर। जिस दिन 15 मिनट का समय नहीं निकाल पाए तो फिर सोने का त्याग करना। (दिनेश जी ने प्रत्याख्यान ग्रहण कर लिया)

जबरदस्ती नहीं है भाई। याद नहीं हो तो मेहनत तो कर ही सकते हो। मेहनत करना हमारे हक की बात है। याद होना हमारे वश की बात नहीं है। जो हमारे हक में है, उसे तो किया ही जाना चाहिए। परिश्रम करने से याद हो जाये तो अच्छी बात है। ठीक है। पानी चढ़ जाएगा तो अच्छी बात है, टंकी भर जाएगी।

पानी भरना है। अब पानी भरेगा नहीं तो बालटी भर-भर करके ही चढ़ाएंगे, किंतु पानी तो चढ़ाएंगे। वैसे ही मेहनत करना हमारा काम है। कहा जाता है कि मेहनत करने वालों की, सच्ची मेहनत करने वालों की कभी हार नहीं होती है। जब 15 मिनट लगाओगे और लगाना ही है तो सच्चाई से ही लगाना। झूठ से क्यों लगाना? दिक्कत यह है कि सच्चाई में जीते कम हैं। मदनलाल जी को दु:ख नहीं होगा कि 15 मिनट तक याद करने से बेटा परेशान हो जाएगा। उनको तो खुशी ही होगी। 15 मिनट प्रतिक्रमण में लगा तो सही। आपको असुविधा तो नहीं हुई, मदनलाल जी?

जहां बेटा बाप की संपत्ति पर कब्जा करेगा तो उनके प्रतिक्रमण पर कब्जा कौन करेगा? कल आने वाले समय में मदनलाल जी अगर दीक्षा ले लें तो यहां समता भवन में प्रतिक्रमण कौन करेगा? यहां प्रतिक्रमण करने वाले कम पड़ जाएंगे ना? (प्रतिध्वनि - कम पड़ जाएंगे) अरे! आप तो कम करने में लगे हुए हो। कम करने में ही लग गए। यह क्यों नहीं कहते कि वे एक जाएंगे तो हम चार आ जाएंगे। कम नहीं पड़ेंगे। एक दीक्षा लेंगे तो पीछे चार नए प्रतिक्रमण करने वाले हो जाएंगे। अच्छा कौन-कौन है, जो मदनलाल जी के दीक्षा लेने पर समता भवन में रोज प्रतिक्रमण करने आएगा। कोई हो तो झट से खड़े हो जाओ। अरे! वाह! आप तो झट से खड़े हो गए। यह देख लो आप प्रमाण। 4 नहीं, 5 खड़े हो गए। लो, 5 नहीं, 6 खड़े हो गए। छ: नहीं सात हो गए (सभा में सात लोग खड़े हो गए) जो रोज आते हैं, उनकी बात नहीं है। नया आदमी पैदा होने की बात है। वह यदि दीक्षा लेते हैं तो आपका क्या दायित्व बनता है? (प्रतिध्वनि - रोज समता भवन में आकर प्रतिक्रमण करना)।

व्यापारी लाभ देखता है या नुकसान? (प्रतिध्वनि - लाभ) व्यापारी लाभ देखता है तो क्या करना? मदनलाल जी क्या करना है आपको? एक घर छोड़ोगे तो सात जने नए आएंगे, धर्म स्थान में आ जाएंगे, प्रतिक्रमण करने के लिए। अब दीक्षा लेने में लाभ है या घर में रहने से? यदि आप घर पर बैठे रहोगे तो सात जनों की अंतराय लगेगी। अब आप दीक्षा नहीं लेंगे तो इनकी अंतराय किसको लगेगी? आप श्रावक हैं। आप चाहते हैं कि श्रावक बढ़ें। समता भवन में श्रावक बढ़ने चाहिए या घटने चाहिए? (प्रतिध्वनि - बढ़ने चाहिए) तो उपाय क्या है? मदन लाल जी दीक्षा लें।

हकीकत में यह स्वयं की अनुकंपा है। व्यावहारिक अनुकंपा नहीं है, यह

केवल अपनी अनुकंपा है। 'अभयदान ते मल क्षय करुणा' अपनी आत्मा को अभयदान देना। अपनी आत्मा को अभय करना निश्चय करुणा है और सर्व जंतु हित की भावना होना व्यावहारिक करुणा है।

यह तो हो गया करुणा का स्वरूप। तीक्ष्णता का स्वरूप क्या है? कर्म विदारण तीक्ष्ण रे। सर्व जंतु पर आपकी निगाहें करुणा की हैं किंतु जैसे ही कर्म सामने आए, आपकी निगाह में अंतर आ गया। तीक्ष्णता आ गई। ऐसी तीक्ष्णता आ गई कि उन पर किसी प्रकार का कोई रहम नहीं। क्रोध, मान, माया, लोभ। इनसे प्रेम करना? इन पर करुणा करना? इन पर आपकी निगाह टेढ़ी हो गई, उस टेढ़ी निगाह की तीक्ष्णता से कर्मों का क्षय किया। 'कर्म विदारण तीक्ष्ण रे' कर्मों को शिथिल करने की जो आपकी शैली है, वह शैली आपकी तीक्ष्णता है। तीक्ष्णता का ज्ञान कराने वाली है।

'हानादान रहित परिणामी, उदासीनता सोहे रे' बड़े मर्म की बात है। 'हानादान रहित परिणामी,' गम है, हर्ष है। आमदनी हो गई तो हर्ष नहीं है और आमदनी नहीं हुई तो भी गम नहीं है। यह कैसी बात हो गई? बताओ, यह कैसी बात हो गई? यह बताओ कि ऐसे में क्या मिलेगा? जो मिलेगा या जो खोएंगे, वह मेरा नहीं है और जो मिला है, वह भी मेरा नहीं है। समझ में आई बात? हमें कुछ भी मिलेगा तो वह मेरा नहीं है और मेरा कुछ भी खो जाएगा तो वह भी मेरा नहीं है। आत्मा का न तो कुछ खोया जाएगा और न ही कुछ पाया जाएगा। खोना-पाना पुद्गल है। किसी को खोएगा और किसी को पाएगा। करोड़ रुपये पा लिए तो हर्ष हो गया। क्या है? तुम्हारा नहीं है और करोड़ रुपया चला गया। तुम्हारा नहीं है तो चला गया। घर में संपत्ति हुई तो हर्ष मना लिया और संपत्ति चली गई तो दु:ख मना लिया। कौन? हमने अपना माना उस कारण से हर्ष है और हमने अपना खोया हुआ माना तो हमें गम है।

वस्तुत: मेरा जो है, वह कभी भी कमतर नहीं हो सकता। मेरे से कम नहीं हो सकता। मेरे से खोया नहीं जा सकता। मेरे का मेरे से वियोग हो नहीं सकता है। हो सकता है क्या? (प्रतिध्वनि - नहीं) आत्मा का आत्मा से क्या वियोग होगा? कुछ भी वियोग नहीं होगा। आत्मा एक द्रव्य है। उस द्रव्य में से एक प्रदेश भी बढ़ने वाला नहीं है, न ही घटने वाला है। जो मुझे उपलब्ध हो गया, हो रहा है, उसके प्रति तटस्थ भाव, उसके प्रति उदासीन भाव। यह भाव कर्म बंधन की प्रक्रिया को रोकने वाला है। यदि हम किसी विषय में तटस्थ हो जाते हैं तो

कर्म बंधन रुक जाते हैं या बहुत ही अल्प कर्म बंधन होते हैं, जिसमें हमारा निषेध और हां, दोनों तरफ झुकाव हो जाता है। राग की तरफ हो जाता है या द्वेष की तरफ हो जाता है। दोनों तरफ कर्म बंधन होंगे। चाहे राग भाव से काम करोगे तो भी कर्म बंधन होगा और द्वेष भाव से काम करोगे तो भी कर्म बंधन होगा। किंतु दोनों में तटस्थ हो गए तो तथाभूत कर्मबंध नहीं होंगे।

कोई झगड़ा कर रहा है, कोई झगड़ रहा है और हमने किसी भी तरफ सहयोग दिया, इधर हां और उधर ना हुआ और हमें कोर्ट में खड़ा किया गया कि ये भी उसमें शामिल है तो हमारे पर भी आंच आएगी या नहीं आएगी? मैं तटस्थ हूं। मैंने किसी तरफ कोई झुकाव नहीं किया। कोई इशारा नहीं किया तो मेरा कुछ भी बिगाड़ होने वाला नहीं है। वैसे ही दुनिया में बहुत सारी घटनाएं घटती हैं। मैं किसी के प्रति न 'यस' बोलता हूं और न ही 'नो' बोलता हूं। मेरी न हां है और न ही ना है। मैं तटस्थ हूं। मेरे भारी कर्मों का बंध नहीं हो रहा है और न्यूनतम हो रहा है तो वह अलग बात है। आप बिजली का कनेक्शन लेते हैं, किंतु स्विच ऑन नहीं करते हैं। चलाते नहीं हैं तो महीने में खर्चा आएगा या नहीं आएगा? घर में मीटर और पॉवर लगा हुआ है तो मीटर में खर्चा तो उठेगा या नहीं उठेगा? मीटर नहीं भी चला तो भी मिनिमम चार्ज भरना पड़ता है या नहीं भरना पड़ता है? (प्रतिध्वनि - भरना पड़ता है) भरना पड़ता है तो जब तक हम कषायों में जी रहे हैं तब तक मिनिमम कर्म का बंध तो होता है, होगा। किंतु बिजली जलाएंगे तो ज्यादा बिल उठेगा। ए.सी. चलाएंगे तो ज्यादा बिल उठेगा। हीटर चलेगा तो बिल बढ़ेगा। अब तो सर्दी का समय आ गया, ज्यादा बिल उठेगा या नहीं उठेगा? (प्रतिध्वनि - उठेगा)

हम राग-द्वेष जोड़ेंगे तो हमारा बिल ज्यादा उठेगा। हमारे कर्मों का बंध ज्यादा होगा और हम उदासीन रहते हैं,

'ओ समदृष्टि जीवड़ो, करे कुटुंब प्रतिपाल,
अंतर्गत न्यारो रहे, ज्यों धाय खिलावे बाल।'

मेरा नहीं है। नहीं रहा तो अपना नहीं, रहा तो कोई बात नहीं। ऐसी तटस्थ वृत्ति जब आ जाती है तो वह बड़ी महत्त्वपूर्ण बन जाती है। उससे हमारे जीवन में फिर दु:ख आना ही नहीं है। आगे तो आत्मा का ही आनन्द मिलेगा। जब हमारी आत्मा पर दृष्टि केंद्रित हो जाएगी तो वियोग और संयोग में न तो मैं हर्षित होऊंगा और न ही मैं दु:खी होऊंगा।

'योगे वियोगे भवने वने वा' चाहे योग में हो, चाहे वियोग में। चाहे वन में हो, महलों में, चाहे जंगल में हो। राम अयोध्या में थे तो भी खुश थे और जंगल में थे तो भी खुश थे। खुश थे ना? (प्रतिध्वनि - हां) अरे! क्या पता? पूछा क्या आपने? (प्रतिध्वनि - नहीं) फिर? पूछते तो पता चलता न। पूछते तो पता चलता। आपने पूछा क्या कि आप खुश थे या नहीं थे? सीता का हरण हुआ तो खुश थे या नहीं थे? (प्रतिध्वनि - नहीं) नहीं थे तो फिर अब भी कह दो कि खुश थे कि चलो अच्छा हुआ, 'पापो कटियो।'

वन में जाने की बात हुई तो कोई उनके मन पर, चेहरे पर पीड़ा झलकी नहीं थी। जो भी हमने अध्ययन किया या उनकी तसवीरों में देखा है या फोटो में देखा या पिक्चर में देखा है कि वन में जाते हुए उनके चेहरे पर दु:ख नहीं है। पीड़ा नहीं है। गम नहीं है। 'हा..! मुझे अयोध्या छोड़कर जाना पड़ रहा है!' यह पीड़ा उनको नहीं सता रही थी। काहे की पीड़ा? काहे की पीड़ा? है क्या मेरा? जिसको मैं कहूं कि यह मेरा है, वह मेरा नहीं है। कौन है मेरा? बस ये विचार जब आ जाते हैं तो कोई दु:ख नहीं होगा। कोई पीड़ा नहीं होगी। कोई गम नहीं होगा। कोई तनाव नहीं होगा। कुछ भी नहीं होगा। तटस्थ भाव से व्यक्ति सोच ले तो व्यक्ति सुखी हो जाता है। गर्मी का समय है, रूम में गया, स्विच ए.सी. का चलाना था, चला दिया हीटर का। हीटर का स्विच सर्दी में चलाना था, किंतु चल गया ए.सी. का। आपको परेशानी हो सकती है। बिजली को कोई फर्क नहीं पड़ा। विद्युत् तटस्थ है।

आचार्य पूज्य गुरुदेव के जीवन की बहुत सारी घटनाएं हैं, जिनमें वे तटस्थ रहे थे। एक बार का प्रसंग है कि स्वामी रामसुखदास जी से मिलना हुआ और काफी समय तक चर्चाएं हुईं। मूर्ति पूजा पर भी चर्चा चली। जब उस बात पर आचार्य देव ने अपने विचार व्यक्त किए तो स्वामी रामसुखदास जी बहुत प्रभावित हुए और जैसा बताया है कि उन्होंने प्रतिज्ञा कर ली कि मैं अपनी जिंदगी में कभी फोटो नहीं खिंचवाऊंगा। उन्होंने यह प्रतिज्ञा कर ली कि मेरे पीछे कोई मेरा अवशेष नहीं रहे। वह बाद में कुछ बनाते हैं ना, क्या बोलते हैं? (प्रतिध्वनि - चबूतरा, स्मारक) हां, कोई चबूतरा, स्मारक ऐसा नहीं बनाए और हमने यह सुना है कि उन्होंने अपनी वसीयत में इस बात को लिखा कि मेरे पीछे किसी प्रकार की कोई भी संस्था, चबूतरा आदि नहीं होना चाहिए। मुझे क्या लेना-देना? मेरा उससे क्या संबंध है?

बंधुओ! एक छोटी-सी बात किस समय, किसको, कितनी कारगर हो

जाती है? आचार्य देव ने बहुतों के सामने, लोगों ने पूछा तो बताया होगा कि जड़ पूजा में क्या स्थिति है? वस्तुत: हम जड़ को पूजेंगे तो वहां से क्या चीज मिलेगी? सब व्यर्थ की बात है, मिलना कुछ भी नहीं है। किंतु लोगों में एक भय बैठा हुआ है कि ऐसा नहीं किया तो वैसा हो जाएगा। वैसा नहीं किया तो ऐसा हो जाएगा। कभी नहीं किया और माथा दु:खने लग गया तो कहेंगे कि देखो, देखो। हो गया ना। तुमने नहीं किया, इसलिए तुम्हारा माथा दु:ख रहा है। यह कर लेते तो माथा नहीं दु:खता। संयोग से उसने अगरबत्ती लगाई और माथा दु:खना बंद हो गया। अब वह क्या सोचेगा? उससे क्या हुआ? उसके लिए तो माथा दु:खेगा नहीं। पहले कभी अगरबत्ती करते हुए माथा दु:खा होगा या नहीं दु:खा होगा? (प्रतिध्वनि - दु:खा होगा) माथा तो कई बार दु:खा होगा किंतु ध्यान में नहीं आया और आज अगरबत्ती नहीं की और माथा दु:खने लगा तो यह ध्यान में आ गया।

हकीकत में है ही नहीं। जैन तीर्थंकर भगवान का आगम देखें, तीर्थंकर भगवान की वाणी देखें तो वहां उन्होंने चैतन्य पूजा की बात की है, गुण पूजा की बात की है, जड़ पूजा की बात की ही नहीं है। कहीं-से-कहीं तक कोई उसको महत्त्व नहीं दिया है। जड़ पूजा से मिलने वाला क्या है? क्या मिलने वाला है उससे? कबीर जी की सूक्तियां सुनी हैं, कबीर जी की बातें सुनी हैं तो उन्होंने बहुत निर्ममता से चोट की है। क्या मिलता है? वे तो कहते हैं कि सारा नजारा देखकर कभी मुझे हँसना आता है और कभी रोना आता है। हँसना इसलिए आता है कि कैसे लोग हैं? क्या सोच रहे हैं? क्या कर रहे हैं? और रोना आता है उनकी अज्ञानता को देखकर कि कैसे-कैसे लोग हैं? कैसे-कैसे अज्ञान में जी रहे हैं?

ज्ञानी पुरुष यही तो विचार करते हैं। वे औरों के दु:ख में दु:खी हो जाते हैं। अरे! इतने अज्ञान में है? यही तो बात है। भगवान को जब केवलज्ञान, केवलदर्शन होता है तो वे प्रवचन देना शुरू कर देते हैं। सारे जीवों के दु:ख की, अज्ञान की दशा देखते हैं। उनकी दशा देखकर उनके प्रवचन चालू हो जाते हैं।

बंधुओ! हम क्या विचार कर रहे हैं। दृष्टि बदलने पर विचार बदल जाते हैं। साधु बनने की भावना बनते ही धन-वैभव, परिवार-कुटुम्ब सबको छोड़ने को तैयार हो जाता है। वह जानता है कि साधु जीवन में अनेक परीषह आते हैं, किंतु दृष्टि बदलते ही सारे कष्टों को सहने का सामर्थ्य आ जाता है।

जग जाता है। शालिभद्र की बात करें या जम्बू जी की। अपार वैभव को लात मार दी। दीक्षा के पूर्व पत्नियों ने कहा था - कभी आपको खाने को मिलेगा और कभी नहीं मिलेगा। कभी प्यास लगेगी तो पानी मिलेगा, कभी पानी नहीं मिलेगा। यहां तो षट्रस भोजन खाने को मिल रहा है। वहां पर कभी रूखा मिलेगा, कभी कुछ मिलेगा। क्या कुछ मिलेगा, कोई भरोसा नहीं है?

जंबू कुमार ने बड़ा सटीक जवाब दिया। प्रिय, जैसे जीर्ण वस्त्र फटता है, वैसे ही जीर्ण शरीर होने के बाद वह नष्ट हो जाता है। इस जीर्ण शरीर को कोई कितना भी रोकना चाहे, वह रोक नहीं पाएगा और बुढ़ापा आएगा तो उस समय कई बीमारियां आ जाएंगी। जितनी भी औषधियां ले लो, वह बुढ़ापा रुकेगा नहीं। इसके लिए तुम कह रही हो कि यहां पर अच्छा खाना मिल रहा है। साधु बनने के बाद कैसा खाना मिलेगा? प्रिय, खाने के लिए जीना है या जीने के लिए खाना है? जीने के लिए खाना है या खाने के लिए जीना है? जब खाने के लिए जीना होता है तब आदमी सोचता है कि मैं कैसा खाना खाऊं? जब जीने के लिए खाना होता है तो फिर पेट भरने के लिए जो मिल जाए, वह सही है?

दूसरी बात, कितना भी बढ़िया से बढ़िया पदार्थ हो, इस तन के साथ से युक्त होने के बाद उनकी हालत क्या होती है? उनकी दशा क्या होती है? क्या वे स्वादिष्ट, सुगंधित बने रहते हैं या उनकी भी परिणति मल-मूत्र के रूप होती है? मल और मूत्र के रूप में बदलेंगे और हाड़-मांस में बदलेंगे। इससे बढ़कर और क्या बनेगा? इसलिए इस शरीर की तरफ यदि ध्यान दोगे तो कभी भी हम आत्मकल्याण की दिशा में विचार नहीं कर सकते। यह सोचो कि वहां पर नहाना-धोना नहीं होगा, वहां शरीर काला-कलूटा हो जाएगा। शरीर मैला हो जाएगा। शरीर पर मैल जमा हो जाएगा और शरीर से गंध आने लग जाएगी। इन सब बातों पर भी विचार बेकार की बात है। कौए और कोयल को कितना भी धोओ, रगड़-रगड़ कर धोओ, कितने ही लीटर पानी खर्च कर दो, वह सफेद हो जाएगा क्या? सर्वर को ठंडा करने में कितना पानी लगता है? (प्रतिध्वनि- 189 मिलियन गैलन) हां, 189 मिलियन गैलन।

189 मिलियन गैलन पानी सर्वर को ठंडा करने के लिए लगता है। आपको नेट चाहिए, आपको मोबाइल चाहिए, आपको कम्प्यूटर चाहिए, आपको लैपटॉप चाहिए, आपको सर्वर चाहिए और वहां उस सर्वर को ठंडा करने में इतना पानी लग जाता है। आदमी को पीने के लिए पानी की किल्लत हो रही

है? वह कौन-सी एक्सप्रेस है, जिसमें एक लीटर पानी मिलता था? (प्रतिध्वनि - शताब्दी एक्सप्रेस) अब तो रेलवे ने क्या कर दिया कि एक बजे से पांच बजे तक चार घंटे की यात्रा है और चार घंटे की यात्रा में आपको पांच सौ मि.ली. पानी मिलेगा? कितना? (प्रतिध्वनि - 500 मि.ली.) क्या करोगे? चार घंटे में आधा लीटर चलेगा क्या? सर्दी में तो फिर भी काम हो जाएगा, किंतु गर्मी में क्या हाल होंगे? थोड़ा-थोड़ा मुंह गीला किया जाता है। रुई ले-लेकर होंठ को गीला कर लो तो काम चलेगा। दो-दो बूंद जीभ पर टपका लो तो चार घंटे निकल जाएंगे।

ऐसी हालत हो जाती है और दूसरी तरफ सर्वर को ठंडा करने के लिए 189 मिलियन गैलन पानी लगता है। इतना पानी होगा। इतना पानी भी खर्च कर दो तो कौए, कोयल उजले हो जाएंगे? क्या उनका रंग सफेद हो जाएगा? (प्रतिध्वनि - नहीं) नहीं हो पाएगा। वैसे ही शरीर को चाहे कितना भी धो लो, उससे आत्मिक सिद्धि होने वाली नहीं है। जब तक कर्मों के मैल को नहीं हटा देंगे, जब तक कर्मों के मैल को धो नहीं पाओगे, तब तक आत्मा साफ-सुथरी नहीं हो सकती है। तब तक वह चार गतियों में भटकती रहेगी। नरक-निगोद में गोते खाते रहेगी। इसका उद्धार होने वाला नहीं है। बन्धुओ! चार गतियों में हमने अब तक जो दु:ख झेला है, उसका यदि गणित लगाओ तो क्या-क्या तर्क हैं? क्या-क्या कष्ट नरक में भोगे? क्या-क्या कष्ट तिर्यंच गति में भोगे? है कोई गणित। लगाया जा सकता है हिसाब?

अभी कुछ शिविर लगे थे, उन शिविरों में बताया गया कि माता की कुक्षि में जीव को कितनी पीड़ा होती है? और क्या-क्या कष्ट होते हैं, क्या-क्या दु:ख होते हैं, क्या-क्या वेदनाएं होती हैं? उसे नौ महीने तक सिकुड़ कर पड़े रहना पड़ता है। फिर क्या उसी काल-कोठरी में जाना है? क्या उसी में जाने का मन कर रहा है? मन में क्या हो रहा है? क्या उससे छुटकारा पाने का मन हो रहा है? या जैसे नरक में कितनी-कितनी यात्राएं कीं, वैसे ही करना है। तिर्यंच गति में देखते हैं कि पशुओं की हालत किस तरह है? हमारी भी हालत बुरी है। उससे बदतर हमारी हालत हुई होगी। किंतु इन चार गतियों का लेखा-जोखा कौन बताए? यदि कभी कोई सर्वज्ञ ज्ञानी हो और चार गतियों का लेखा-जोखा अंकित करे और फ्लॉपी निकालते जाओ, निकालते जाओ। एक कम्प्यूटर, दो कम्प्यूटर, पचास कम्प्यूटर, सौ कम्प्यूटर, हजार कम्प्यूटर, वे भी कम पड़

जाएंगे। इतने में बातें नहीं भर पाओगे। इतनी सारी कठिनाइयां हमने झेली हैं। हम इस पर ध्यान नहीं दे रहे हैं। बोलो, मन क्या करता है?

हम विचार करें, चिंतन करें, मनन करें तथा जैसे करुणा-कोमलता, तीक्ष्णता और उदासीनता ये तीन गुण शीतलनाथ भगवान में रहे हैं, वैसे ही हमारे भीतर हो जाएं, ऐसा हम प्रयत्न करें। अपनी आत्मा को कल्याण की दिशा में आगे बढ़ाएंगे। आत्मा को भय से मुक्त करेंगे। आत्मा को भय से मुक्त करेंगे तो मोक्ष मिलेगा। दूसरी बात है कर्म विदारण की। कर्मों का क्षय करने के लिए तीक्ष्णता। न हर्ष न गम, ऐसी उदासीनता जो नए कर्मों का बन्ध नहीं होने देगी। इसलिए ये तीन पवित्र भाव हम अपने जीवन में अपनाएंगे तो हमारा कल्याण होगा। हम पूर्व जन्मों के दु:ख का क्षय करें और नए सिरे से नए कर्मों का उपार्जन नहीं करें। हम अपने जीवन को और इस मनुष्य तन को इधर-उधर नहीं भटकाएं, जिनवाणी के आधार से अपने जीवन को धन्य बनाएं।

इतना ही कहते हुए विराम।

दिनांक - 08.11.2019

4

अपने घर की देहरी में

श्री श्रेयांस जिन अंतरयामी, आतमरामी नामी रे।

संसार में दो तरह के प्राणी पाए जाते हैं या संसार में रहे हुए प्राणियों को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है। इंद्रियरामी और आत्मरामी। इंद्रियरामी का अर्थ है कि पांच इंद्रियों के विषय में जिसकी प्रवृत्ति रही हो। कोई सुनने में मुग्ध बना हुआ होगा, कोई देखने में मुग्ध बना हुआ होगा, कोई सुगंध में, कोई चखने में और स्पर्श आदि के अनुभव में मुग्ध बना हुआ होगा। उनमें सुख अनुभव कर रहा होगा। जिसको पांच इंद्रियों के विषय अच्छे लगते हैं, पांच इंद्रियों के विषय में जिसका मन अनुरक्त रहता है, उसे यहां पर इंद्रियरामी कहा गया है। वह इंद्रिय धन को प्राप्त करेगा। इंद्रियों के विषयों को प्राप्त करेगा। अच्छा सुनने को मिल सकता है उसको। बढ़िया देखने के पदार्थ उसे प्राप्त हो सकते हैं। सुगंधित और अच्छे स्वादिष्ट पदार्थ, वह ग्रहण करने में समर्थ हो सकता है, जिनमें सुख उत्पन्न होता हो वैसे स्पर्श आदि का अनुभव करने वाला हो सकता है। पांच इंद्रियों के विषय में सुख और साता की अनुभूति करने वाला, उसी में मोद मनाने वाला, आत्मा के सुख को नहीं प्राप्त कर पाएगा। जो सच्चा सुख है, आत्मिक आनन्द है, उस आनन्द की वह अनुभूति नहीं कर पाएगा।

भगवान महावीर से पूछा गया कि भगवन्! धर्म श्रद्धा से क्या लाभ होता है? आत्मानुभूति में जीने से क्या फायदा होता है? तो भगवान बहुत स्पष्ट फरमाते हैं कि 'सायासोक्खेसु रज्जमाणे विरज्जइ' (उत्तराध्ययन सूत्र - 29वां अध्ययन), पांच इंद्रियों के विषय में अब तक जो साता की अनुभूति कर रहा था। जिसको पांच इंद्रियों के विषय बड़े सुहाने लग रहे थे, मनोज्ञ और मनोरम लग रहे थे, उनको प्राप्त करने के लिए अभीप्सु बना हुआ था कि मुझे ये विषय मिल जाए। उनको प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील भी बना रहता था। 'विरज्जइ', अब उसकी

इच्छा उसको प्राप्त करने के लिए नहीं बनती। उस ओर उसका आकर्षण खत्म हो जाता है। इसका यह अर्थ नहीं है कि उसने जीवन से हाथ धो लिया या जीवन में वह कुछ भी नहीं करेगा। खायेगा नहीं, पीयेगा नहीं, सूंघेगा नहीं। ऐसी बात नहीं है। वह खाना खायेगा, किंतु अब खाने का तरीका बदल गया।

अब उसकी दृष्टि बदल गई। अब खाने के लिए नहीं जी रहा है। जीवन निर्वाह के लिए खा रहा है। पहले जीभ स्वाद ढूंढ़ा करती थी, नाक गंध का अनुभव करना चाहती थी, अब वह दृष्टि नहीं है। जीभ पर स्वाद आ भी गया तो उसके प्रति अनुरक्ति का भाव नहीं होगा। उसके प्रति राग का भाव नहीं होगा। उसके प्रति आसक्ति का भाव उसमें नहीं होगा। तटस्थ भाव रखता है। वैसे ही गंध में, वैसे ही स्पर्श में और वैसे ही रूप दर्शन में उसकी दृष्टि बदल गई। खाने का कौन-सा पदार्थ मिल रहा है, उस ओर उसका लक्ष्य नहीं है। उदर पूर्ति करना उसका उद्देश्य है। शरीर निर्वाह करने के लिए पदार्थों को स्वीकार करना, ग्रहण करना, उसका लक्ष्य बन गया।

धन्ना सार्थवाह की कहानी आती है। जिसके पुत्र को चोर ले गया। वह उसके आभूषण उतार लेता है और उसके पुत्र को मारकर कुएं में डाल देता है। वह पकड़ा गया, जेल में डाल दिया गया। कालांतर में सेठ को भी किसी अपराध में जेल हुई और दोनों एक ही बेड़ियों से बांधे गए, जकड़े गए। पहले एक बेड़ी हुआ करती थी, जिसमें पांव को डालकर बांध दिया जाता था, कस दिया जाता था, खुलता नहीं था और एक बेड़ी में दो को बांधा जा सकता था। एक तरफ चोर को बांधा गया और एक तरफ सेठ को बांधा गया। चोर को जेल में पकने वाला भोजन प्राप्त होता था। सेठ को इतनी छूट थी कि घर से आया हुआ भोजन वह कर सकता था। सेठ के लिए विभिन्न प्रकार के व्यंजन आया करते थे।

एक दिन चोर ने सेठ से कहा कि सेठ, तुम्हारे भोजन में से कुछ व्यंजन मुझे भी खाने के लिए दो, बहुत दिनों से ऐसे व्यंजन खाए नहीं हैं। सेठ ने डांटते हुए कहा - तुमको शर्म नहीं आ रही है? मेरे पुत्र का तुमने हनन किया, तुम मेरे पुत्र को मारने वाले हो और मुझसे ही तुम खाने के लिए मिठाइयां मांग रहे हो, व्यंजन मांग रहे हो? मैं नहीं देता तुमको। ठीक है। 'सौ दिन सुनार के, एक दिन लुहार का।' क्या होता है? 'सौ दिन सुनार के और एक दिन लुहार का।' मालूम है कि क्या होता है? सौ दिन सुनार का, एक दिन लुहार का।

सुनार और लुहार में दोस्ती होती है। सुनार लुहार के यहां पर अकसर

आता-जाता रहता है और जाते हुए कभी कील उठाता है, कभी कुछ उठाता है, कभी कुछ उठाता है और कहता है कि लुहार भाई, यह मैं ले जाता हूं। लुहार भाई यह मैं ले जाता हूं। ऐसा प्राय: करके होता रहा। एक दिन लुहार भी सुनार के यहां पर चला गया। बैठा, गप-सप हुई, जाते हुए एक छोटा-सा सोने का टुकड़ा उठाया और कहा - सुनार भाई यह ले जा रहा हूं। भरपाई पूरी हो गई या नहीं हो गई? (प्रतिध्वनि - ज्यादा ही हो गई) ज्यादा हो गई। इसलिए कहा कि सौ दिन सुनार की चल गई और एक दिन लुहार की भी चल गई।

वैसे ही चोर ने विचार किया कि सेठ अकेला खाता है, ठीक है। खाने वाले में वापस निवृत्त होने का भी प्रसंग बनता है। हाजत हो गई। अब वह सेठ चोर से कहता है कि चलो मेरे साथ निपटने के लिए जाना है। एक ही बेड़ी में बंधे हुए थे। अब सेठ कह रहा है कि तुम मेरे साथ चलो। वह कहता है कि जो खायेगा, वह जाएगा। मैं क्यों जाऊंगा? जो खायेगा वो ही जाएगा। मैं क्यों जाऊं? सेठ कह रहा है कि अरे भाई, मुश्किल हो रही है, कैसे भी चलो। वह कहता है कि नहीं-नहीं! फिफ्टी-फिफ्टी (50-50)। यानी तुम्हारे घर से आने वाले व्यंजनों में से आधा भाग मुझे देना स्वीकार हो तो मैं चलूंगा। अन्यथा मैं नहीं चलता। सेठ कैसे कहे कि चलो मैं नहीं जाता हूं? सेठ बोल सकता है क्या कि तुम नहीं चल रहे हो तो मैं भी नहीं जाऊंगा निपटने? हो पाएगा क्या?

यद्यपि आगमों में बताया गया है कि जिन कल्प को स्वीकार करने वाले मुनिराज में इतनी शक्ति होती है, इतनी ताकत होती है कि छ: महीने तक मल-मूत्र की बाधा को वे धारण करने में समर्थ होते हैं। कितने समय तक? (प्रतिध्वनि - छ: महीने तक) छ: महीने तक, वे उसको धारण करने में समर्थ होते हैं। छ: महीने तक निवृत्त नहीं हो तो उनको कोई कठिनाई नहीं होती। आम आदमी के लिए 10 मिनट निकालना भी शायद भारी पड़ जाए। यदि तेज बाधा आ जाए तो हालत और भी खराब हो जाए।

सेठ अनुनय करने लगा कि कैसे भी करके चलो। चोर कहता है कि 50-50। घर से जो मिठाइयां आएंगी, जो व्यंजन आएंगे, आधा मुझे खाने के लिए दो तो मैं चलता हूं। आखिर सेठ को झुकना पड़ा, मानना पड़ा और वह झुक गया, क्योंकि हालत ऐसी थी कि उसका कोई दूसरा उपाय ही नहीं था। दूसरे दिन घर से टिफिन आया। घर से खाने का सामान आया। उसमें व्यंजन थे, मिठाइयां थीं। सेठ बिना मनुहार के, बिना कहे आधी मिठाइयां चोर की तरफ रखता है और

आधी मिठाइयां स्वयं खाता है। आधा भोजन करता है, आधा उसको देता है। यह दृश्य नौकर ने देखा। उसको बड़ा ताज्जुब हुआ। जो नौकर भोजन लेकर आया, उसने देखा कि सेठ आधा खा रहा है और आधा चोर को दे रहा है।

उसको ठीक नहीं लगा। उसके पेट में बात खटी नहीं। घर गया तो सेठानी जी से बोला कि सेठानी जी, पानी ऊपर से निकल रहा है। आप इतनी मेहनत करके मिठाइयां बनाती हो, व्यंजन बनाती हो। आपके मन में सेठ साहब के प्रति बड़ा अनुरागी भाव है। सेठ साहब को साता पहुंचाने का आपका लक्ष्य है। किंतु क्या आपको मालूम है कि सेठ साहब क्या कर रहे हैं? जिस अपराधी ने आपके पुत्र का हनन किया, हत्या की, वे आपकी बनाई हुई मिठाइयां आधी उसको परोसते हैं, उसको खाने के लिए देते हैं। सेठानी बड़ी नाराज हो गई। रसोई तो भेजती है, खाना तो भेजती है। खाना बंद नहीं किया। पर मन खिन्न हो गया।

एक दिन, दो दिन, चार दिन में सेठ की छुट्टी हो गई। सेठ घर पर आया। सेठानी बोलती नहीं है। मुंह चढ़ाकर बैठी है, नाराज है। सेठ ने कहा कि हो क्या गया? क्या जेल से छूटना तुमको अच्छा नहीं लग रहा है? मेरा घर आ जाना तुम्हें सुहा नहीं रहा है? आखिर कारण क्या है? ऐसी नाराजगी किस कारण से है? सेठानी ने तीक्ष्ण शब्दों में जवाब दिया कि मेरे मुंह से क्यों बुलवाना चाहते हो? क्यों मेरा मुंह खुलवाना चाहते हो? मेरे बेटे के हत्यारे को आप इतना प्यार करते हो, प्रेम करते हो कि मेरे द्वारा भेजी गई मिठाइयां आधी आप उसको परोसते हो। इससे मेरे दिल में कितनी आग लगी, मुझे कितनी पीड़ा हुई है, यह मैं ही जान सकती हूं। मेरे बेटे के हत्यारे के प्रति आपका यह रुझान, आपका यह अनुराग, आपकी यह मेहरबानी मेरे दिल को कचोट रही है। क्या वह आपका बेटा नहीं था, जिससे आपने उस हत्यारे के प्रति इतना सौहार्द्र भाव रखा? सेठ ने कहा कि तुम मेरी बात सुनो और फिर निर्णय करो कि मैंने किया तो क्या किया? मैं चोर को खिलाता था, यह तुम्हारा कहना सही है, किंतु मेरे सामने परिस्थिति आ गई थी। सेठ ने अपनी परिस्थिति बताई और कहा कि बोलो ऐसे समय में मैं क्या करता? मेरे सामने लाचारी थी, विवशता थी। मैंने उसको प्रेम से नहीं खिलाया। मैं उसको लाचारी से खिला रहा था। उसको खिलाना मेरी विवशता थी।

उसकी विवशता थी या नहीं थी? (प्रतिध्वनि - थी) सेठ की लाचारी थी या नहीं थी? (प्रतिध्वनि - हां, थी) यह आख्यान देते हुए भगवान यह बताते हैं कि जिसकी दृष्टि बदल जाती है, वह आत्मरामी बन जाता है। इंद्रियरामी से

जिसकी दृष्टि बदली, आत्मरामी बना, अब शरीर को खाना देता जरूर है, किंतु जैसे सेठ बिना इच्छा के चोर को खिला रहा था, वैसे ही वह आत्मरामी शरीर को खिलाता है। उसकी लाचारी है। इसको टिकाए रखने के लिए, इसको बनाए रखने के लिए खाना देना होता है, किंतु सेठ जैसे चोर को प्रेम और प्यार से नहीं दे रहा था, लाचारी से खिला रहा था, वैसे ही आत्मरामी शरीर को टिकाए रखने के लिए शरीर को खिलाता है। अभी वह शरीर में रह रहा है और इस शरीर को टिकाना जरूरी है। इसलिए वह शरीर को भोजन देता जरूर है, किंतु उसके प्रति वह अनुराग नहीं रखता है। जैसे पहले शरीर के पोषण के लिए, शरीर को खाना देता था, वह दृष्टि आज नहीं रह गई। जैसे सेठ ने चोर को खाना दिया, वैसे ही मुनि, आत्मरामी शरीर को खाना देता है। ऐसा वही कर सकता है जो अपने घर की देहरी में रहने लगे।

इस एग्जाम्पल से, इस दृष्टांत से हम बहुत अच्छी तरह से समझ सकते हैं कि दृष्टि बदलने के साथ ही कितना बड़ा रूपांतरण हो जाता है? अब बाह्य पुद्गलों में उसको कोई स्वाद नहीं है। पहले जो पदार्थ बड़े स्वादिष्ट लगते थे, मनोज्ञ और मनोरम लगते थे, अब उनमें वह स्वाद नहीं आता। अब उनमें वह जायका नहीं आता। हालांकि पदार्थों में स्वाद रहा हुआ है, किंतु पहले हमारा मन उस स्वाद को लेने के लिए तत्पर रहता था, अभिमुख रहता था, उनमें मुग्ध रहता था। मन में तमन्ना रहती थी कि मैं उनको प्राप्त करूं। अब उसके मन में वह तमन्ना नहीं है। वह अभिलाषा नहीं है। वह अभिमुखता नहीं है कि मैं उसको प्राप्त करूं। मेहमान पहले भी घर में आते थे, हमें हर्ष होता था तो हर्ष से उनको बंधाया जाता था। बंधावणा अभी-भी करते हैं, किंतु मन का हर्ष अब उतना नहीं है।

बस यहीं आकर बात स्पष्ट हो जाती है कि मन बदल गया तो समझो कि सारी सृष्टि बदल गई। सारा रूपांतरण हो गया। 'साया सोक्खेसु रजमाणे विरज्जइ' साता और सुख में अब रस नहीं है, अब लगाव नहीं है। अब वह आनन्द नहीं है। आचार्य पूज्य गुरुदेव के समीप आदिवासी बालेश्वर जी आए। बालेश्वर जी आदिवासियों के उत्थान के लिए काम करने वाले थे। वह मामाजी के नाम से प्रसिद्ध थे। आचार्य भगवंत के सान्निध्य को प्राप्त किया। आचार्य देव के विचारों से वे बड़े प्रभावित हुए, किंतु उन्होंने कहा कि गुरुदेव एक बात मेरी समझ से बाहर की है। भारत में अन्न की समस्या आज भी खड़ी है। इसका समाधान कैसे हो?

ये उस समय की बात है जब भारत की जनसंख्या लगभग 50 करोड़

थी। किस समय की बात है? जब भारत की जनसंख्या लगभग 50 करोड़ की थी। उस समय अनाज की भी काफी कमी भारत में रहती थी। अमेरिका से बाहर के देशों से अनाज हाथ में कटोरा लेकर लाना पड़ता था। मुंह खोले या नहीं खोले, किंतु हाथ तो बढ़ाना ही पड़ता। बताया जाता है कि वहां पर जो अनाज फेंकने के लायक होता था, वह अनाज किसको मिलता था? उस अनाज को शिरोधार्य किया जाता था। एहसान माना जाता था कि ये अमेरिका का अहसान है कि उसने हमको खाद्य पदार्थ दिए, अनाज दिया।

बालेश्वर जी, मामाजी ने कहा कि गुरुदेव आप मांसाहार का निषेध करते हो, यह बात मेरे समझ में नहीं आ रही है। आज भारत में इतने लोग मांस का सेवन करने वाले हैं तो अनाज की किल्लत कम है। अनाज वैसे ही बहुत कम है, यदि सारे लोग अनाज ही खाने वाले हो जाएंगे, मांस खाना बंद कर देंगे तो हालत बड़ी विद्रूपी हो जाएगी। सभी लोगों को पेट भरने के लायक अनाज मिलना मुश्किल हो जाएगा। इसलिए मैं मांस सेवन को गलत नहीं समझता। सामने व्यक्ति जैसा होता है, उसके अनुसार समाधान देने की बात होती है। आचार्य देव ने समाधान दिया कि आज भारत की जनता लगभग 50 करोड़ है। उसमें से 15 करोड़ बाल-बच्चों को छोड़ दें तो बाकी 35 करोड़ जनता को एक दिन में खाने के लिए कितना अनाज चाहिए? अनुमानत: यदि एक दिन के खाने का गणित निकाला जाए तो एक व्यक्ति को आधा किलो अनाज की आवश्यकता होगी। खाने के लिए लगभग रोज का 15 से 20 करोड़ किलो अनाज आवश्यक है।

आचार्य देव ने कहा कि अहिंसक तरीका यदि 35 करोड़ लोगों को समझाया जाये और एक नियम बनाया जाए कि महीने में चार दिन उपवास करेंगे तो चार दिन यदि अन्न छूटता है तो कितना अन्न बचेगा? 60 हजार करोड़ किलो अनाज की बचत हो जाएगी। बालेश्वर, मामा समझ गए कि ऐसा कोई भी कारण नहीं है, जिसका कोई समाधान नहीं हो। व्यक्ति अपनी इच्छा की पूर्ति के लिए अपना तरीका गढ़ लेता है। आज भी बहुत-से मांस सेवन करने वाले लोग कभी-कभी कहा करते हैं कि हमने यदि मांस खाना बंद कर दिया तो शायद तुमको भी खाना पड़ेगा, क्योंकि अनाज सबको खाने को नहीं मिलेगा तो तुम लोगों को मांस खाना पड़ जाएगा। हम तुम्हारे लिए सहायता करते हैं। हम मांस खा लेते हैं तो तुमको अनाज मिल जाता है।

मैंने पहले ही क्या कहा कि लोग अपना-अपना तर्क गढ़ लेते हैं।

अपना-अपना तर्क बना लेते हैं। अपनी बात को सही ठहराऊं तो यदि आज भी सारे लोग मांस खाना बंद कर दें तो मैं जहां तक सोचता हूं कि भारत के पास इतने अनाज का भण्डार है, जो कम पड़ने वाला नहीं है। दूसरी बात, जितने भी लोग मांस का सेवन कर रहे हैं, क्या बिना अनाज के वे जी सकते हैं? खाली मांस खाकर क्या जीवन निर्वाह कर सकते हैं? क्या वे रोटी, चावल का सेवन नहीं करते हैं? बहुत स्पष्ट है कि उनका सेवन भी करना पड़ता है। किंतु व्यक्ति अपना-अपना तर्क गढ़ लेते हैं, किंतु जैसे ही हमारी दृष्टि बदल जाएगी, मांस छूटते देर नहीं लगेगी। हमारी प्रिय से प्रिय वस्तु हमको छोड़ने में कोई देर नहीं लगेगी, बल्कि तत्काल हम उसका त्याग करने के लिए तत्पर हो जाएंगे। पहला वज्राघात उसी पर किया जाएगा जिससे उसका बड़ा लगाव है, बड़ा ममत्व है। वह उसका त्याग करेगा वैसे ही जैसे अन्य ममत्व का त्याग करने की दिशा में वे गतिशील होते हैं। उसका स्पष्ट निर्णय होता है - बस, मुझे इसका सेवन नहीं करना।

इस संदर्भ में मैं कल भी जंबू कुमार की कथा के माध्यम से कुछ विचार व्यक्त कर गया था। जंबू कुमार ने अपनी पत्नियों को कहा था कि प्रिय! तुम लोग खाने की बात कर रही हो। शरीर को सजाने की बात कर रही हो। खाने से शरीर की पूर्ति हो जाएगी, शरीर को सुख मिल जाएगा, पर इस सुख में यदि हमारा मन निमग्न हो गया तो चार गति से निकलना संभव नहीं होगा। दुर्गति में जाना पड़ेगा।

जो व्यक्ति साता की चाह करता है, भौतिक-पौद्गलिक सुखों की चाह करता है, अरे! गर्मी बहुत लग रही है। फव्वारा छोड़कर बैठ जाए। आहा! आहा! और उसी समय यदि आयुष का बंध हो गया। हो सकता है कि अपकाय में जाकर जन्म ले, अपकाय का आयुष बन्ध कर ले। देवलोक के देव, जो वहां पर चमक रहे रत्न होते हैं, उन रत्नों की आभा को देखकर कभी-कभी उनमें इतने निमग्न हो जाते हैं कि आहा! क्या आनन्द आ रहा है! क्या सौन्दर्य है! उसी समय आयुष का बंध करके वे चलकर-मरकर पृथ्वीकाय में चले जाते हैं। ऐसे ही सुंदर फव्वारों को देखकर वहां पर मुग्ध हो जाते हैं और उसी मुग्धता में अपकाय का बंध करके अपकाय में जन्म लेने वाले हो जाते हैं।

कई लोग प्राकृतिक सौंदर्य को देखने के लिए कश्मीर-मनाली पता नहीं कहां-कहां घूमते हैं। पर वहां वे क्या देखना चाहते हैं? कश्मीर में डल झील को देखना है। क्या है वहां? शांति का सौंदर्य है। सूर्यास्त का सौंदर्य है। आहा! सूर्य डोल रहा है और आदमी उसमें मुग्ध हो जाता है। डल झील में नौका चलाने वाला

मांझी पागल हो जाता है कि ये लोग आकर इसको क्या देखते हैं? क्या मिलता है देखकर? वह तो रोज ही देख रहा है। उसको तो कोई आनन्द नहीं है।

उसको कुछ नहीं लग रहा है। पर उसको लगता है कि वे लोग जो बाहर से देखने आते हैं, कितने पागल हैं? यहां पर क्या देखेंगे इसको? क्या देखना है? बन्धुओ! आप यह तो बताओ कि उसी समय यदि आयुष का बंध हो गया। मरकर के सूर्य विमान में पृथ्वीकाय के जीवों में तो कहीं जन्म नहीं ले लेंगे? वहां का सीन-सीनरी, आहा! क्या रमणीय लग रही है? क्या सुंदर लग रही है? उस सुंदरता में हम गहरे घुसते चले गए। वह सुंदरता आंखों से भीतर घुसती जा रही है और घुसते-घुसते वहीं आयुष का बंध कर लिया तो मरकर कहां जाओगे? कहां चले जाएंगे? इसी सीन-सीनरी में पृथ्वीकाय, अपकाय, वनस्पतिकाय के जीवों के रूप में हम जन्म लेने वाले बन जाएंगे। कहां तो मनुष्य जीवन है और कहां हम वहां पर चले गए? कोई पृथ्वीकाय में, कोई अपकाय में, कोई वनस्पतिकाय में चला जाएगा।

एक कहानी कई बार महापुरुषों से सुनी होगी कि एक सेठ अपनी पत्नी के रूप लावण्य पर बड़ा मुग्ध था। उसके सिर पर एक फोड़ा हो गया। उसको देखकर वह बड़ा दु:खी होता है। वह पत्नी में इतना मुग्ध हो गया कि आयुष का बंध किया, मरा और उस फोड़े में कीड़ा बनकर जन्म लेता है।

कर्मों के खेल निराले हैं,
ऋषि मुनि भी इनसे हारे हैं। कर्मों...

एक प्रसिद्ध नाम प्रसन्नचंद्र राजर्षि, हमने बहुत बार सुना है। कर्मों का कैसा चक्कर चला? प्रभु फरमाते हैं - अभी यदि मृत्यु को प्राप्त करे तो सातवें नरक का मेहमान बने। थोड़ा-सा पार्ट बदला, पर्दा गिरा, नया पर्दा, नया दृश्य सामने आया और जय-जयकार होने लगी। यह जय-जयकार किसकी? उस महात्मा को केवलज्ञान हो गया। भगवान यह क्या हो गया? पलक झपकते ही सारी दृष्टि बदल गई, सारा दृश्य बदल गया।

साथियो! नरक गति में भयंकर वेदना है। गर्मी इतनी कि मेरु पर्वत भी गल जाए। सर्दी का समय नहीं। हमारे यहां तो सर्दी थोड़े समय के लिए आती है। गर्मी थोड़े समय के लिए आती है। वहां पर, जहां पर गर्मी की वेदना बारह-बारह महीने चलती है और उसमें वे प्राणी झुलसते ही रहते हैं। उसमें वे जीव झुलसते रहते हैं, जीव तड़पते रहते हैं। उसे ताप लगता है, किंतु कौन सुनने वाला है?

अरण्य रोदन, जंगल में चलने वाला जहां पर कोई मनुष्य नहीं है, निर्जन। ऐसी जगह पर कोई कहे कि बचाओ, बचाओ। बचाने को कौन आएगा? कौन आएगा बचाने के लिए? और ठंड की वेदना इतनी भारी कि प्रकंपी छूट रही हो। यहां तो इस पंडाल में पर्दे लगा दिए, हवा क्रॉस नहीं करेगी। वहां पर कौन आएगा पर्दा लगाने के लिए? वहां कौन बचाने के लिए तैयार होगा?

कश्मीर में कहा जाता है कि बर्फ गिरी है और उसकी ठंडी हवा आपको मिली है। आपको यहां ठंडी हवा भी लगती है। रात को सारे दरवाजे खोलकर शरीर से चद्दर हटाकर कपड़े हटाकर सोओगे या दरवाजा बंद करके सोओगे? (प्रतिध्वनि - बंद करके सोएंगे) और दरवाजे खुले हैं तो कंबल ओढ़कर सोये। संवर करने वाले कैसे सोये? गर्मी में तो गर्मी लगती है और सर्दी में सर्दी लगती है। संवर करें तो कैसे करें? कोई बात नहीं नरक में कर लेंगे। वहां गर्मी नहीं लगेगी ना? (प्रतिध्वनि - लगेगी) वहां सर्दी नहीं लगेगी ना?

हिमालय पर निरंतर बर्फ होती है। वहां पर सेना के जवान रहते हैं। मेरे खयाल से एक साथ में तीन महीने से ज्यादा वहां किसी भी सैनिक को, सेना की डिविजन को नहीं रखा जाता। तीन-तीन महीने में बदली होती जाती है। तीन महीनों में उनकी हालत बड़ी विचित्र हो जाती है। नरक गति के शीत यौनिक, शीत की वेदना वाले नैरयिक-नेरिये को वहां पर निकालकर रख दो, उसे लगेगा कि जिस कमरे में हीटर चला रखा है, ऐसे रूम में लाकर मुझे बैठा दिया है, ऐसा कौन अनुभव करेगा? वह सर्दी की वेदना वेदने वाला नैरयिक। कहां पर रखने पर? हिमालय की ठंडक में रखने पर।

अब आप बताओ कि हिमालय की ठंडक जहां पर व्यक्ति नंगे शरीर, नंगे पांव रह नहीं सकता, वहां वह नैरयिक जीव कहता है कि आहा! हीटर जिस रूम में चल रहा है, ऐसे रूम में मुझे रख दिया है। वहां पर उसे साता पहुंचेगी। ऐसी भयंकर वेदना नरक योनि की है और नरक में रहने वाले जीवों को ऐसी भयंकर वेदना वेदनी पड़ती है। क्या कोई चाहेगा कि शरीर को सुख देकर मैं भी इस नरक की वेदना को वेदूं? अब तक मैंने बहुत बार उन-उन नरकों की वेदनाओं को वेदा है। अब मेरी आत्मा, मेरी चेतना उसके लिए तैयार नहीं है कि मैं पुन: उन नरकों की वेदना को वेदूं।

हम निगोद का वर्णन सुनते आए हैं कि एक मुहूर्त में 65,536 बार जीव जन्म ले लेता है अथवा मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। आपकी एक सामायिक होती

है, उतने समय में निगोद के जीव कितनी बार जन्म-मरण कर लेंगे? या तो वे जन्म ले लेंगे या मृत्यु को प्राप्त हो जाएंगे। एक बार का जन्म और एक बार का मरण कितनी भयंकर वेदना देने वाला होता है? 'जम्मं दुखं जरा दुक्खं रोगाणी मरणाणि य' जन्म भयंकर दु:ख है और मृत्यु भी भयंकर दु:खदायी है। इस दु:ख के दो पाटों के बीच हम पिसते रहे हैं। जैसे अनाज घट्टी के दो पाटों के बीच पीसा जाता है, वैसे ही जन्म और मृत्यु के दो पाटों के बीच यह जीव पिसता रहा है। इसको पीसा जाता रहता है। भयंकर दु:खों की वेदना यह झेलता रहा है। क्या हम चाहेंगे कि इन वेदनाओं को हम वेदते रहें?

इतना ही नहीं, यदि एक बार कोई निगोद में चला गया तो पता नहीं कितना समय निकल जाए। अनन्त काल तक जीव वहां जन्म-मरण करता रहता है। ऐसी है यह विषय भोग की कथा। यह विषय भोग का दु:ख हमारी आत्मा ने बार-बार हर जन्म में भोगा है। अब थोड़ा बोध मिला है, अब थोड़ी समझ पाई है तो क्या उस समझ का उपयोग नहीं करना चाहिए? क्या उस समझ को किनारे करके हम नासमझ बन जाएं? और उन्हीं भोग को भोगें, उसी मैदान में, उसी संसार में चार गति, 84 लाख योनि में पुन: पुन: जन्म-मरण प्राप्त करते रहें? शायद हमारी आत्मा इसके लिए तैयार नहीं है।

जिनके भीतर थोड़ी भी समझ होगी, संवेग होगा, नरक, निगोद के दु:ख और वेदनाओं को सुन उनके भीतर की तंत्री झंकृत होने लगेगी। आपने भी कई बार सुना होगा, अभी भी सुन रहे हो। अत: सोचें कि ये संसार के भोग, इस जीव ने अनन्त बार भोगे हैं, फिर भी कभी तृप्ति आ नहीं पाई है। यह तृप्ति भी ऐसी नहीं है कि भोग जितना अधिक भोग लेंगे तो तृप्त हो जाएंगे। कितनी बार खाने के बाद तृप्ति हो गई? कितनी बार भोग भोगने के बाद तृप्ति हो गई? यह तृप्ति होती नहीं है, बल्कि आकांक्षाएं, अभिलाषाएं, लालसाएं बढ़ती चली जाती हैं। उन पर अंकुश लगाने से ही तृप्ति हो सकती है। अब इन भोगों का परित्याग करना ही श्रेयस्कर है। इस प्रकार से मन को मजबूत किए जाने पर, लगाम लगाने पर इन भोगों से छुटकारा मिल सकता है, अन्यथा 'पुनरपि जननं पुनरपि मरणं, पुनरपि जननीजठरे शयनम्' अर्थात् पुन: पुन: जन्म-मरण, जन्म-मरण जननी के जठर में शयन के इस चक्कर में इस आत्मा को परिभ्रमण करते रहना होगा।

केसर देवी जी पारख धर्म सहायिका इंद्रचंद जी पारख, नोखा की रहने वाली एवं धर्म परायण थी। धर्म के प्रति आस्थावान थी। तपस्या के क्षेत्र में उन्होंने

कई प्रकार की तपस्याएं भी की थीं। सामायिक का नित्य नियम था। ऐसी शासननिष्ठ केसर देवी जी अब संसार में नहीं रहीं। किशोर मुनि जी म.सा. के संसार पक्षीय मामीजी थी। पंथक मुनि जी म.सा., जागृति श्रीजी म.सा. आदि परिवार से जुड़े हुए संत-महात्मा हैं। हम समझ सकते हैं कि उन्होंने अपने परिवार से कई जनों को दीक्षित किया, किंतु वे स्वयं उस मार्ग पर अग्रसर नहीं हो पाईं। कर्म योग है। जिसके कारण वे अपना पुरुषार्थ नहीं जगा पाई। फिर भी धर्म क्षेत्र में अग्रसर रही।

बन्धुओ! हम विचार करें कि सबसे राजा जीवन, सबसे ऊंचा जीवन हमें मिल गया, किंतु हमने क्या किया? हमने भी यदि जीवन का लाभ नहीं उठाया, इस अमूल्य अवसर का लाभ नहीं उठाया तो (अपना हाथ मलते हुए) हाथ मलते ही रह जायेंगे। मेरे खयाल से हमारी आत्मा को मोक्ष मिलना बहुत मुश्किल हो जायेगा। इसलिए साथियों जागो और अवसर की पहचान करो। लाखों-करोड़ों रुपये खर्च करने पर भी मनुष्य जीवन मिलना संभव नहीं है। जो मिला है, उसको व्यर्थ में गंवा देना हमारी समझदारी नहीं होगी। पारख परिवार को भी समझने की आवश्यकता है। वो धर्म निष्ठ परिवार है। मैं जहां तक सोचता हूं कि शोक-संताप नहीं रखा होगा, न ही रखना चाहिए, क्योंकि गई हुई चीज लौटकर आने वाली नहीं है।

तीर्थंकर देवों की वाणी हमें समाधि देने वाली है। इसलिए स्वाध्याय से अपने आपको जोड़ें और मन को शांत बनाने का प्रयत्न करें। ऐसा प्रयत्न हम करेंगे तो हम जान पायेंगे कि हमें शरीर के लिए नहीं आत्मा के लिए जीना है। ऐसी समझ जब हमारी बनेगी, हम स्वयं को धन्य बना पाएंगे।

इतना ही कहते हुए विराम।

दिनांक - 09.11.2019

5

बरसे चाहे घनघोर हथौड़े

वासपुज्य जिन त्रिभुवन स्वामी, घननामी परनामी रे।

तीर्थंकर देव वासपूज्य की स्तुति करते हुए 'वासपुज्य जिन त्रिभुवन स्वामी, घननामी परनामी रे' कहा है। यानी प्रभो! आप तीन भुवन के स्वामी हैं। तीन भुवन, तीन लोक - अधोलोक, तिरछा लोक और ऊर्ध्वलोक, इन तीनों लोकों के आप स्वामी हैं। ऐसा बताया गया है और यह स्वामित्व कैसे प्रकट हुआ? घर बैठे हुए या स्वत: यह स्वामित्व प्रकट नहीं होता। इसके लिए प्रयत्न-पुरुषार्थ करना होता है।

'चरैवेति-चरैवेति-चरैवेति।' पुरुषार्थ करते रहो, आगे बढ़ते रहो। थको मत, डटे रहो। जो पुरुषार्थशील होता है, वह मंजिल पाता है। बिना पुरुषार्थ के मंजिल की प्राप्ति दूभर है, कठिन है। एक विशेषण और दिया है कि घननामी, जिन्होंने स्वयं को ठोस घनीभूत बना लिया, दृढ़ बना लिया। रुई खुली हुई है, फैली हुई है, उसी रुई को मशीन में डालकर गांठ बना ली गई। वह ठोस हो गई, घनीभूत हो गई। जिस पर लुहार हथौड़े से लोहे को कूटा करते हैं, उसको घन कहते हैं। घन का अर्थ होता है, ठोस। मोक्ष में जाने वाले को स्वयं को ठोस बनाना होगा। थोड़ी भी पोलार रहेगी, थोड़ी भी पोल रहेगी तो समझ लो कि मुक्ति होने वाली नहीं है। हमारे भीतर रहने वाली सारी पोलार हटानी होगी। पोल अलग चीज है और पोलार अलग है, किंतु दोनों ही हटेगी। पोलार भी हटेगी और पोल भी हटेगी तो मुक्ति को वर पाएंगे।

मुक्ति की बातें सुनते-सुनते हमारे कान पक गये हैं। रोज-रोज मोक्ष-मोक्ष-मोक्ष। क्या है? एकदम सही बात है। जो हमारी चाहत है, वही मोक्ष है। हमारी चाहत है - सुख, शांति और समाधि। हम संसार में रहते हुए भी सुख से जीना चाहते हैं, समाधि से जीना चाहते हैं। कोई भी व्यक्ति अशांत

और दु:खी जीवन जीना नहीं चाहता है। यदि मेरी सोच सही नहीं हो, इसमें सुधार की आवश्यकता हो तो आप अपने हाथ खड़ा करके बता सकते हैं कि नहीं, हम अशांत और दु:खी जीवन जीना चाहते हैं। कोई सभा में है, जो अशांत और दु:खी जीवन जीना चाहता है? अशांति और दु:ख क्या है? अशांति और दु:ख का स्वरूप क्या है? उनका अस्तित्व क्या है? हमारे मन की अवस्था ही अशांत है। उसी का नाम अशांति है। हमारी कल्पनाएं जो दु:ख रूप में वेदन की जा रही है, वही दु:ख है। यदि हम अपनी कल्पना को, अपने विचारों को सुदृढ़ बना लें तो कहीं-से-कहीं तक हम दु:खी नहीं होंगे।

क्यों होते हैं दु:खी? दु:खी क्यों होते हैं? दु:ख का कारण हम दूसरे को मानते हैं। पराये पर ढोलने की बात करते हैं। अमुक व्यक्ति मेरे अनुकूल नहीं है। बाप दु:खी है कि बेटा कहना नहीं मानता है। सास दु:खी है कि मैं जैसा चाहती हूं, बहू वैसा नहीं करती है। यह तनाव का कारण बन गया। यह अशांति का कारण बन गया। यह दु:ख का कारण बन गया। थोड़ा-सा विचार करें। सास बहू को कहती है कि मैं चाहती हूं वैसा वह नहीं करती, उसका कहना सही होगा। पर वह जैसा बहू चाहे वैसा करती है क्या? यदि सास जैसा बहू चाहे वैसा करने लग जाए तो? फिर है झगड़ा? है फिर तनाव? है कोई अशांति? (प्रतिध्वनि - नहीं) बाप सोचता है कि मैं चाहता हूं, वैसा बेटा नहीं करता है। मेरी बात को नहीं मानता है। कोई बात नहीं। बेटे की बात यदि बाप मानने लग जाए तो क्या होगा? तनाव रहेगा? (प्रतिध्वनि - नहीं रहेगा) अशांति होगी? (प्रतिध्वनि - नहीं)

मेरे मन में बड़प्पन का भाव है। मेरे मन में अधिकार का भाव है। मैं बड़ा हूं, इसलिए मेरी बात सुनी जानी चाहिए। मेरे पास अधिकार है। बाप को अधिकार होता है, बेटे को चलाने का। ऐसा वह मानकर चलता है। इसलिए वह चाहता है कि मेरी बात बेटा माने। मेरे कहे अनुसार चले। बस! यह अधिकार की बात जहां हमारे भीतर आती है, बड़प्पन की बात हमारे भीतर आती है, उसी से हम दु:खी होते हैं। अशांत होते हैं। यही हमारी पोल है। यह हमारी कमजोरी है। हम दूसरों को अपनी ओर मोड़ना चाहते हैं, अपनी तरह ढालना चाहते हैं। क्यों? जब मैं दूसरों की तरह ढलने के लिए तैयार नहीं हूं तो मुझे अपनी तरह ढालने का अधिकार कैसे? किंतु मैं मानता हूं कि जैसा मैं चाहूं वैसा होना चाहिए। यह विचार, यह सोच हमारे भीतर गहरी होती है। वह हमें

सुखी नहीं, दु:खी बनाएगी। वह हमें सुखी नहीं बना सकती, क्योंकि हम सुखी होना ही नहीं चाहते हैं। हम अपनी पकड़ को शिथिल करना नहीं चाहते। आप मन से निकाल दें कि मैं जैसा चाहूं वैसा बेटा न करे तो उसकी मरजी, पर ऐसा रोष से नहीं होगा। निकाल दिया तो निकाल ही दिया। उसके बाद भी आप बेटे को कह सकते हैं, किंतु आग्रह नहीं रखें। तब देखें दु:ख होता है क्या?

मेरी जो मान्यता है, मैं जो समझ रहा हूं, मेरी समझ है, वही समझ खरी है, बाकी सारी समझ कोई मायने नहीं रखती है।

'समझ-समझ संसार में समझे, वे नर समझे थोड़ा,
समझाया समझे नहीं, वे...'

आगे लोग बोल रहे हैं कि प्रजापति का घोड़ा। अरे! प्रजापति नहीं प्रजापत का घोड़ा। हम यह समझ लेते हैं कि सारी समझ मेरे में ही है। यदि ईश्वर कर्तृत्व के विचारों से विचार करें तो व्यक्ति सोचता है कि जिस समय ईश्वर मुझे गढ़ने लगा था तो डेढ़ अक्ल मुझ में भर दी और बाकी सारे आधी अक्ल के रह गए। अब पूरा मेल होगा कभी? डेढ़ अक्ल उसमें है और सारी दुनिया में आधी अक्ल है। उसकी डेढ़ अक्ल के साथ सारी दुनिया आधी अक्ल में मैच करेगी? मैच कैसे करेगी? या तो सारी दुनिया को डेढ़ अक्ल में आना पड़ेगा या उसे आधी अक्ल दुनिया से काम चलाना पड़ेगा।

आचार्य पूज्य श्री जवाहरलाल जी म.सा. के दर्शन कइयों ने किए होंगे। अब यहां पर कम ही दर्शन करने वाले होंगे। मैं यह नहीं कह सकता हूं कि नहीं होंगे। अपने युग के बहुत ही विचारवान आचार्य, समर्थ आचार्य थे। कौन-सा ऐसा क्षेत्र रहा, जहां पर उनकी दृष्टि नहीं गई? सर्वांगीण रूप से उन्होंने समाज को दिशा दी। उनकी क्रियाशीलता को देखकर, उनकी दृढ़ता को देखकर, उनकी कार्य प्रणाली को देखकर, कहने वालों ने कहा कि गुरुदेव, आप जिस समाज के पीछे लगे हुए हो, जिस समाज के साथ चल रहे हो, इस समाज को वर्षों तक सुधारेंगे तो भी सुधरने वाला नहीं है। उसके साथ आपकी गति मंद हो जाएगी, इसलिए आप इस समाज को छोड़ो और अपनी रफ्तार पकड़ो।

शब्दावली में थोड़ा अंतर हो सकता है। मैं भाव बता रहा हूं, कहने वालों ने कहा जवाहराचार्य को। आचार्य पूज्य श्री जवाहरलाल जी म.सा. ने फरमाया कि इंजन गाड़ी के डब्बों के साथ शोभा पाता है। अकेला इंजन खट-

खट, खट-खट करते हुए चला जाए तो होगा क्या? होगा क्या? समाज यदि धीरे चल रहा है तो कोई बात नहीं है। मैं अपनी रफ्तार धीमी करूंगा और समाज को साथ लेकर चलूंगा। क्या बात समझ में आई? समझ में आई कुछ बात? हम अपनी रफ्तार धीमी करना चाहेंगे? हम अपनी रफ्तार धीमी करना चाहेंगे या अपनी रफ्तार को और बढ़ाना चाहेंगे? (प्रतिध्वनि - आगे बढ़ाना चाहेंगे) आगे बढ़ाना चाहोगे? तो बढ़ा लो, बढ़ लो। वह ध्रुव तारा अकेला रह गया। दूसरा कोई ध्रुव तारा नहीं बन सका। हम अपनी रफ्तार बढ़ावें, कोई बात नहीं है, किंतु हमारा प्रयत्न समाज की रफ्तार को बढ़ाने का भी होना चाहिए और प्रयत्न, परिश्रम रंग लाता है। ऐसा नहीं कि हम प्रयत्न करें और उसका लाभ नहीं हो, किंतु प्रयत्न करने के पहले अपने मन को बहुत अच्छी तरह से टटोल लेना कि कोई पत्थर फेंके तो उसकी चोट तुम्हें लगनी नहीं चाहिए। ऐसा कौन-सा प्रूफ़ (कवच) होता है, वो बनाकर रखो कि बाहर का कोई भी आक्रमण तुम्हें लग नहीं सके। कोई डंडा फेंके, कोई पत्थर फेंके, कुछ भी फेंके, उसकी चोट तुम्हें लगे ही नहीं।

क्या यह संभव है कि कोई पत्थर फेंके और चोट न लगे? क्या यह संभव है? असंभव नहीं है। हमारे भीतर अपेक्षा रहेगी, हमारे भीतर अहंकार रहेगा, वह चोट करेगा, वह चोटिल होता है। सांप की पूंछ पर पैर गिरेगा तो सांप चुप रहने वाला नहीं है। वह फुफकारेगा। ऐसा नहीं है कि वह शांत रह जाए। गाय की पूंछ मरोड़ लो, वह खड़ी रहेगी। भैंस की पूंछ मरोड़ लो, वह खड़ी रहेगी, क्योंकि वह पाली हुई है। उसकी पूंछ मरोड़ लो, वह खड़ी रहेगी। आराम से खड़ी है। वैसे ही हमारे भीतर के जहर को हमें दूर करना होगा। हमारे भीतर जहर नहीं रहेगा तो कोई कितना भी आक्रमण करे, कोई कितना भी पत्थर मारे, वह पत्थर मुझे चोटिल नहीं कर सकता। मेरे भीतर अहंकार होगा तो वह पत्थर ही नहीं, छोटी-सी कंकरी भी मुझे चोटिल करेगी। और तो और मुंह से कहे शब्द भी चोट करने वाले होंगे।

लोग कहते हैं कि भीड़ में से पत्थर तो अनेक आए, किंतु वह पत्थर चोट करने वाला बना जो अपनों के द्वारा फेंका गया था। क्या समझ में आई बात? बात समझ में नहीं आई? दुनिया हमें कुछ भी कह दे, वह चोट नहीं करती है। हमारा निकटस्थ व्यक्ति कोई बात बोल देता है तो वह हमें चोट करती है। वह चोट क्यों करती है? वही बात वापस आती है कि जिसके साथ

मेरे अधिकार के भाव हैं। मेरा बड़प्पन का भाव है। जिसके साथ मेरा अटैचमेंट है। इसलिए अटैचमेंट से जो पत्थर फेंका जाएगा, वह चोट करेगा, किंतु हमें स्वयं को ऐसा बनाना पड़ेगा कि वह अटैचमेंट भी हमें चोट करने वाला नहीं बने। हम अपने आपमें यदि तटस्थ होकर चलेंगे तो अपने कर्तव्य पर दृष्टि रहेगी। हम अपने कर्म पर विश्वास रखें, हम अपने कर्तव्य पर दृष्टि रखें। यदि कर्तव्य पर दृष्टि रहेगी तो कुछ भी बिगाड़ होने वाला नहीं है।

एक फैक्ट्री में संतों की टोली रुकी। वहां बहुत सारे टूटे हुए हथौड़े पड़े थे। संत ने पूछ लिया कि क्या बात है? इतने हथौड़े क्यों पड़े हैं? उन्होंने कहा कि खांडे-खोड़े हो गए, इसलिए इनको फेंक दिया। संत का विचार चिंतन में गया और सोचने लगे कि हथौड़े बहुत सारे पड़े हैं, किंतु घन एक भी नहीं है, जिस पर हथौड़े की चोट पड़ती है। वह एक भी नहीं है, पर हथौड़े बहुत सारे फेंके हुए पड़े हैं। बात स्पष्ट हो गई कि चोट करने वाला टूटता है, चोट सहने वाला नहीं टूटता है। कौन टूटता है? कौन टूटता है? (प्रतिध्वनि - चोट करने वाला टूटता है) चोट करने वाला टूटता है। हमने अपने आपको घन नहीं बनाया तो हम टूट जाएंगे। चोट करने वाले की चोट हमारे पर हो जाएगी। भगवान महावीर चंडकौशिक सर्प की बांबी पर खड़े हैं और वह निरंतर प्रहार कर रहा है। भगवान महावीर को चोट कर रहा है, प्रहार कर रहा है, डंक मार रहा है। क्या जहर चढ़ पाया? (प्रतिध्वनि - नहीं)

हम बाइपास सर्जरी की बात कर लेते हैं कि म.सा. वे तो भगवान थे। अर्जुन तो भगवान नहीं था ना? अर्जुन माली, जिसने 1,141 व्यक्तियों की घात की, वह उस समय भगवान नहीं था। दीक्षा ली तो कइयों ने पत्थर फेंके, कइयों ने गालियां दीं, कइयों ने व्यंग्य किए कि सौ-सौ चूहे खाकर, बिल्ली हज को चली। क्या अर्जुन को चोट लगी? क्या अर्जुन मुनि चोटिल हुए? क्या उनके मन में दु:ख हुआ? क्या उनके मन में पीड़ा हुई? (प्रतिध्वनि - नहीं) यदि हम अपने आपको निर्विष कर सकते हैं, हम अपने आपको निरहंकारी बना सकते हैं, गर्व, अहंकार-दंभ, अभिमान, मान-सम्मान की चाह को हटा सकते हैं तो हमारा जीवन सुखी बनेगा, समर्थ बनेगा। शांत बनेगा, समाधि में रहेगा। कोई कितनी भी गालियां बक दे। कोई कितनी भी प्रशंसा करे तो कर दे। कोई कितने भी ठोले मारे तो मेरा कुछ भी बिगड़ने वाला नहीं है। इतनी गहरी भावना हमारे भीतर होनी चाहिए। होनी ही चाहिए। निश्चित ही होनी

चाहिए।

हम तीर्थंकर देवों के पुजारी हैं। हम रागी देवों के पुजारी नहीं हैं। हम वीतरागी भगवान के अनुयायी हैं। हम रागियों के अनुयायी नहीं हैं। हम कषाय देवों को चाहने वालों के अनुयायी नहीं हैं। हम अकषाय देवों के अनुयायी हैं। जिन्होंने कषायों का त्याग कर दिया, ऐसे वीतरागी भगवंतों के अनुयायी हैं। अकषाय का भाव, समभाव हमारे भीतर नहीं आएगा तो किसके भीतर आएगा? यदि वह समभाव अपने आप में नहीं रख पाए तो हम वीतराग देवों के पुजारी कैसे? फिर तो हम वैसे मंदिर के पुजारी हैं, जो पैसों के बल पर पूजा करते हैं। पैसों के बल पर जो भगवान की मूर्ति को मानते हैं, उसकी पूजा करते हैं। उसको चाहिए वेतन और उसके आधार पर पूजा, अगरबत्ती कर देता है, आरती उतार देता है। उसके मन में कितनी भक्ति होगी?

पैसों से पूजा करने वाले क्या भक्ति कर पाएंगे? (प्रतिध्वनि - नहीं) दो महीने पुजारी को पैसे नहीं मिले तो वे कहेंगे? अल्टीमेटम। वह पुजारी बिना पैसों के पूजा करता रहेगा या छुट्टी कर देगा। दो-तीन महीने करता रहे, करेगा भी तो पुराने-नये वेतन की आशा में करेगा। तीन महीने भी निकाल दे तो बहुत बड़ी बात है। किंतु तीन महीने भी नहीं निकालेगा। हम जानते हैं कि वह पूजा, भक्ति से नहीं कर रहा है। वह पेट के कारण पूजा कर रहा है। हम भी दिखावे की भक्ति करने वाले हैं। हकीकत में उनके प्रति मेरा कोई लगाव है ही नहीं। उनकी जैसी चर्या बनाने का हमारा मन है ही नहीं। तो हम भी उसी पुजारी की श्रेणी में चले जाएंगे। एक स्तुति में कहा गया है - 'हूं रागी तू वीतरागी.....' मैं रागी हूं तू वीतरागी है।

अब बोलो संबंध कैसे जुड़ेगा? कैसे दोनों के संबंध जुड़े? वह रागी बनेगा नहीं और हम वीतरागी बनने के लिए तैयार नहीं हैं। वैसी स्थिति में हमारा उनके साथ संपर्क कैसे जुड़ेगा? किसी राजनेता का आगमन सुना। सुना है कि शायद एक-दो दिन में राजस्थान के मुख्यमंत्री जोधपुर आने वाले होंगे। समझ लीजिए, जोधपुर आ गए और आपके घर पहुंच गए। आपके हाथ गारे से, गोबर से, मिट्टी से भरे हुए हैं, पर मुख्यमंत्री आपसे हाथ मिलाने के लिए हाथ आगे बढ़ा रहे हैं तो आप हाथ मिलाने के लिए अपना हाथ आगे बढ़ाओगे या शर्मिंदगी अनुभव करोगे? और हाथ मिलाना होगा तो? हाथ मिलाना होगा तो क्या करना पड़ेगा? आप तत्काल हाथ धोकर, साफ करके

वैसी तैयारी करेंगे। फिर आप हाथ मिलाने के लिए अग्रसर हो जाएंगे। जैसे उनसे हाथ मिलाने के लिए हमें सफाई करनी होती है, वैसे ही सच्चे मायने में यदि वीतरागी भगवंतों की पूजा करनी है, उनकी आराधना करनी है, उनकी भक्ति करनी है तो हमें भीतर से अहंकार को निकालना पड़ेगा।

एक अहंकार निकलेगा तो क्रोध भी निकल जाएगा। माया रह नहीं पाएगी। सबका स्थान हिल जाएगा। एक मुख्यमंत्री राज्यपाल से रिक्वेस्ट करे और राज्यपाल यदि सरकार भंग कर दे तो कितने मंत्री रहेंगे? (प्रतिध्वनि- एक भी नहीं रह जाएगा) एक मुख्यमंत्री सरकार को भंग करने की सिफारिश कर दे, राष्ट्रपति शासन लग जाए तो मंत्री कितने बने रहेंगे? (प्रतिध्वनि - एक भी नहीं रह पाएगा) एक भी मंत्री नहीं रहेगा। सारे मंत्रियों के इस्तीफे अपने आप ही हो जाएंगे या नहीं हो जाएंगे? फिर वे मंत्री नहीं रहेंगे। नया मुख्यमंत्री आए और वह नए मंत्री बना ले तो अलग बात है। वह मंत्री पद पर नहीं रहेंगे, वैसे ही एक अहंकार को हटा दो, फिर देखो हमारे दूसरे कषाय कितने निष्क्रिय हो जाते हैं? वे अपने आप ही निष्क्रिय हो जाएंगे। एक को जीतो तो पांच जीत लोगे। 'एगे जीये जीया पंच।'

'एकै साधे सब सधे, सब साधे सब जाए।' आचारांग सूत्र में कहा गया है कि 'जे एणं णामे से सव्वं णामे' अर्थात् जो एक को नमा लेता है, एक कषाय को नमा लेता है, एक झगड़े को नमा लेता है तो वह दूसरे कषायों को नमाने में समर्थ हो जाता है। जो एक को नहीं नमा सकता है, वह दूसरों को कैसे नमाएगा? हम चाहे किसी भी क्षेत्र में कार्य करने के लिए तत्पर हैं, उत्सुक हैं, यदि हम अपने अहंकार को जिंदा रखते हुए काम करने जाएंगे तो लंबे समय तक उस मुकाम पर ठहर नहीं पाएंगे। हम लंबे समय तक उस कार्य को करने में समर्थ नहीं होंगे। दो उपाय हैं - या तो हम अहंकार को छोड़ें या काम छोड़ने के लिए तैयार हो सकते हैं। हम किसको छोड़ें? हम अपने कार्य को छोड़ने के लिए तैयार हो सकते हैं, किंतु अपने अहंकार को, अपने इगो को, नमाने के लिए तैयार नहीं हो सकते हैं। जो यह अहंकार है, यह हमारी पोल है, हमारी कमजोरी है।

वस्तुत: जहां मनोबल, मनोशक्ति कमजोर होती है, उसको अहंकार का सहारा लेना पड़ता है। जिसकी मन:स्थिति सशक्त होती है, उसको कभी भी अहंकार का सहारा लेने की आवश्यकता नहीं होती। जिसको

घुटनों में दर्द होता है, उसको हाथ में डंडा लेने की आवश्यकता होती है। जिसके घुटनों में दर्द नहीं है, कमर में दर्द नहीं है, चलने की शक्ति है, वह हाथ में डंडा नहीं लेगा। क्या वह कभी बैसाखी को स्वीकार करेगा? मैं बैसाखी लेकर क्यों चलूं? क्यों चलेगा? उसके पैरों में ताकत है। उसकी कमर में ताकत है। वैसे ही मन में जिसके ताकत होगी, उसको अहंकार की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। वह सही चलेगा। हमारा मन सही होगा तो वह सही सोचेगा, सम्यक् प्रकार से विचार करेगा। टूटने की बजाय, समाधान ढूंढ़ेगा। अहंकारी मन टूटने को तैयार होता है और निरहंकारी मन समाधान ढूंढ़ता है। वह समाधान ढूंढ़ने की कोशिश करता है। बाप को यदि बेटे से शिकायत है, बाप की बुद्धि सही है, निर्मल है, पवित्र है तो वह विचार करेगा कि इसका समन्वय कैसे हो सकता है?

यदि हम कथा साहित्य को देखें तो श्रेणिक महाराज जिस समय राजा नहीं बने थे, नंदा से शादी की और कुछ समय तक वहां रहे। अभय कुमार का जन्म हुआ, उससे पहले ही वे वहां से रवाना हो गए। नंदा एक व्यापारी की लड़की थी। वह भक्ति में रही, पतिव्रता भावों में रही। ग्रामीण कन्या थी, इसलिए ज्यादा समझती नहीं थी, किंतु अभय कुमार जब कभी बच्चों में खेले तो वो आगे रहने की बात करता है। हर बात में आगे रहने की बात करता है। एक बार किसी ने कह दिया कि बाप का तो ठिकाना ही नहीं है और यहां आगे रहने की बात कर रहा है? अभय कुमार को बात चुभ गई। आकर मां से पूछा कि मेरा पिता कौन है? मां ने कहा कि तुम ऐसा क्यों पूछ रहे हो? मां ने बात को टालने की कोशिश की तो अभय कुमार ने कहा कि मां टालने से काम नहीं चलेगा, मुझे बताना ही पड़ेगा। मां कहने लगी कि बेटा क्या बताऊं? ज्यादा मैं जानती नहीं हूं, पर बातों ही बातों में उन्होंने इतना बताया था कि वे राजगृह के गोपाल हैं।

गोपाल कहते हैं, गाय पालने वाले को। राजगृह के गोपाल हैं। अभय कुमार की बुद्धि ताड़ गई कि हो ना हो वे राजगृह के राजा हैं। अभय कुमार ने विचार किया कि मुझे पिताजी से मिलना है, किंतु ऐसे मिलने से काम नहीं चलेगा। मुझे अपनी बुद्धि का करिश्मा दिखाना पड़ेगा। पिताजी से मिलूंगा तो ऐसा नहीं कि मैं जाकर हाथ जोड़कर खड़ा रहूं कि मैं आपका बेटा हूं। नहीं, नहीं। ऐसे नहीं मिलना है। उसने बुद्धि का करिश्मा लगाया। कहते हैं कि राजगृह

के लिए दीवान की आवश्यकता थी। उसके चुनाव के लिए एक गड्ढा खोदा गया, कुआं खोदा गया और उसके पेंदे में, तल में बहुमूल्य अगूंठी डाल दी गई और कहा गया कि बिना कुएं में उतरे अगूंठी को जो निकाल लेगा, उसको दीवान बनाया जाएगा।

अभय कुमार ने भी घोषणा सुनी। उसने कहा कि मैं तैयार हूं। बीड़ा पकड़ लिया। उसने बिना नीचे उतरे अगूंठी निकाल दी। निकालने का तरीका अलग था। उसने न हाथ डाला और न डोरी डाली, बल्कि ताजा गोबर लेकर अंगूठी के चारों तरफ डाल दिया और फिर उसमें कुछ कचरा, सूखा कचरा डलवा दिया। उसके बाद उस कचरे में आग लगाई गई। आग से गोबर पक गया, सूख गया, अगूंठी उसमें चिपक गई। पास में एक छोटा गड्ढा खुदवाया, उसमें एक नाला बनवाया। नाला को उस कुएं से जोड़ा गया, जिसमें अंगूठी थी। इतना हो जाने पर छोटे गड्ढे में पानी भरवाना शुरू किया। दूसरे गड्ढे, उस छोटे गड्ढे के माध्यम से पानी उस कुएं में गया, जिसमें अगूंठी थी। वह ऊपर तक भरे, उससे पहले ही पानी छोटे गड्ढे में आने लगा। गोबर भी सूखा होने से ऊपर आया। वह घूमता हुआ उस छोटे वाले गड्ढे में आ गया और हाथ डालकर निकाला। उसमें से अंगूठी निकाल राजा के सामने प्रस्तुत की। राजा ने इसके अलावा और भी परीक्षा ली, किंतु अभय कुमार ने यह नहीं बताया कि वह उनका पुत्र है। ऐसा कुछ भी नहीं बताया। जब राजा ने उससे परिचय पूछा तो उसने उत्तर भी घुमाकर दिया। पर राजा जान गया। सच्ची जानकारी होने पर सम्राट को बड़ी खुशी हुई। उसके बाद तो अभय कुमार श्रेणिक का पर्याय बन गया। कोई भी कार्य हो, वह अभय कुमार देखेगा। क्यों? क्योंकि उन्होंने अपनी महत्त्वता हासिल कर ली।

सही सोचने वाला विचार करता है कि मुझे क्या करना चाहिए? प्रसेन्नजित राजा मगध सम्राट श्रेणिक के पिता थे। उनके बारे में बताया जाता है कि 100 पुत्र थे। किसको राजगद्दी दी जाए? किसको राज्य संभलाया जाए? राज्य की डोर किसको सौंपी जाए? उसके लिए उन्होंने परीक्षा ली और परीक्षा में उत्तीर्ण हुए श्रेणिक को राजगद्दी सौंपी गई। कई प्रयोग किये गये थे। मैं अभी सारी घटना नहीं बता रहा हूं। कहने का आशय है कि भाइयों में विवाद भी नहीं हो, किंतु भाई जान भी लें कि किसमें प्रखरता रही है? कौन इस गद्दी को, इस राज्य को, इस धुरी को संभालने में सक्षम हो सकता है? समय आने

पर दूसरे भाई भी समझ गए। बुद्धि प्रखर रही तो उससे निर्णय किया जा सका। वैसे ही घर में, परिवार में, समाज में, समुदाय में हम कहीं भी रहेंगे या तो लड़ाई-झगड़ा होगा या शांति रहेगी।

मैंने किताबों में पढ़ा है कि एक समय चीन में कोई मंत्री था। उसके घर में पांच सौ सदस्य थे और पांच सौ सदस्यों में कभी तू-तड़ाक नहीं होती थी। वहां के जो सम्राट थे, उसने विचार किया कि ऐसा क्या हो सकता है? इसके घर में पांच सौ सदस्य होते हुए भी कभी दंत-कटाकट नहीं होती? उन्होंने दीवान से पूछा, प्रधान से पूछा। उन्होंने कहा कि आप घर पर तशरीफ लाइए, बाकी अपने आप समाधान हो जाएगा। राजा उसके घर गए तो जगह-जगह कोटेशन लिखा हुआ था - 'सहनशीलता, सहनशीलता, सहनशीलता।' घर का हर सदस्य उस सहनशीलता से सुदृढ़ बना हुआ था। यह एक सहनशीलता यदि हमारे भीतर आ जाती है तो कोई कितने ही पत्थर फेंके या लकड़ी मारे, कहीं-से-कहीं तक पीड़ा नहीं होगी। लोग कहते हैं माला गिनने से क्या होगा? लेकिन स्पष्ट है कि विचार बार-बार हमारे भीतर घुसेगा। उसका परिवमन भी होगा। यही परिवमन चीन के दीवान के घर में था।

वह क्या होता है, जिसमें अग्नि नहीं लगती है। फायर प्रूफ बोलते हैं या क्या बोलते हैं? फायर प्रूफ क्या होता है? (प्रत्युत्तर - जिसमें आग नहीं लगती) उसमें आग नहीं लगती है और गोली जिसमें न लगे उसे क्या कहते हैं? (प्रत्युत्तर - बुलैट प्रूफ) हां, वही बुलैट प्रूफ। कोई बुलैट प्रूफ पहना हुआ हो तो सामने से कोई उस बुलैट प्रूफ पर गोली चला दे तो गोली नहीं लगती है। अपने को यदि बुलैट प्रूफ बनाना है तो सहनशील बनो। अपने भीतर सहिष्णुता आनी चाहिए।

आचार्य नाना गुरु के तीन सूत्र हैं, 'सह-अस्तित्व, सहिष्णुता और समता।' एक सूत्र भी यदि हमारे जीवन में आ जाए तो दूसरे व तीसरे सूत्र की शायद आवश्यकता ही न पड़े। जीवन में उन्हें उतारना चाहिए। खाली सुन लेने से, पढ़ लेने से, बोल देने से, चर्चा कर लेने से काम नहीं चलेगा। काम तब पक्का होगा, जब उसे जी लेंगे। ग्लूकोज की शीशी केवल लेकर रख दी, उसे नस में लगाएं नहीं तो ताकत आने वाली नहीं है। ताकत लाने के लिए उसे नस में चढ़ाना पड़ेगा। वैसे ही कोई कैसा भी मेरे साथ व्यवहार क्यों न कर दे, लेकिन मुझे यह नहीं विचार करना है कि यह मेरे साथ ऐसा व्यवहार क्यों कर

रहा है? अपने भीतर बड़प्पन और अधिकार का भाव गौण करो तथा स्वयं को एक स्वयंसेवक के रूप में स्वीकार करो। विचार कर लो कि मुझे जहां-तहां ताड़ना-तर्जना सहनी पड़ेगी। भले ही कितना ही सुनना पड़े, मैं अपने कर्तव्य पर डटा रहूंगा, मैं पैर पीछे नहीं हटाऊंगा। अभी मदनमुनि जी बोल ही रहे थे कि पैसा कमाने के लिए तो हम क्या नहीं सुन लेते हैं। जब पैसा कमाने के लिए सुन सकते हैं तो जीवन निर्माण के लिए हम क्यों नहीं अपने आपको तैयार करें?

हम छत, मकान आरसीसी का बनाते हैं। क्यों बनाते हैं? क्योंकि वह मजबूत रहता है। वह न बारिश से चूएगा और न तूफान से जल्दी आहत होगा। ऐसा मजबूत मकान बनाने की हम कोशिश करते हैं, ऐसा मकान हम बनाने का विचार करते हैं। मकान में ऐसा कुछ भी लगाते हैं कि ऊपर बिजली भी गिरे तो नीचे जमीन में चली जाए, बिल्डिंग का कुछ भी बिगाड़ने वाली नहीं होगी। एक मकान में रहने के लिए हम कितनी सोच रखते हैं, कितनी समझदारी रखते हैं। उस मकान में कितने वर्षों तक जीयेंगे? कितने वर्षों तक उसमें रहेंगे? ज्यादा से ज्यादा सौ वर्ष निकाल लें। उससे ज्यादा क्या निकालेंगे? जब सौ वर्षों तक जीने के लिए उस मकान को मजबूत करते हो तो अपने जीवन रूपी मकान को क्यों नहीं मजबूती दी जाए? वह मजबूती ऐसी कि चाहे कोई मेरे साथ कैसा भी बर्ताव कर ले, मुझे अपने ध्येय से कभी विचलित नहीं होना है।

भीकमचंद जी संखलेचा (धुलिया), जिनको लोग अपनी भाषा में गुरुजी भी कहते थे, उनकी बात है। उनका नियम था कि सुबह जाकर एक को नहीं घर-घर सबको अलर्ट करना कि उठो-उठो प्रार्थना में चलो। प्रार्थना में चलो। कइयों ने डांटा, कइयों ने डपट लगाई, किंतु वे चुप नहीं बैठे। मुझे मेरा काम करना है, करते रहे। ऐसे करते-करते उन्होंने समता भवन में 80 लोगों को डेली प्रार्थना के लिए, डेली स्वाध्याय के लिए आने को बाध्य कर दिया। एक दिन किसी ने कह दिया, सुना दिया, सुन लिया। दो दिन किसी ने कह दिया तो सुन लिया। यदि बार-बार ऐसी स्थिति बनती रहे तो क्या करेंगे? अपने चुपचाप बैठ जाओ। कौन सुबह-सुबह गालियां खाने जाए? मुझे क्या पड़ी है रोज सुबह-सुबह गालियां खाने जाऊं। आदमी चुप हो बैठ जाता है। अपितु गांठ और बांध लेता है। किंतु भीकमचंद जी अपनी धुन में चलते रहे तो सबके मुंह पर चढ़ गये। सुबह-सुबह गालियां खाने के लिए जाना है क्या?

मकान बनाना है तो किसको कह दो? सुगनचंद जी को। समता भवन बनाने के लिए तैयार हैं पर अपना जीवन रूपी भवन बनाना है तो? कई हथौड़े लगेंगे तो मकान बनेगा, हथौड़ों की चोट सहनी पड़ेगी।

ऐसे नहीं बनता है मकान। कई पत्थरों को तोड़ना पड़ता है, कई ईंटों को तोड़ना पड़ता है। कहीं घुमाना पड़ता है, कहीं जमाना पड़ता है। एक सुगनचंद जी की बात नहीं है। उनके भीतर तो कर्तृत्व करने की क्षमता है। बहुत लोग जिनके भीतर क्षमता है, वे बाह्य कार्यों को करने के लिए तत्पर होते हैं, किंतु अपने जीवन के निर्माण के लिए उनकी कितनी तत्परता होती है? कितनी तत्परता रहनी चाहिए? किसी ने मुझे गाली दे दी, मेरा कुछ बिगड़ा क्या? क्या बिगड़ा मेरा? यह बताओ कुछ बिगड़ा क्या? अरे! आप कहते हो कि मेरी इन्सल्ट कर दी। अगर तुम्हारे भीतर इन्सल्ट भरी हुई है तो इन्सल्ट होगी। नहीं तो क्यों होगी इन्सल्ट? भगवान महावीर को किसी ने कानों में कीलें ठोंकी, बाल नोचे, पीड़ा पहुंचाई तो उनकी तो इन्सल्ट नहीं हुई। आप क्या भगवान महावीर से ऊपर निकल गए, जो आपकी इन्सल्ट हो गई?

इन्सल्ट होने वाले देवों को हम पूजते हैं या जिसकी इन्सल्ट नहीं हुई उनको पूजते हैं? फिर क्यों भगवान महावीर को हाथ जोड़ते हो? क्यों उनको नमस्कार करते हो? करो उनकी पूजा, जो इन्सल्ट में नहीं जीने वाले हैं, उन्हीं की पूजा करो, ताकि आप भी इन्सल्ट होने से अपने को बचा पाएंगे। कोई बचने वाला नहीं है। अपने मन को हम कमजोर करते हैं तो लगता है कि मेरी इन्सल्ट हो गई। मेरे भीतर घाव नहीं होते तो मिर्ची नहीं लगती है, मेरे भीतर घाव नहीं होते तो उनमें नमक की जलन नहीं होती। मेरे भीतर घाव है, इसलिए मेरे को बाहर की मिर्ची जलन पैदा करने वाली हो जाती है। यदि हम चाहते हैं कि मुझे मिर्ची नहीं लगे, मेरे भीतर जलन पैदा नहीं हो तो अपने अल्सर को ठीक करें। जिसके भीतर अल्सर नहीं है, जिसके पेट में अल्सर नहीं है, वह हरी मिर्च, लंका मिर्च भी खाता है। उसका असर वहां नहीं होता है। जानते हो ना लंका मिर्च क्या होती है? कैसी होती है? (प्रत्युत्तर - एकदम खतरनाक, झाल मिर्ची होती है) वह खतरनाक झाल मिर्ची भी जब आप अल्सर ठीक कर लोगे तो कुछ भी बिगाड़ नहीं कर पायेगी।

हमको यदि निरहंकारी बनना है तो ये सल्ट-इन्सल्ट सारी चीजें हटाओ। सहज, शांत भाव से अपनी जीवनचर्या चलाओ। फिर देखो, क्या

मजा आता है? क्या आनन्द आता है? हकीकत का जीवन हम नहीं जी पा रहे हैं। बिना मिर्च-मसाले के सब्जी खाने की आदत नहीं है। फिर हाजमोला की गोलियां खाकर पेट को बचाने की आदत है। हम इससे बचें। हमारे भीतर वह चीज है कि हम सहज अवस्था में अपनी स्थिति को सही बना सकें।

बन्धुओ! जो स्वयं को घननामी नहीं बना पाता, वह मन की कमजोरी से कायर बना रहता है। ऐसे कायर व्यक्ति को हर कार्य दु:खी करता है, कष्टदायी लगता है। उसको पग-पग पर कष्ट होता है, दु:ख होता है, पीड़ा होती है। वह भय खाता है, किंतु वीर का मन मुदित होता है। कष्टों को सहने में वीर पुरुष सक्रिय रहते हैं। वे आगे रहते हैं। जहां कठिनाई आ जाए, वे प्रथम पंक्ति में खड़े मिलेंगे। वे पीछे हटने वाले नहीं होते हैं।

आचार्य पूज्य गुरुदेव नानालाल जी म.सा. का छत्तीसगढ़ की तरफ विहार हो रहा था। वह समय और आज के समय में बहुत बड़ा अंतर है। आज जगह-जगह सड़कें हो गई हैं। पहले इतनी सड़कें भी नहीं थी और इतने शाकाहारी घरों का भी प्राचुर्य नहीं था। अभी अन्य-अन्य कई संस्थाएं शाकाहार के प्रचार के लिए सक्रिय हैं। अपने सामर्थ्य के अनुसार शाकाहार का लोग प्रचार कर रहे हैं। बहुत-से मांसभक्षी लोगों का उन्होंने मांस-भक्षण छुड़वा दिया। कई गांव ऐसे भी हैं, जहां सभी घर शाकाहारी बन गए। इस प्रकार पहले से अब में काफी फर्क है।

गुरुदेव को विहार में एक जगह रात गुजारनी थी। सड़क के किनारे मजदूर लोगों के ठहरने के लिए जो डामर के ड्रामों को खोल कर बनाया गया झोपड़ा होता है, वैसी वह कुटिया बनी हुई थी। एक छोटी थी व दूसरी कुछ बड़ी थी। कुछ लोगों को मालूम पड़ गया होगा कि म.सा. यहां पर रुकने वाले होंगे तो ग्रामीण लोगों ने भक्ति भाव से उस बड़ी कुटिया की लिपाई कर दी। उसे लीप दिया। गुरुदेव पधारे और पूछा तो मालूम पड़ा कि लिपाई कर दी है। साधुओं के लिए किया गया है आरंभ, वह उनके लिए योग्य नहीं होता। वह उनके लिए ठहरने योग्य नहीं रह जाता। आचार्य देव उसमें नहीं रुके। शायद आज यहां पर मौजूद हैं गोगेलाव के लोग? आचार्य पूज्य श्री गणेशलाल जी म.सा. का चातुर्मास गोगेलाव हुआ। जहां चातुर्मास में विराजना था, उस मकान को लिपा दिया। गुरुदेव ऊपर चढ़े, मकान को लिपा हुआ देखकर गणेशाचार्य ने कहा कि इस जगह चातुर्मास नहीं हो सकता। यह हमारे लिए

कल्पनीय नहीं रहा। अब क्या करें? एक स्कूल था वहां पर, उस स्कूल में चातुर्मास करवाया और उस गारे वाले, लिपे हुए मकान में स्कूल चलाया गया।

साधुओं की मर्यादा और भक्ति के भाव सदियों से चलते रहे हैं। आप ये सोचते हो कि साता पहुंचावें संतों को। इधर आप साता पहुंचाने के लिए जाते हो तो उधर कहीं-न-कहीं क्या हो जाती है? (प्रतिध्वनि - असाता हो जाती है) हां, असाता हो जाती है। वह यदि बड़ी वाली कुटिया नहीं लिपी होती तो वहां पर आराम से सारे संत रह सकते थे। उसमें लोगों ने देखा कि टूटा-फूटा है, थोड़ा ठीक करने के लिए लिपा दो तो ठीक हो जाएगा। म.सा. को साता रहेगी, पर म.सा. को साता किसमें रहती है? म.सा. के लिए आरंभ कर दें, हिंसा करें, उसमें साता रहती है या अहिंसा में साता रहती है? (प्रत्युत्तर - जहां अहिंसक तरीके से कार्य हो, उसमें साता रहती है) तो हमारे द्वारा कराया गया कार्य, किया गया कार्य वह क्या लाभ देने वाला बनेगा? कई लोग सोचते हैं कि चल जाए तो चल जाए। यह बात अलग है कि किसी को मालूम नहीं पड़े तो वहां खोटी चवन्नी चल जाए। बाकी चलना मुश्किल है।

आचार्यश्री जी उस छोटी-सी कुटिया में संतों के साथ रुके। जिस जगह छत इतनी ऊंची भी नहीं थी कि आदमी उसमें खड़ा रह जाए। माथा झुकाकर उस कुटिया में रहना पड़ेगा। जैसे-तैसे वहां रहे। कई संत सोये, कई संत बैठे रहे, जागे रहे। फिर थोड़ी देर बाद दूसरे संत सोये। ऐसे करके वह रात निकाली। दूसरे दिन मूलचंद जी देशलहरा दर्शन करने के लिए आ गए। प्रांत कांग्रेस के वे अध्यक्ष थे। वे खोजते-खोजते आ गए और आते ही बोला कि म.सा. आप रात यहां रुके? आपने रात कैसे निकाली होगी? कैसे रात निकली होगी? गुरुदेव ने फरमाया कि देखो, सामने सागवान के पेड़ कितने पंक्तिबद्ध-अनुशासित रूप से रहे हुए हैं। ये प्राकृतिक दृश्य, यहां ध्यान करने में, आत्मरमण करने के लिए, यह जगह साधकों के लिए सोने से भी बढ़कर है। वे गुरुदेव के आगे नत-मस्तक हो गए कि ऐसी कठिनाइयां आपको छत्तीसगढ़[1] के लिए सहन करनी पड़ रही हैं?

आज छत्तीसगढ़ का जो लिंक जुड़ा हुआ है, उसके पीछे ये सारी कठिनाइयां, सारे परिश्रम हैं। यह छत्तीसगढ़ वाले पुराने लोगों को मालूम होगा। अब नए लोग जो हैं, उनको मालूम है या नहीं है, यह मैं नहीं कह

1. उस समय 'छत्तीसगढ़' मध्यप्रदेश प्रान्त में ही था।

सकता, किंतु उस समय के कुछ लोग गाड़ी दौड़ाते हुए आते 'मत्थेण वंदामि-मत्थेण वंदामि' थोड़ी देर ठहरे और म.सा. मांगलिक। और ये चले, ये चले। उनके आने से क्या परिश्रम कम हो जाएगा? (प्रतिध्वनि - नहीं) उनके आने से क्या कष्ट कम पड़ जाएगा? (प्रतिध्वनि - नहीं) साधु यदि परिश्रम से घबराता है, वह परीषहों से कतराने लग जाए तो साधु जीवन की पालना सम्यक्तया नहीं कर पाएगा। परीषहों को सहने में जो तत्पर रहते हैं, उनको बड़ा आनन्द आता है। परीषहों के आने पर भी, कठिनाइयों के आने पर भी वह साधु जीवन से मुंह नहीं मोड़ेगा। जिंदगी कृत्रिम रूप से जीने के लिए नहीं है। उसे मुग्ध भाव से जीयें। ऐसी जिंदगी को कब जीया जा सकता है? कब जीया जा सकता है? जब अपने भीतर के सारे कचरे को बाहर निकालकर फेंक दें। सल्ट-इन्सल्ट को हटाकर अपने को अहंकारलेस बना लो, फिर देखो कि किसी की कोई चोट हमें नहीं लगेगी। कोई कितना भी बोल दे, मेरे चेहरे पर वही मुसकान, वही रौनक सदा बनी रहेगी, क्योंकि मेरे भीतर जब वह पीड़ा देने वाला नहीं होगा तो मेरे चेहरे पर उसकी रंगत नहीं आ सकती।

बंधुओ! वही प्रसंग सामने आ गया कि कायर व्यक्ति को जो क्रियाएं दु:खदायी लगती हैं, वे सारी क्रियाएं वीरों को प्रमोदकारी लगती हैं। कायर व्यक्ति रण की बात सुनते ही घबरा जाता है, किंतु वीर व्यक्ति रण में मोर्चा लेता है। वैसे ही यह साधु जीवन मोर्चा लेने का है। यह कर्मों का क्षय करने का है। यह जीवन आरामतलबी का नहीं है। घर में आराम से ए.सी., कूलर चलाकर रहने का नहीं है। ऐसा तब हो सकता है, जब अपने मनोगत भावों से वीरता आए। साधुता स्वीकार करे।

जंबू कुमार ने अपनी पत्नियों को समझाते हुए यही कहा कि यदि मेरी बात तुमको सही लगती है तो तुम भी तैयार हो जाओ। किंतु एक बात ध्यान में लेना कि तुम मेरे कहने से दीक्षा मत लेना। मेरे कहने से लोगी तो फिर थोड़ा-सा परीषह आएगा, थोड़ी-सी कठिनाई आएगी तो तुम मुझे कहोगी कि हमने तो तुम्हारे कहने पर दीक्षा ली। उस समय परीषहों को सहना कठिन हो जायेगा। पर हां, अगर तुम्हारा मन जमता हो, तुम्हारा मन राजी हो, तुम्हारी मन से तमन्ना जगती हो तो इससे बढ़कर और कोई भी श्रेष्ठ, सुंदर मार्ग नहीं है।

कौन-सा मार्ग सही है? (प्रत्युत्तर - संयम मार्ग) आहा! आहा! ये

बोलने का मजा तो बहुत है। बोलियां तो बहुत निकलती हैं, किंतु खाली बोलने से काम नहीं चलेगा। बोलने से यहां काम नहीं चलता है। आपका बाजार बोलने से चलता है। वहां पर बोलने वाले के भूंगड़े-चने भी बिक जाते हैं। नहीं बोलने वाले की ज्वार भी पड़ी रह जाती है। किंतु यहां बोलने से चने नहीं बिकते हैं। यहां खपना पड़ेगा। यहां पर बोलने से काम नहीं चलेगा। यहां तो स्वयं को खपना पड़ेगा। यहां तो अपने कर्मों को खपाना पड़ेगा, कषायों को खपाना पड़ेगा। व्रतों के अनुरूप अपने जीवन को मोड़ना पड़ेगा, तब शांति और समाधि मिलेगी।

जंबू कुमार ने अपनी पत्नियों से स्पष्ट कहा कि मेरे कहने से दीक्षा नहीं लेनी है। तुम्हारे मन में, तुम्हारे अंतर्भाव में यह बात जमती हो तो यह तैयारी कर लो, किंतु मैं तो यह कहूंगा कि धर्म के सिवाय दुनिया में ऐसी कोई भी जगह नहीं है, जिससे व्यक्ति सुखी हो सकता है, जिससे व्यक्ति समाधि को प्राप्त कर सकता है। जैसे सूर्य प्रकट होता है तो अंधकार दूर हो जाता है, वैसे ही जंबू कुमार के उपदेश को सुनकर उन आठों ही धर्मपत्नियों का मोह दूर हो जाता है। उनके भीतर से अज्ञान हट जाता है। वे भी दीक्षा के लिए अपनी तैयारी दिखाती हैं। जो उनमें सबसे बड़ी पत्नी थी, वह कहने लगी कि नाथ, आप धन्य हो। आपको जितना धन्य कहें, उतने ही आप धन्यशाली हो। निश्चय में ही आपके विचार बड़े सुंदर हैं। आप स्वयं तरने वाले और दूसरों को भी ताराने की तैयारी कर रहे हैं। हम सभी मोह से पूरी तरह घिरी हुई थी। हमारे ऊपर मोह का वातावरण बना हुआ था। मोह की उपस्थिति के कारण ही हमको वैसी ही सूझ रही थी, इसलिए हमारा विवेक मलीन हो गया था। हमारे भीतर विषय-वासना की जागृति थी, इसलिए आपकी अच्छी सीख को समझने में हम समर्थ नहीं बन पाईं। किंतु नाथ! हम भी आपके पथानुगामी बनने की तैयारी में हैं। अब जल्दी कर दो। अब एक क्षण भी हमको इस संसार में नहीं सुहाता है। हम चाहती हैं कि जल्दी से जल्दी सूर्योदय हो और जल्दी से जल्दी हम आचार्य सुधर्मास्वामी के चरणों में चले जाएं।

वैरागी हूं,
वैरागी को न धन चाहिए, न घर चाहिए,
न मान चाहिए, न सम्मान चाहिए...
क्या चाहिए?

...एक वीर प्रभु की शरण चाहिए।।

मान-सम्मान का पोटला लेकर आना मत। मान-सम्मान का पोटला लेकर आओगे तो यहां भी दु:खी और वहां भी दु:खी। नमक की पोटली, नमक की डली या टुकड़ा यदि मुंह में लेकर चलोगे तो मिसरी का स्वाद कैसे प्राप्त करोगे? मान-सम्मान का पोटला लेकर आओगे तो यहां भी साता मिलने वाली नहीं है, यहां भी सुख मिलने वाला नहीं है। भूलकर भी मान-सम्मान का पोटला लेकर मत आना, भूलकर भी मत आना। उस पोटले को हटा सकते हैं, पोटले को हटाने की भीतर क्षमता है तो यह जीवन इतना श्रेयस्कर है, नहीं तो फिर खाली स्वागत है। फिर भले ही इस ओर बढ़ जाओगे, सुखी नहीं हो पाओगे। सुखी कब होंगे? वहां रहते हुए भी सुखी कब होंगे? सम्मान की पोटली को किनारे पर कर दो। यहां आने पर सुखी हो जाएंगे क्या? यहां आने पर दीक्षा लेते ही सुखी हो जाएंगे क्या? (प्रतिध्वनि - नहीं)

मान-सम्मान की पोटली को किनारे कर दिया और अपने आपको बुलैट प्रूफ बना दिया। फिर आपको यात्रा करने में कहीं कोई बाधा पहुंचने वाली नहीं है। कोई कितनी भी गालियां बोल दे। कोई चाहे बंदूक चला दे, रिवॉल्वर चला दे, तुम्हारी गाड़ी को कुछ भी लगने वाला नहीं है। ऐसी दृढ़ता हमारे भीतर आनी चाहिए। आठों पत्नियां एक ही लय में आ गईं। अब वे कहती हैं कि नाथ! अब जल्दी से जल्दी क्या करना चाहिए? हम कहते हैं कि क्या जल्दी है? हम क्या कहते हैं? (प्रतिध्वनि - क्या जल्दी है) जो संगी-साथी है, वह क्या बोलता है? जो घर वाले हैं, वे क्या बोलते हैं? परिवार वाले क्या बोलते हैं? क्या बोलते हैं? बोलो तो सही। क्या बोलते हैं? नहीं बोलना क्या? यहां व्याख्यान में नहीं बोलना। घर जाकर बोलना। क्या बोलोगे घर में? शालिभद्र जी क्या बोले? (प्रतिध्वनि - क्या जल्दी है)

क्या जल्दी है? और मौत का वारंट आ गया तो फिर?

थोड़ा ऊभा तो थम्भजो हो, हो राम जी,
म्हारे धन रे लगाय दूं सील राम जी।

यह हरजस है। इसमें आदमी राम जी से कहता है कि राम जी! आप आ गए मुझे उठाने के लिए तो थोड़ा खड़े रहो। मैं अपने धन की सील लगा दूं, उसको सुरक्षित कर दूं, ताकि कोई मेरा धन नहीं ले ले। ऐसे ताला लगाने से हो जाएगा क्या धन सुरक्षित? (प्रतिध्वनि - नहीं) वहां एक क्षण भी आपके लिए

कोई रुकने वाला नहीं है। कोई भी एक क्षण के लिए विलंब करने वाला नहीं है। इसलिए 'शुभस्य शीघ्रम्।' शुभ काम में कभी विलंब नहीं करना चाहिए। वह विचार फिर रहे या नहीं रहे? वह भाव उठे या नहीं उठे? जो भाव उठे हैं, पता नहीं वापस कब उठेंगे? कोई अगर सोचे कि शेयर बाजार और ऊपर उठे, उसे लगा भी कि और उठेगा, लेकिन देखते ही देखते भाव, बाजार वापस गिर जाए तो क्या होगा? जिस समय भाव ज्यादा है, उस समय पैसे निकाल ले तो फिर क्या होता है? (प्रत्युत्तर- वह निहाल हो जाएगा) हां निहाल हो जाएगा। फिर निहाल हो जाए।

निहाल होना है या नहीं होना है? क्या करना है? निहाल होने के लिए क्या करेंगे? भाव तो कइयों के चढ़ रहे हैं। हम थोड़ा देखेंगे। मैं ऐसा विश्वास करता हूं कि इतने सारे कर्मों की गांठें बंधी हुई होते भी कोई तो हलुकर्मी जीव होता ही होगा, जिसके भीतर भाव उठे हैं तो उठे ही रह जाएं। उठे हुए भाव, उठे रहे, उठे रहे, उठे रहे। पर आप तो कहते हो कि जल्दी क्या है? जल्दी क्या है? (सभा में बैठे श्रावक बोलते हैं- आप जब कहो, जो कहो) जोधपुर में कौन है, खाली वचन देने वाला? हां, हां, करने वाले कौन हैं? आप लोग तो कह रहे हो कि अभी जल्दी क्या है? अभी जल्दी क्या है? उधर जंबू कुमार की पत्नियां क्या कह रही हैं?

हम सब तैयार हैं। क्या बोल रही हैं? कौन बोल रही हैं? (प्रतिध्वनि - जंबू कुमार की पत्नियां) और सभा में कौन बोल रहा है? सभा में कौन बोल रहा है? गंगाशहर-भीनासर वाले विनती करने के लिए आए हैं। काहे की विनती? चातुर्मास की। हाथ पोले हैं या मुट्ठी भरी हुई है? हाथ पोला है या मुट्ठी भरी हुई है? बोलो तो सही। सुराणा जी[1], मुट्ठी बंधी है या पोली है?

श्रीमती टीना जी ऋषभ जी पारख, पुत्रवधू श्री मांगीलाल जी पारख आज मासखमण के रथ पर आरुढ़ हो रही हैं। जिनका पहला मासखमण चातुर्मास के शुरू में हुआ, अब भी है, यानी दो मासखमण हो गए। आज उनके मासखमण की तीस की तपस्या है। आज मासखमण के रथ पर आरूढ़ हो रही हैं। इससे पहले आठ, नौ, ग्यारह की तपस्याएं की थीं। मैंने एक दिन कहा था कि अभी वापस चालू करें तो मासखमण हो जाएगा। उस समय वे व्याख्यान में नहीं थी, किंतु ऋषभ जी ने कहा होगा। उस दिन या दूसरे दिन

1. मेघराज जी सुराणा

चालू हुआ मासखमण, आज मासखमण के रथ पर आरूढ़ हैं।

चातुर्मास की विनती हो या तपस्या, प्रेरणा हमको लेनी है। हम भी अपने आप में प्रेरणा लें और अपने भीतर के पोटले को, अपने भीतर के जहर को दूर करके कहीं पर भी रहेंगे तो सुख से रहेंगे। धर्म की आराधना करोगे, प्रेरणा करोगे तो कोई कैसा भी बोले, करे तो चोट नहीं लगेगी, किंतु कर्तव्य पथ पर बढ़ने वाले को अपना कर्तव्य निभाना आना चाहिए। चाहे कोई गाली दे, चाहे पत्थर फेंके, लकड़ी फेंके या कुछ भी करे, चेहरे पर विपरीत भाव नजर नहीं आना चाहिए, तभी वह सच्चे मायने में अपने कर्तव्य का पालन करने में समर्थ हो सकता है। तभी वह संघ की, शासन की प्रभावना करने में, सेवा करने में अग्रसर हो सकता है। हम उस प्रकार से अपने आपको बनाने का प्रयत्न करेंगे तो धन्य बनेंगे।

इतना ही कहते हुए विराम।

दिनांक - 10.11.2019

6

यह वक्त है कहानी लिखने का

विमल जिन दीठा लोयण आज...

'साधूनां दर्शनं पुण्यं, तीर्थभूता: हि साधव:' नीति वचन है, साधुओं के दर्शन पुण्यकारक होते हैं। शुभ फल देने वाले होते हैं। जब साधुओं के दर्शन भी पुण्य रूप होते हैं, शुभ फल देने वाले होते हैं तो परमात्मा के दर्शन कितने महान् होंगे?

महात्मा आनंदघनजी अपने समय के महान् साधक एवं अध्यात्मरसिक, कविकुल शिरोमणि थे। उनका मन जिस समय भक्ति से सराबोर होता, वह भक्ति में विभोर हो मानो नाचने लगता। नृत्य करने लगता। उसी भक्ति से उनमें भगवान विमलनाथ दृष्टिपथ पर विचार सरणी में अवतरित हुए, उसी समय उनका मन झूम उठा एवं स्वर लहरी गूंज उठी। 'विमल जिन दीठा लोयण आज, म्हारा सिध्या वांछित काज...।' अर्थात् विमलनाथ भगवान के आज दर्शन हुए, उससे मेरा इच्छित कार्य सिद्ध हो गया। दुनिया में कई लोगों के इच्छित कार्य होते हैं। धन की, परिवार की, अन्य कई-कई प्रकार की उनकी आकांक्षाएं, अभिलाषाएं होती हैं। ये एक प्रकार से दिशा मूढ़ता है। जहां सर्वांग प्राप्त हो सकता है, वहां वे किसी सामान्य चीज की चाह करके वहीं विराम ले लेते हैं। इसलिए वह सही समझ नहीं है। इसलिए मैंने इसको दिशा मूढ़ता कहा है।

वस्तुत:, हमारी चाह क्या होनी चाहिए? हमारी अभीप्सा, अभिलाषा क्या होनी चाहिए? क्या नासिका के श्लेष्म की तरह भौतिक पदार्थों की चाह होनी चाहिए। उससे भिन्न अवस्था की इच्छा होनी चाहिए। ध्यान रहे इस मनुष्य जीवन से हम वह ऊँचाई प्राप्त कर सकते हैं, जिससे पुन:-पुन: हमें जन्म-मरण की प्रक्रिया नहीं करनी पड़े। किंतु उस ओर हमारी दृष्टि नहीं जाती है। हम मरण-धर्मा अवस्था पर रुक जाते हैं। संसार की वस्तुओं की हम चाह करके बैठ जाते हैं

और समझ लेते हैं कि वह चीज मिल गई तो मैं धन्य हो गया। ये चीजें अनंत बार हमें मिली हैं - एक बार, दो बार नहीं, अनंत बार मिली हैं। यह कोई पहली बार नहीं मिल रही हैं, किंतु अनंत बार मिल जाने के बाद भी उनसे कोई सार्थकता सिद्ध नहीं हुई। हमने उनका कोई लाभ नहीं उठाया या उनसे कोई कार्य फलित नहीं हुआ। लाखों-करोड़ों, अरबों-खरबों कितना भी धन मिल जाए तो क्या संसार के जन्म-मरण के दु:खों से स्वयं को बचाया जा सकता है?

उत्तराध्ययन सूत्र में शास्त्रकार कहते हैं कि कैलास पर्वत के समान अर्थात् मेरु पर्वत के समान। निशीथ चूर्णि में मेरु पर्वत को कैलास पर्वत की संज्ञा दी गई है। वैसे आगमों में इसके अलावा और कहीं कैलास नाम देखने में नहीं आया। मात्र एक जगह आया है कि कैलास पर्वत के समान किसी को धन दे दें, सोना-चांदी दे दें, तब भी व्यक्ति की इच्छाएं पूर्ण नहीं होंगी। वह चाहेगा और मिले, और मिले। अधिक का कोई छोर नहीं होता है और व्यक्ति उसी और, और में अपने जीवन के छोर तक पहुँच जाता है। यानी जीवन की अंतिम घड़ियां गिनने लग जाता है। हमने यह पहली बार मनुष्य जन्म पाया हो, ऐसी बात नहीं है। पहले भी बहुत बार हमने मनुष्य जन्म पाया है, किंतु जो घटना इस मनुष्य जन्म में घटनी चाहिए, वह नहीं घट पायी। न पूर्व के मनुष्य जन्मों में ही वह घटना घटी। घटना को हमने घटाया नहीं? वह घटना हमारे जीवन में घट गई होती, हमारी दशा कुछ और होती। कौन-सी है वह घटना?

वह घटना है, जन्म-मरण को समाप्त करना। अब पुन:-पुन: मुझे माता के गर्भ में उस अशौच स्थान में जन्म न लेना पड़े और मृत्यु के लिए मुझे भयभीत नहीं होना पड़े। 'जन्मं दु:खं', जन्म दु:ख है और मृत्यु भी दु:ख है। इस दु:ख के रास्ते से मुझे नहीं गुजरना पड़े। यह कार्य, यह घटना हम एकमात्र मनुष्य जन्म में ही सिद्ध कर सकते हैं और यह अवसर अभी हमें मिला हुआ है। इस अवसर को यदि हमने गंवां दिया तो पहले अनंतानंत जन्म जो हमने गंवांए हैं, यह एक जन्म भी उसी के साथ जुड़ जाएगा। यह विशेष के रूप में उपस्थित नहीं होगा कि जिस जन्म को हम विशेष कह सकें। भगवान महावीर के नयसार के भव को हम विशेष कहते हैं, क्योंकि उस समय एक कहानी लिखी गई। उस समय एक रिजर्वेशन हुआ और भगवान महावीर के युग में, भगवान महावीर के भव में उनको रिजर्वेशन का लाभ मिला। उन्हें मुक्ति मिली।

यदि ऐसा भी हम कुछ कर सकें, जैसा कि नयसार ने किया, हमारा भी

रिजर्वेशन हो जाए। एक बार तय हो जाए, निश्चित हो जाए कि इतनी बार जन्म-मरण करना है? और यह आंकड़ा हम इस मनुष्य जन्म में हासिल कर सकते हैं। पुरुषार्थ हमारा होना चाहिए। वह पुरुषार्थ यदि हम जगा नहीं पाएंगे तो हाथ मलते रह जाएंगे। मृत्यु के क्षण सामने आने पर बड़ा भय लगेगा, रोना आएगा कि हा! हमने जिंदगी में क्या किया? अन्यथा मृत्यु का क्षण आने पर हम में किसी प्रकार का रुदन नहीं होगा। हमने अपने कर्तव्य को पूरा किया है। हमने अपने दायित्व को निभाया है। मैं उस अवस्था में पहुंच चुका हूं, अब मुझे किसी प्रकार की कोई चाह नहीं है, कोई अभिलाषा नहीं है। ऐसी अवस्था हम इस मनुष्य जन्म में हासिल करने में समर्थ हैं और कर सकते हैं। यदि हम नहीं कर पा रहे हैं या नहीं कर रहे हैं अथवा उस दिशा में हमारा कोई लक्ष्य नहीं बन पा रहा है तो यह हमारी नादानी-नासमझी होगी। हम उसी नादान अवस्था में वह समय खो देंगे।

जंबू कुमार ने उस मनुष्य जन्म को साध लिया, सफल कर लिया और एक ऐसी कहानी लिख दी, जो युगों-युगों तक शायद मिट नहीं पाएगी। अमिट बनी रहेगी। आज दो हजार वर्ष से ऊपर की स्थिति बन गई, फिर भी आज ये हमारे स्मृति पटल पर छाए हुए हैं। क्यों? वही बात है कि जिन्होंने समझ लिया कि अब मुझे आत्मा को, इस जीव को जन्म-मरण के झूले में नहीं झूलना है। चार गतियों के चक-डोलर में इसको नहीं घुमाना है। बहुत हो गया, बहुत घुमा लिया, बहुत झूला झूल लिया। अब मुझे उसमें नहीं झूलना है। यही कारण है कि वे आज भी भव्यों के दिलों पर राज कर रहे हैं - शालिभद्र, धन्ना जी आदि ऐसी अनेक विभूतियां हुई हैं। जो रिक्त स्थान है उसमें हमें अपना नाम अंकित करना है। यह ठान लेना चाहिए और लग जाएं जी-जान से।

पूरा संसार किसके सहारे रुका हुआ है? पूरा विश्व किसके सहारे रुका-टिका हुआ है? एक आस, एक आशा उसके लिए क्या बोला जाता है? 'आशा अमर धन है' मिले चाहे नहीं मिले, किंतु आशा बनी रहती है। उसके सहारे व्यक्ति कहां से कहां तक की यात्रा कर लेता है? कहां से कहां तक चला जाता है? एक आस और वह आशा है कि जो सदाबहार बनी रहती है। आशा के लिए कहते हैं कि जब तक श्वास, तब तक आस। वह छूटती नहीं है भले ही हजारों बार धक्के खाए होंगे, किंतु फिर भी आशा है।

महाभारत की एक घटना है कि पांडवों को द्यूत-जुआ खेलने के लिए

आमंत्रित किया गया और वे खेलने के लिए बैठे। खेले भी। एक बार हारे, दो बार हारे, तीन बार हारे, चार बार हारे। हारते ही जा रहे हैं, किंतु फिर भी एक दांव और, एक दांव और, एक दांव और। चलने दो का दौर चलता रहा। आज इसी तर्ज पर हमारे बहुत-से लोग दांव खेलते रहते हैं। जान रहे हैं कि खोता जा रहा है, हालत खराब होती जा रही है, फिर भी सोचता है कि एक झटका यदि लग गया, एक दांव भी यदि सुधर गया तो पिछली सारी समस्या का समाधान उस एक दांव में कर लेंगे। जो सही जिंदगी जीये, उसको दांव खेलने की कोई आवश्यकता नहीं पड़ती है। रातों-रात कोई सम्राट बनना चाहे, कोई धनपति बनना चाहे, ऐसे व्यक्ति दांव खेला करते हैं और कभी जीत भी गए तो विराम नहीं लेंगे। वे सोचते हैं कि एक बार जीते हैं तो एक बार और लगा दें। अभी भाग्य सिकंदर है, अभी भाग्य अच्छा है इसलिए एक झूले में इतने ऊपर चढ़ गए तो दूसरी बार जैसे ही चक-डोलर घुमाया कि कहां आ गए? (प्रत्युत्तर - नीचे आ गए)

यह हालत होती है। माता-पिता, परिवार सबको एक इंतजार लगा हुआ था। भीतर एक गुदगुदी-सी लगी हुई थी कि क्या हुआ, क्या होगा? कुतूहल जिसको हम कहते हैं। कुतूहल बना हुआ था कि क्या रिजल्ट, क्या रिजल्ट, क्या रिजल्ट? हमारा विशेष कोई संबंध नहीं, फिर भी यदि बात सामने आ गई कि कल साढ़े दस बजे अयोध्या का निर्णय आने वाला है, तो कुतूहल होता है, क्या आ रहा है, क्या आ रहा है, क्या आ रहा है? हालांकि निर्णय अमूमन लोगों के दिमाग में आ गया कि क्या निर्णय आने वाला है? फिर भी हूबहू लाइनें क्या हैं? हूबहू शब्दावली क्या है? उसको जानने, सुनने की इच्छा, अभिलाषा होती है। है या नहीं है? (प्रतिध्वनि - है) कोई भी ऐसी घटना होती है तो वह दिमाग उधर लगता है। उसको जानने का उत्साह होता है। उसको हम कुतूहल कहते हैं।

वही उत्सुकता, वही कुतूहल भाव माता-पिता, परिजनों में था कि क्या होता है? मन भीतर से निराश था। भीतर में यह विश्वास कर चुके थे कि जंबू कुमार अपने ध्येय का पक्का है। पीछे मुड़ने वाला नहीं है, फिर भी एक आशा हो सकती है कि बहुओं को कोई ऐसा झटका लगा हो और जंबू कुमार के भाव बदल गए हों। इस इंतजार में वे भी जल्दी उठ गए थे और इंतजार कर ही रहे थे कि जंबू कुमार को आते हुए देखा तो दिल बैठ गया। जंबू कुमार का चेहरा, जंबू कुमार का आने का तरीका, उनका लहजा, उससे माता-पिता समझ गए

कि दाल गली नहीं है। दाल गल नहीं पायी है। बहुओं की कोई बात चल नहीं पायी है।

वे ये जान रहे थे कि उन्होंने प्रयत्न तो किए होंगे, निश्चित ही किए होंगे, फिर भी उन्होंने मौके का लाभ उठाने का विचार किया कि अपने मुंह से क्यों कहें कि बेटा क्या विचार रहा? क्यों पूछें? हम अपनी तरफ से क्यों पूछें? उन्होंने बात को टालने का प्रयत्न किया। जब जंबू कुमार आए और चरण स्पर्श किए तब उन्होंने आशीर्वाद देते हुए कहा कि बेटा, तैयार हो जाओ। जल्दी से हाथ-मुंह धो लो और मेरे साथ तुम्हें दुकान चलना है। व्यापार के लिए चलना है। जंबू कुमार कहते हैं - पिताजी! आपकी आज्ञा टालने की बात नहीं है। किंतु मैं चाहता हूं कि व्यापार ऐसा हो, जो हकीकत में लाभदायी हो। आज हम जिस व्यापार को कर रहे हैं उसमें कभी मुनाफा होता है, कभी घाटा, कभी कुछ होता है। मैं वह व्यापार करना चाहता हूं, जिसमें परम अर्थ की प्राप्ति हो। जिससे परम प्रयोजन सिद्ध हो जाए। मैं उस व्यापार को करने का इच्छुक हूं। यह जड़ धन पाया और गंवांया। यह तो हमने बहुत बार पाया है और गंवांया है। उसमें जो खोटा धन घर में आता है, वह पाप को बढ़ाता है। वह संताप को बढ़ाता है। वह कभी भी फायदा देने वाला नहीं होगा और यह बात मेरे खयाल से आप अच्छी तरह जानते हो कि पाप का पैसा, अनीति का पैसा घर में आएगा तो उसको निकलने के लिए बहुत सारे रास्ते मिलेंगे। वह प्रगति नहीं करेगा। उससे बरकत नहीं होगी।

मैं नहीं समझता कि आज के लोग समझते हैं या नहीं समझते हैं। किंतु पुराने लोग इस बात को मानते हैं, स्वीकार करते हैं कि अनीति का पैसा, वह कभी प्रगति नहीं करता - डाकू, डॉक्टर, चोर, बीमारियां, वे उस धन को हड़प लेते हैं। अन्य कुछ नहीं होगा तो घर में, परिवार में, शरीर में बीमारियां चालू हो जाएंगी, उससे धन का बहाव किधर जाएगा? धन घर में रहेगा या किधर निकलेगा? (प्रतिध्वनि - बाहर निकलेगा) तो अनीति का धन आएगा, उसको निकलने के भी हजार रास्ते हैं। नीति का धन जल्दी से हटता नहीं है। यूं ही घर से निकलता नहीं है, घटता नहीं है। बीमारियां क्यों बढ़ गईं? कौन करता है सर्वे? किसने शोध किया? व्यक्ति जितना अनीति में जीता है, उतनी बीमारियां उसके निकट आती हैं, क्योंकि उस अनीति के पैसे को निकालने के लिए कोई न कोई रास्ता तो चाहिए, कोई न कोई जरीया तो चाहिए। वह जरीया अपने आप

बना लेता है कि पैसे को किधर से निकालना है?

डैम, बांध में पानी भर जाता है और धक्का लगाता रहता है। वह उस डैम का कमजोर से कमजोर कोना ढूंढ़ता रहता है। उस बांध का कोई कमजोर कोना होता है, पानी उधर कोने में धक्का लगाकर रिसना शुरू हो जाता है। वैसे ही अनीति का पैसा धक्का लगाता रहता है और जिधर नरम कोना होता है, उधर ही उसका बहाव चालू हो जाता है।

जंबू कुमार अपने पिता से कहते हैं कि पिताश्री! ऐसा खोटा धन अनर्थ की खान है। वह धन राग-द्वेष बढ़ाता है। लोग अंगुलियों पर आ जाते हैं। लोग अंगुलियों के निशान करते हैं और ऐसे खोटे धन के पीछे कई चोर, कई उचक्के लग जाते हैं तो कई बार कोई लत लग जाती है, जो जीवन को अशांत बना देती है। धन का अर्जन करो, फिर उसका संरक्षण करो और एक प्रकार से उसके गुलाम बनकर जीवन जीते रहो। बहुत कम लोग होते हैं, जो धन के मालिक होते हैं, धन का मजा लूटते हैं। भारत में कितने लोग होंगे जो धन के मालिक हैं? मैंने तो एक देखा शालिभद्र को जो धन का मालिक था- धन आए तो हर्ष नहीं, धन जाए तो चिंता नहीं।

नुकसान हो गया, उसकी चिंता भारत में किन-किन लोगों को नहीं है? कितने लोग हैं, जिनको चिंता नहीं है? इन्दौर वालों को? चिंता है या नहीं है? आप कहोगे कि क्या पूछते हैं महाराज भी? लक्ष्मी तो आती अच्छी लगती है। आती तो बहुत सुहावनी लगती है और जाते हुए? समझ लीजिए कि वह जिस नखरे से आती है ना, वह नखरे बताते हैं कि यह तुम्हें कष्ट देने वाली है। वह जिस नखरे से आती है, वह नाज-नखरे करेगी। उसके नाज-नखरों को पालते रहो, तब तक तो ठीक है। जैसे ही आपने नाज-नखरों को स्वीकार्य नहीं किया, उसको ज्यादा मौका नहीं दिया, ज्यादा अवसर नहीं दिया तो उसके तेवर तीखे हो जाएंगे। वह ऐसी रीझकर निकलेगी कि हम पैर पकड़कर भी उसको रोकना चाहें तो रोका नहीं जा सकेगा। इसलिए हमें नाज-नखरों में पड़ना नहीं।

जंबू कुमार कहते हैं कि तात्! उत्तम कमाई करनी और राजा जीवन जीना, यही हमारे जीवन का लक्ष्य होना चाहिए। उसके लिए धर्म एकमात्र सारभूत है। वही परमार्थ है। धन के लिए जिस प्रकार की दौड़-भाग होती है, उसका अस्तित्व कितना? संसार के सारे संबंध क्षणिक हैं। जैसे पक्षी शाम को आकर पेड़ पर बैठते हैं और सुबह होते ही वहां से उड़कर चले जाते हैं। जब तक

स्वार्थ सिद्ध होते हैं, तब तक रिश्ते बने रहते हैं। जैसे ही स्वार्थ पर चोट पड़ती है रिश्ते छिन्न-भिन्न हो जाते हैं। रैन-बसेरे की तरह ये सारे संबंध हैं।

सच्चा जौहरी कभी भी कांच के कंचों को स्वीकार नहीं करेगा। रत्न और कांच का गोला, दोनों की चमक समान हो सकती है। दोनों की चमक समान होने पर भी जौहरी उसकी चमक-दमक में नहीं जाता है। जौहरी रत्न को पसंद करता है, कांच के गोले को पसंद नहीं करता है। वह जानता है कि चमक कांच में भले ही हो, किंतु इसकी बाजार में वह कीमत नहीं है। इसलिए क्रय-विक्रय में 'कांच का कांच और मणि की मणि।' कांच, कांच होता है और मणि, मणि होती है। उसका भेद अपने आप ही हो जाता है। जौहरी की निगाहों में उसका भेद रहा हुआ है।

जंबू कुमार फिर कहते हैं कि तात्! समय उतना ही है, समय उतना ही रहता है। उतने समय में कंचों का व्यापार कर लो या रत्नों का। समय उतना ही है। कांच का व्यापार करने वाला पीछे का पीछे रहता है और रत्नों का व्यापार करने वाला जीत जाता है। मैं आपसे निवेदन करूंगा, विनयपूर्वक निवेदन करूंगा कि ये मनुष्य जन्म अमूल्य है, इसका सही उपयोग होना चाहिए। यदि कोई अड़चन नहीं हो, आपको कोई तकलीफ नहीं हो तो मैं यह और निवेदन करना चाहूंगा कि पूज्यवर, आप भी इस प्रभात को सफल कर लीजिए। क्या कर लीजिए? क्या कर लीजिए? (प्रतिध्वनि- इस प्रभात को सफल कीजिए) क्या होता है, सफल करने का अर्थ? अच्छे पैसे कमा लो? आज के प्रभात को सफल करने का अर्थ क्या होता है टी. एन. साहब[1]? क्या होता है तनसुख जी? प्रभात को कैसे सफल करें? (तनसुख जी कहते हैं- हमारी आत्मा के कल्याण के मार्ग पर आगे बढ़ना) तो बढ़ो। कैसे बढ़ते हैं? आपने पांव के तो अटंगी लगा रखी है। अटंगी से तो आदमी चल ही नहीं सकता है। आज के लोग तो जानते हैं या नहीं कि अटंगी क्या होती है? मेरे खयाल से जानते ही होंगे। पैरों में अटंगी लगी रहेगी तो आगे कैसे बढ़ेंगे? यह पुण्य प्रभात है, यह समय फिर प्राप्त नहीं होना है।

अभी हर्षिलाश्री जी म.सा. ने कहा कि लगता है अभी कोई उठे, अभी कोई उठे। लेकिन कोई उठता ही नहीं है। और कोई उठ भी जाए तो क्या होगा? पैरों में तो अटंगी लगी है। आरंभ और परिग्रह की अटंगी लगी हुई है। यह अटंगी

1. श्री तनसुख जी (केतुकलाँ-जोधपुर)

जब तक लगी रहेगी, तब तक आगे नहीं बढ़ सकते। गाय को दूहते हैं तो नेंजणा बांधते हैं। वह जब बांधा हुआ रहेगा तो गाय आगे चलेगी कैसे? वैसे ही यदि हमारे पैर बंधे रहेंगे तो आगे कैसे बढ़ पाएंगे?

जंबू कुमार अपने माता-पिता से कहते हैं कि यदि आपको कोई खास अड़चन नहीं है तो आपको भी यह प्रभात सफल कर लेना चाहिए। अब उनके पास में कोई उत्तर नहीं रहा। अब उनके पास में कुछ कहने को रहा नहीं। उन्होंने विचार किया कि यह सूचना संबंधियों को भी दे देनी चाहिए। उन्होंने तत्काल यह सूचना संबंधियों को दी। मैं यह तो नहीं कहूंगा कि मोबाइल पर नंबर घुमाया, नंबर डायल किया और एसएमएस कर दिया। वह तो उस समय नहीं रहा होगा, किंतु तीव्रगति से वह सूचना उन तक पहुंचा दी। हालांकि पहले से ऐसी तैयारी तो थी, क्योंकि बात पहले स्पष्ट हो चुकी थी कि वे शादी के दूसरे दिन ही दीक्षा लेने के लिए तत्पर हैं। फिर भी सभी, यों कहें कि ज्यादा आत्मविश्वास में रह गए कि नहीं-नहीं हमारी लड़कियां समझा लेंगी। अब कौन समझ पाया और किसने समझा दिया, यह तो हमें समझना है कि कौन समझा और कौन क्या समझेगा?

वे आए और आते ही कहा कि कुंवर साहब, बहुत आश्चर्य हो रहा है। यह क्या धांधली मचा रखी है? यह क्या तमाशा बना रखा है? थोड़ा सोचना तो चाहिए। समय की बात समय पर होती है। होली की बात है तो होली पर चंग बजने चाहिए और दीपावली की बात है तो दीये दीपावली के समय जलने चाहिए। होली के गीत अलग होते हैं, दीपावली के गीत अलग होते हैं। बालक जन्मता है तो गीत कुछ अलग ही गाये जाते हैं और मृत्यु होती है तो गीत वही होते हैं या अलग होते हैं? (प्रतिध्वनि- अलग होते हैं) ये सभी गीत अलग-अलग होते हैं। आज तक हमने ऐसी बात नहीं सुनी है कि कल शादी हुई और आज दीक्षा हो रही है। यह कोई खेल-तमाशा है क्या? अब आप बच्चे नहीं रह गए हैं। आप वर राजा बन गए हैं। अब आप गृहस्थ बन गए। आपकी शादी हो गई है। शादी नहीं होती है, तब तक टाबर/बच्चा गिना जाता है। आप बच्चे थे तो आपने बहुत कुछ कर लिया। अब आप ऐसा करते अच्छे नहीं लगते हैं। ऐसा करना आपको शोभा नहीं देता।

आपको सोचना चाहिए। गंभीरता से विचार करना चाहिए और भावुकता से आप कह रहे हो कि पत्नियां भी साथ में दीक्षा ले रही हैं। ऐसी हमें सूचना मिली है। वे बेचारी क्या जानें? वे तो बेचारी आपकी प्रीत में, आपके

प्रेम में बंधी हुई हैं। वह संयम के बारे में क्या जानें? संयम क्या है, यह उन्होंने कभी सीखा ही नहीं है। संयम की ए बी सी डी उनको मालूम नहीं है। वे सिर्फ आपके प्रेम में, आपके प्यार में हैं। उसके कारण से वे तैयार हो गईं। किसी की भावुकता का लाभ नहीं उठाना चाहिए। आज वे देखा-देखी संयम पथ पर आगे बढ़ रही हैं। कल जब कठिनाइयां आएंगी तो उन्हें सारी बातें याद आएंगी कि हमने क्या कर लिया! हम संयम पथ को खराब नहीं मानते हैं। संयम पथ अच्छा है, किंतु कब होना चाहिए। गुलाब जी, संयम पथ कब होना चाहिए? गुलाब जी चोपड़ा आप झोला संभाल रहे हो अभी से। जल्दी क्या है जाने की? संयम पथ कब होना चाहिए? (प्रत्युत्तर - जितना जल्दी हो) अच्छा, तो यह बात लिखो कागज में। यह बात कागज में लिखकर रखो। घर में कोई तैयार हो जाए तो यह वाक्य लिखा हुआ रखो। 'सहनशीलता, सहनशीलता, सहनशीलता' वह तो याद है। यह भी लिखा हुआ रखो कि दीक्षा के लिए कोई तैयार हो जाए तो जल्दी से जल्दी दीक्षा देना। एक दिन भी लेट नहीं करेंगे। अच्छी तरह से लिख रहे हो या किसी कच्चे कागज पर लिख रहे हो कि बाद में फेंक दिया।

(मदनमुनि जी म.सा. गुलाब जी से बोलते हैं कि आप लिखकर आचार्य भगवंत को दे दो) अरे! मुझे क्या देना? आप थोड़ा अपने श्रावकों पर विश्वास रखो। कागज तो कल कहीं खो जाएगा। कागजों में क्या पड़ा है? विश्वास किसका रहता है? आदमी का, इनसान का, श्रावक का विश्वास रहता है। लोहे की लकीर होती है जुबान। कहते हैं कि लोहे की लकीर है जुबान, वह बहुत महत्त्वपूर्ण है। कागजों में क्या है? कागजों का जमाना अब आ गया है। जिस समय जुबान का जमाना था, उस समय जुबानी बात पर विश्वास होता था। उस समय धंधे भी लंबे-चौड़े चलते थे। लाखों, करोड़ों, अरबों, खरबों का काम किससे हो जाता था? वह काम जुबान से हो जाता था। उसमें विश्वास होता था। आज भी विश्वास करने वाले ज्यादा हैं। सरकार माने या नहीं माने, किंतु आज भी जुबानी काम चलता है। (कुछ लोग कहते हैं - नहीं चलता है) अरे! क्या नहीं चलता है? व्यापार-धंधे में वो सारा काम, क्या बोलते हो उसको? हवाला ही बोलते हो ना? (प्रतिध्वनि - हां-हां, हवाला) हां वही, वह काम आदमी की जुबान के विश्वास पर होता है। जुबान के विश्वास के आधार पर वह चलता है। यदि लिखा हुआ होता है तो कभी कोई पकड़ ले, इसलिए लिखा हुआ नहीं होता है तो भी कहां से कहां तक काम चल जाता है? और हो

जाता है काम।

विश्वास है तो विश्व है। जिस दिन विश्व से विश्वास हट जाएगा, उस दिन विश्व नाम की कोई चीज नहीं मिलेगी। विश्वास है तो विश्व है। विश्व जब तक रहेगा तब तक विश्वास भी बना रहेगा, क्योंकि दोनों की बहुत बड़ी युति है। वे कहने लगे कि आप चाहे ऐसे कितना ही कर लो, हम आज्ञा देने वाले नहीं हैं। हम आज्ञा नहीं देंगे। जंबू कुमार सुनते जा रहे हैं और वे एक तरफा बोलते जा रहे हैं। जंबू जी सुनते जा रहे हैं। सुन लो, सुन लो, सुन लो।

सुनना, सुनना, सुनना, सुनना।
कब तक सुनना, कब तक सुनना।
जब तक जीवन, तब तक सुनना।
सुनना, सुनना, सुनना, सुनना।

सुनो। सुनने वाला जीतता है और कहने वाला हार सकता है। जंबू कुमार सुनते जा रहे हैं और वे कहते हैं कि हम ऐसे आज्ञा देने वाले नहीं हैं। हम आज्ञा नहीं दे सकते। सुन लो और स्पष्ट, अब बालक बुद्धि नहीं चलेगी। अरे! कुंवर साहब थोड़ा तो ध्यान रखो। हमारे बाल सफेद हो गए हैं और हम मृत्यु के किनारे खड़े हैं। किस समय पक्के पान खिर जाएं, कोई पता नहीं। इन धोले बालों की लाज तो रखो। आप जिस प्रकार की बातें कर रहे हो, हमारी आशाओं पर पानी फेरने की बातें हो रही हैं। हम यह भी बता देना चाहते हैं कि हम वृद्धावस्था में हैं। आज आपका काम हमारी सेवा करने का है, किंतु सेवा करने की बात तो दूर रही, आप इस प्रकार की बात कर रहे हो कि सुनकर हमारे को धक्का लगा।

कुंवर साहब, आप बात को ध्यान में लीजिए कि आपके वृद्ध माता-पिता हैं, उनको यदि सदमा लग गया तो किस समय क्या हालत हो जाए? सदमा बहुत भारी होता है। किसी को यदि सदमा लग जाए और मृत्यु हो जाए, और नहीं भी होती है तो सदमा आदमी को बहुत कष्ट देने वाला होता है। इसलिए मैं यह नहीं कह सकता कि आप दीक्षा की बात मत करें। हां, हम दीक्षा तो देंगे, किंतु पहले आप अपने कर्तव्य का निर्वाह करें। पहले अपने दायित्व को संभालें। आज आपका दायित्व माता-पिता की सेवा करना है, हमारी सेवा है, वह कार्य आप निभावें। उसके बाद आप हमें कहेंगे तो हम बड़ी खुशी-खुशी आज्ञा देंगे। कोई बात नहीं है, किंतु आप ऐसा कार्य नहीं करें कि माता-पिता को सदमा लगे। हमारे को सदमा लगे। इसलिए अभी आप इन सारे विचारों को

छोड़ें। फालतू की चर्चा अभी करनी नहीं है। इसलिए आप आराम से पधारो। व्यापार-धंधे में लगो और इन सारी बातों को गौण कर दो। फिर भी जिद रही तो हम यहीं सो जाते हैं। हमारी छाती पर आप पांव देकर निकल जाओ।

वे कहते हैं कि कुंवर साहब, इस वय में संयम लेना सोचने की बात है। भावुकता में संयम ले लेना कोई आज की या एक दो दिन की बात नहीं है। इसलिए भावुकता को छोड़कर समझदारी से काम करो। इस प्रकार से कौन कर रहे हैं? कौन कह रहे हैं? जो सास-श्वसुर उपस्थित हुए, वे अपनी बात कहते हुए जा रहे हैं। वे आगे क्या कहते हैं और जंबू कुमार क्या निर्णय करते हैं, यह समय के साथ कुछ विचार करेंगे। अभी तो वे लोग कहते जा रहे हैं। हमारे जंबू कुमार (प्रतिध्वनि- वे सुनते जा रहे हैं) सुनते जा रहे है। पहले आपको जितने तीर बरसाने हैं, जितना कुछ कहना है, जितनी बात कहनी है, कह दीजिए। इस प्रकार से वे अपनी बात कहते हुए चले जा रहे हैं। पर जम्बू कुमार की कथा का एक पाठ है। जम्बू कुमार उनको भी शान्त भावों से अपने विचारों से अवगत कराते हैं। यह प्रसंग हमारे लिए प्रेरक है कि इस प्रकार के प्रसंग आने पर भी जम्बू कुमार रुके नहीं। वे अपने विचारों पर स्थिर रहे। दृढ़ रहे। यह दृढ़ता काबिले तारीफ है।

आचार्य पूज्य गुरुदेव नानालाल जी म.सा. भी प्राय: करके ऐसा फरमाया करते थे, बार-बार फरमाया करते थे। जब भी कोई उनका गुणगान करता तो गुरुदेव यह फरमाया करते कि मैं प्रशंसा की बात नहीं, शिक्षा की बात सुनने के लिए उत्साहित रहता हूं। शिक्षा की बात हो तो कहो। ऐसी घटना भी घटी जब वे दांता पधारे। दांता में शृंगार माँ अस्वस्थ थी। लोगों ने कहा कि दर्शन देने के लिए पधारिए तो वे दर्शन देने के लिए पधारे। मांगलिक सुनाई और शृंगार माँ ने आचार्य श्री से कहा कि 'मोटा ह्वै ग्या तो फूल मत जाइजे' क्या बोलीं शृंगार माता? कि 'मोटा ह्वै ग्या तो फूल मत जाइजे' अर्थात् अहंकार में मत आना। आचार्य श्री ने कहा कि माँ जी, आपकी बात ध्यान में रखूंगा। इस प्रकार से माँ जी की बात पर उन्होंने कहा कि आपकी बात को ध्यान में रखूंगा। वैसे वे स्वयं ही साधक थे तो क्यों फूलें? जानते थे कि फूलने से क्या होना है?

अहंकार फुला देता है, किंतु शरीर में जो ताकत होनी चाहिए, वह अहंकार से नहीं आ सकती है। किसी का शरीर फूला हुआ हो सकता है, किंतु उसमें ताकत नहीं होती है। किसी का शरीर गठीला होता है, भले ही भरा हुआ नहीं

हो, किंतु उसमें ताकत होती है। पुराने लोग कहा करते थे ना कि 'मोटा ने देख ने डरनो नहीं और पतला ने देख ने...? (प्रतिध्वनि- भिड़नो नहीं)। अच्छा आप तो सब जानते हो तो फूलने का काम ही नहीं है। अहंकार फुला सकता है, किंतु ताकत नहीं दे सकता है। दूसरी तरफ आत्मसाधना ताकत देने वाली होती है। हम आत्मसाधना में लगने का प्रयत्न करें। आचार्य देव ने अपने आपको उसी में ढाला। हमने सुना, बार-बार फरमाया कि कोई शिक्षा की बात हो तो मुझे कहो।

जंबू कुमार अभी सुन रहे हैं। सास-श्वसुर सुना रहे हैं। यह घटना आगे किस रूप में करवट लेती है? हालांकि सारा कुछ पहले ही हो चुका है, किंतु हम किस रूप में सुनेंगे, यह समय के साथ पता चलेगा। आज सभा में कई भाई और बहिनें अपनी बातें बोल गए। यह जुदाई, यह विदाई यह सब चीजें होती रहती हैं। यह सब हम पहले से ही जानते थे कि जिस समय हर्ष मनाया, उस समय विदाई की कहानी साथ में लिखी जा चुकी है। ऐसा नहीं है कि यह कहानी आज ही लिखी गई। आज यह सब कुछ करना पड़ रहा है। यह पहले से फाइनल था। यह साधु का कल्प है, साधु की मर्यादा है कि चार महीने के बाद विहार करने का रहता है। फिर एक दिन भी चाहे मान करो, मनुहार करो, चाहे कितना भी कुछ करो या हाथ जोड़ो, संत रुकने वाले नहीं हैं। वे रुकने वाले नहीं हैं तो आप भी कहां रुकने वाले हैं? यहां जंबू कुमार के सास-श्वसुर वाली बात नहीं है। उन सास-श्वसुर की तरह हम भी सो जाएंगे, हमारे सीने पर से पांव रखकर निकलना है तो निकलें। चातुर्मास संपन्न होने पर तो ऐसा नहीं बोलते हैं। शेष काल में कोई बोल दे तो भले ही बोल दे। उस समय मौका होता है, उस समय भले ही बोल दे। चातुर्मास के दिन पूरे हो गए तो ऐसा नहीं कि आप नहीं जा सकते। मेरे सीने पर पांव रखकर जाना होगा। ऐसा कोई नहीं बोलता है। सबने अपनी-अपनी जो भी अच्छी बातें कही हैं, उनको स्वीकार करते हैं और जो गुण की बातें हैं, उन गुण की बातों को जिनशासन को समर्पित करते हुए विराम ले लेते हैं।

दिनांक-11.11.2019

7

दाता कर दातारी

धार तरवार नी सोहेली दोहेली...

शब्दों का अर्थ है, 'धार तरवार नी सोहेली दोहेली' तलवार की धार पर चलना आसान है, किंतु तीर्थंकर देवों की आज्ञा पर चलना, 'चउदमां जिन तणी चरण सेवा' तीर्थंकर देवों की सेवा करना, उनकी आज्ञा का अनुसरण करना बहुत ही दुष्कर है। बहुत कठिन है। बहुत-बहुत कठिन है।

क्यों कठिन है? क्योंकि जब तक मन की गुत्थियां नहीं सुलझती हैं तब तक हम तीर्थंकर देवों की शरण सेवा, भगवान के चरणों की सेवा भव्य तरीके से नहीं कर सकते हैं। उलझनें अन्यत्र नहीं हैं, हमारे भीतर ही रही हुई हैं। उन उलझनों के कारण हम तीर्थंकर देवों की शरण की सेवा का सम्यक् व यथेष्ट लाभ नहीं उठा पाते हैं। मन की गुत्थियां, मन की उलझनें यदि सुलझ जाएं तो क्षण में वैराग, क्षण में वीतरागी और क्षण में मुक्ति। कोई देर नहीं लगती है।

मरु देवी माता तत्काल मुक्ति को प्राप्त हो गई। भरत चक्रवर्ती तो अरिसा भवन में केवलज्ञानी हो गए और मन की उलझन के कारण बाहुबलि जी को 12 महीने तक खड़े रहना पड़ गया। हम समझ सकते हैं कि थोड़ी-सी उलझन ही हमें रुकावट पैदा करने वाली हो जाती है। वह हमें रोकने वाली हो जाती है। वह हमें मुक्ति को प्राप्त करने में बाधा रूप होकर खड़ी हो जाती है।

हम पूर्व वक्ताओं से बहुत सारी बातें सुन गए। उसमें एक बात उभर कर आई, वह समय था, वह समय था, सब कुछ था। यह हमें सीख देता है, समझ देता है कि 'समय बलवान है', समय बड़ा बलवान है। किसी के थामे थमता नहीं है, रुकता नहीं है। इसकी गति निरंतर बनी रहती है और बनी रहेगी। जो इसके साथ चल गया, वह बढ़ जाएगा और जो चूक गया, वह रुक जाएगा। वह आगे बढ़ने में समर्थ नहीं हो पाएगा, इसलिए समय की साधना करने की बात

कही गई है।

भगवान महावीर कहते हैं, 'खणं जाणाहि पंडिए' अर्थात् पंडित पुरुष क्षण को, अवसर को जानने वाला होता है। जो समय को जान लेता है, वह समय के साथ कदम-ताल मिलाते हुए आगे बढ़ जाता है। जीवन की ऊंचाइयों को छू लेता है। चातुर्मास में किसने क्या किया, यह लेखा-जोखा मुझे नहीं रखना है। यह स्वयं का लेखा-जोखा है। चातुर्मासिक पर्व में सांझ को प्रतिक्रमण करना है, उससे पहले हमें अवश्य अपने मन रूपी आईने में झांककर देखना है कि मैंने अपने जीवन को कितना बदला? सुनना एक रूटीन है। हम सुन लेते हैं, किंतु अपने भीतर की उलझनों को तोड़ने के लिए हमारी तैयारी कम हो पाती है।

औपचारिकताएं हम बहुत सारी निभा लेते हैं, किंतु औपचारिकताओं से मुक्ति नहीं मिलेगी। यथार्थ में हमारे कदम आगे बढ़ेंगे तो ही हमें मुक्ति प्राप्त हो पाएगी। यथार्थ, यानी जो हम जाने हैं, जो सीखा-समझा है, उसमें जीयें। यदि ममत्व रुलाने वाला है तो उसका छेदन हम कैसे करें? समता भाव में हम कैसे अपने आपको अवस्थित रखें? मन की उलझन हमें समता में नहीं रहने देगी, वह ऊहापोह में ले जाएगी और हमारे भीतर द्वंद्व पैदा कर देगी। दुविधाएं खड़ी कर देगी। यदि उन द्वंद्वों और दुविधाओं को हम दूर कर सकें तो हम समता में रहना सीख सकते हैं। जहां ऊहापोह शांत हो जाती है, मन में किसी प्रकार की कोई ऊहापोह नहीं, कोई शिकायत नहीं, कोई प्रतिक्रिया नहीं, उस अवस्था को हम समता का स्वरूप कहते हैं और वह समता का रूप है।

चातुर्मास का समय व्यतीत हुआ और चातुर्मास के पश्चात् साधु-साध्विवृन्द को अपनी मर्यादा के अनुसार, तीर्थंकर देवों की आज्ञाओं के अनुसार वहां से विहार करना होता है और वे विहार करते हैं। आपको विहार कराना दुरूह लग रहा है, किंतु अन्तर् दिल से आपको कोई दुरूह नहीं लग रहा है, क्योंकि आप जानते है कि यह रूटीन है। यह तो होना ही है। कल ही मैंने कहा था कि कोई सामने सोकर यह नहीं कहेगा कि म.सा. आप हमें छोड़कर नहीं जा सकते हो। आपको जाना है तो हमारी छाती पर पैर रखकर जाना होगा। बाकी दिनों में बोल भी दें, अलग बात है, किंतु चातुर्मासिक विहार के लिए ऐसी स्थिति नहीं आती है।

विदाई के विषय में, विहार के विषय में नाना गुरु ने नोखा चातुर्मास के समय एक बात बताई थी। उसको कुछ पंक्ति के भीतर रखा गया है।

चातुर्मास अब पूर्ण हुआ है, मुनिगण करे विहार।

रखना मित्रों धर्म से प्यार, रखना मित्रों धर्म से प्यार।
सुना आज तक जितना तुमने, उस पर भाव विचार।। रखना....
प्यार हार से हार विहारा, पर्युपासना ने उसे सहारा।
रत्न त्रय में हार निहारा, लगता है वह अणगारा।
हार विहार उपहार समझ लो, करते मंगलाचार।। रखना....

आचार्य देव ने बहुत स्पष्ट शब्दों में फरमाया था। शब्दावली वही है ऐसा तो नहीं कहूंगा, किंतु वे भाव आज भी कर्णकुहरों में गूंज रहे हैं कि लोगों को हार से प्यार है। हार मंच पर पहना दे तो छाती गर्म हो जाती है। गर्म होती है या ठंडी होती है? (प्रतिध्वनि - ठंडी होगी) अरे! ठंडी हो जाएगी तो ठंडी होने के बाद कौन रखेगा? मन खुश हो जाता है। मन में बड़ी संतुष्टि अनुभूत होती है कि हार मिल गया। अटल बिहारी वाजपेयी, जो किसी समय भारत के प्रधानमंत्री रहे थे, वे एक बार जयपुर आए और मंच पर उनको हारों से लाद दिया गया तो उन्होंने सारे हार निकाले और कहा कि मैं यहां हारने के लिए नहीं आया हूं, जीतने के लिए आया हूं। हम हारने के लिए तैयार हैं या जीतने के लिए तैयार हैं? (प्रतिध्वनि - जीतने के लिए) जीतने के लिए तैयार हो तो फिर हमें हार की मुग्धता पर मोहित नहीं होना है। हार पहनने से हमें हार मिलेगी और हार का त्याग करने से हमें जीत मिलेगी। ऐसी स्थिति में हम हारने को तैयार हैं। हार मिल जाए तो हारने में भी मौज है। मन में जीत के सपने संजोते हैं और हारने के लिए हम अपनी क्रियाएं करते रहते हैं।

आचार्य देव ने फरमाया था कि विहार, हार देने वाला नहीं होता है। 'वि' का अर्थ होता है, विशेष। सामान्य 'हार', आदमी को मोहित कर देता है, मुग्ध बना देता है। वह हार जीवन में हार दिला सकता है, किंतु विहार में वह विशिष्ट 'हार' है, रत्नों का 'हार' है। सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन, सम्यक् चारित्र रूपी रत्न जिसमें जड़े हुए हैं, ऐसे रत्न त्रय का हार जब गले में पहनने की बात होती है, गले में पहनने का मतलब जीवन जीने की बात होती है, तब वह विशिष्ट हार सबको मोहित करने वाला बन जाता है। सब उसके पीछे अनुरागी बन जाते हैं। संतों से आपका क्या संबंध है? संतों से आपका क्या रिलेशन है? कहीं दूर-दराज से कोई रिश्ता नहीं होगा, किंतु रत्न त्रय का हार जो उन्होंने पहन रखा है, उसके कारण आप उनके प्रति अनुरागी बने हो। यदि यह बात आपको सच लग रही हो तो हमें भी रत्न त्रय का हार पहनने का लक्ष्य बनाना चाहिए,

जितनी हमारी क्षमता हो।

आज यहां पर कई भाव खड़े हुए हैं। परसों एक विषय चला था। शायद परसों की बात होगी। मैंने मनन से कहा कि दादा के मन में विचार हो रहा है कि अभी खड़ा हो जाऊं। पूछ लेना भले ही। कल मदनलाल जी ने मनन से कहा था कि लगता था अब खड़ा हो जाऊं। उसने पूछा या नहीं पूछा, मुझे नहीं पता और आज उन्होंने अपनी भावना व्यक्त कर दी है। भाई चिप्पड़ जी ने भाव व्यक्त कर दिए। किशोर जी सांखला ने कहा कि साथ रहे। अब देखते हैं कि साथ कौन छोड़ता है?

हमारी भावनाएं बलवती होनी चाहिए। मैंने परसों ही कहा था कि कइयों के भीतर ऐसा हो रहा है कि अभी खड़ा हो जाऊं, अभी खड़ा हो जाऊं। ऐसा लग रहा है कि ये खड़े हुए, ये खड़े हुए और कइयों के विचार कानों में आते हैं कि आपने नाम लिया होता तो खड़े हो जाते। नाम लेने में थोड़ा संकोच करने लगा हूं। श्री श्रीचंद जी म.सा. को दीक्षा दी थी, श्री श्रीचंद जी कोठारी जी को दीक्षा दी, उसके बाद थोड़ा विचार हो गया कि गृहस्थों के कई काम रहते हैं और अमूमन बैंक खाते वगैरह चलते रहते हैं। जमीन-जायदाद किसके नाम है, कभी-कभी बाद में थोड़ी समस्याएं खड़ी हो जाती हैं। इभ्य मुनि जी म.सा. जब रतलाम में खड़े हुए तो मैंने स्पष्ट कह दिया कि कुछ लेन-देन तो नहीं ना? तो कहा कि मेरा कुछ नहीं है। इसलिए सभा में खड़े करने की बात होती नहीं है। फिर भी कभी-कभी हो जाती है। भावनाएं जो हमारे भीतर रत्न त्रय के प्रति, ज्ञान के प्रति, दर्शन के प्रति, चारित्र के प्रति आलोड़ित हो रही हैं, वे शुभ संकेत हैं, अच्छा संकेत हैं।

यहां पर चातुर्मास में उपलब्धियां गिनाई जाने लगीं कि चातुर्मास की यह उपलब्धि रही, यह उपलब्धि रही, किंतु आज तक हम सही रूप से उपलब्धियों का अंकन करने में समर्थ नहीं हो पाए हैं। हम सब तात्कालिक उपलब्धियों की बातें कर लेते हैं। वह तो आईं और गईं। दीर्घकालिक उपलब्धि सच्ची उपलब्धि होती है और उसके लिए....

समता को न कभी भुलाना, ममता को न पास बुलाना।
समता अपनी खूब बढ़ाना, समता को तुम भूल न जाना।
थानक के मानक को कायम, रखना है हर बार।। रखना.....

जो सदाबहार रहे, वह होती है फुलवारी। सदाबहार नदी, वह नदी होती

है। बरसाती नदियों का अस्तित्व थोड़ा-सा होता है। हमारा जीवन फुलवारी के रूप में खिला रहे, इसके लिए जरूरी है कि हम स्थानक के मानक को बनाए रखें। स्थानक का मानक क्या है? अधिकतम उपस्थिति। यह नहीं कि मैं नहीं जाऊंगा तो क्या, वह तो है। वो कहेगा कि मैं नहीं जाऊं तो क्या हुआ, वह तो है। वह तो है। मैं वहां नहीं हूं तो क्या हुआ, वह तो है।

एक बार एक राजा ने विचार किया कि तालाब खुदवाना है। तालाब खुदकर तैयार हो गया। अब उसका उद्घाटन करना है। इस पर राजा का मन बना कि इसका उद्घाटन दूध से करवाया जाए। इसके लिए अनाउंस हुआ कि सभी लोग, हर घर से एक लोटा दूध लाकर उस तालाब में डालेंगे, किंतु नकारात्मक सोच रखने वाले बहुत थे कि मैं दूध नहीं डालूं तो क्या फर्क पड़ेगा, बाकी लोग तो ले जा ही रहे हैं। उन सब के दूध में मेरा एक लोटा पानी चल जाएगा। इस सोच का असर सारे लोगों पर पड़ा। सभी लोग उसी सोच में चले गये कि मैं अगर दूध लेकर नहीं जाऊंगा तो क्या होगा? मेरा एक लोटा पानी, इतने सारे दूध में चल जाएगा। सभी ने ऐसा ही सोच कर उसमें एक-एक लोटा पानी लाकर डाल दिया। सुबह राजा ने देखा तो उसमें पानी ही पानी मिला। दूध का एक अंश भी उस तालाब में नहीं आया। यदि वैसी स्थिति बनती है तो चातुर्मास की उपलब्धि क्या गिनी जाएगी? चातुर्मास की उपलब्धि चार महीने संतों के रहते हुए मालूम नहीं पड़ती है। चार महीने के बाद धर्म-ध्यान की, ज्ञान-आराधना की, तप-साधना की निरंतरता रहे। चातुर्मास के बाद भी निरंतरता बनी रहती है तो उपलब्धि होती है। वह चातुर्मास अच्छा गिना जाएगा।

बरसाती मेढक की तरह, हम बहुत उपस्थित हुए। बरसाती पानी की तरह हम बहुत बरसे और बरसाती नदी की तरह हम भी उफान में आ गए। हमने पंडाल को भर दिया। पंडाल को बढ़ाना पड़ गया। यह केवल एकमात्र बरसाती बात हुई, किंतु सदाबहार स्थिति, वह फुलवारी होती है। उसी को भक्ति कहा जाता है। वह यदि सदा महकती रहे और उसमें सदा पुष्प खिले रहें तो ही उसकी शोभा है। वैसे ही चातुर्मास की उपलब्धि, चातुर्मास के बाद भी समता भवन, धर्म स्थानक आबाद रहेंगे, सदाबहार रहेंगे तो समझी जानी चाहिए। हमारे पास समय हो तो एक सामायिक करेंगे, दो सामायिक करेंगे। तीन, चार, पांच, सात, दस कितनी भी सामायिक करेंगे। यदि हमारे पास समय नहीं हो तो भले ही पांच

नवकार मंत्र भी गिनेंगे, पर एक बार पेढी पर आना है। पैर धरना है, बैठना है। शांति से पांच नवकार मंत्र गिनकर भले ही चले जाएं, किंतु एक बार हमारी उपस्थिति होनी चाहिए। इसके लिए कौन-कौन तैयार है? पांच मिनट भी आओ, दस मिनट के लिए आओ। चाहे सामायिक करने आओ, पर हमारी उपस्थिति एक बार जरूर होनी चाहिए। खड़े हो जाओ, मालूम तो पड़ेगा। अपनी सुविधा देखकर करना भाई। प्रेरणा करने वाले लोग बहुत हैं, किंतु हमको प्रवाह में नहीं बहना है। हम पहले प्रतिज्ञा करें, बाद में पश्चात्ताप करें, वैसा काम नहीं करना। इधर बहिनों की संख्या कम क्यों है? एक नियम चाहे दिन हो, चाहे रात। सुबह हो चाहे शाम, दिन हो या रात। जिसको जैसी फुर्सत मिले, एक बार धर्म स्थान में हमको आना है, आना है और आना है।

वीतराग हैं देव हमारे, संत सुज्ञानी गुरुवर प्यारे।
सुख में दुःख में साथ हमारे, भवजल के तारण हारे।
तारण हारे जग उजियारे, रहे सदा आधार।

देव, गुरु, धर्म का हमें सदा आधार रहना चाहिए। अन्य किसी के आधार की हमें जरूरत नहीं। किसका आधार चाहिए? देव, गुरु और धर्म का आधार चाहिए।

देव गुरु धर्म तत्त्व, तीन ये महान हैं।
इन्हें पहचाने वह, सच्चा बुद्धिमान् है।

वस्तुतः देव, गुरु और धर्म हमारे आधारभूत हैं। हमारी साधना के, हमारे जीवन के, हमारे अध्यात्म के आधार हैं। हमें अन्य किसी का कोई आधार नहीं लेना। जड़ पुद्गल हमारे आधारभूत नहीं हो सकते। देव, गुरु, धर्म की शरण लेना, उन्हीं का आधार लेकर हमें धर्म-साधना की दिशा में अग्रसर होना चाहिए।

मुझे याद आ रहे हैं जवाहरलाल जी मुणोत, अमरावती वाले। जुझारू व्यक्तित्व। स्पष्ट बोलने में तत्पर। एक रात बैतूल में गुरुदेव के वहां पहुंच गए। साथ में एक और मित्र था। मित्र के द्वारा प्रश्न चला। फिर वह मित्र तो ज्यादा नहीं बोला, किंतु जवाहरलाल जी मुणोत ज्यादा बोलने लग गए। बोलते-बोलते बहुत उत्तेजना में, बहुत आक्रोश में भी आ गए। गुरुदेव शांति से समझाते रहे। माइक का विषय था। वे किसी भी हालत में सुनने के मूड में नहीं थे, समझ लो। प्रश्नोत्तर पूर्ण हुआ और वे अमरावती की ओर चले गए। दूसरे दिन सुबह वापस आ गए तो आचार्य देव ने कहा कि मुणोत जी और कुछ प्रश्न है

क्या? तो कहा, गुरुदेव मैं क्या बोल गया? पता नहीं। मेरी मति भ्रष्ट हो गई।

शब्दावली नहीं, मैं भाव बोल रहा हूं। उन्होंने कहा कि मैं यहां से चला तो गया, रास्ते में कार में बैठा हुआ जा रहा था, उस समय मन में बड़ी ग्लानि पैदा हुई। मैंने एक सच्चे संत की आशातना कर दी, अवज्ञा कर दी और फिर मैं आप पर विचार करने लगा तो मुझे लगा कि वाकई में 36 गुण गुरुदेव में मौजूद हैं। मैं कितना उग्र हो गया और आप उग्र नहीं हुए। मेरी टीस जरूर है। आप श्रमण संघ में नहीं रहे, इसकी मुझे पीड़ा है किंतु गुरुदेव, यदि असलियत आप जानना चाहो तो हमारे सपनों का श्रमण संघ आपके समुदाय में देख रहा हूं। हम वैसा ही श्रमण संघ चाह रहे थे, जैसे श्रमण संघ की हमने कल्पना की थी। मैं आपके सान्निध्य में उन साधुओं को देखता हूं, उनकी चर्या को देखता हूं तो सोचता हूं काश! यह दृश्य श्रमण संघ में देख पाता। इस प्रकार के भाव उनके उद्भूत हुए।

आप विचार करें। मैं पहले बोल ही गया कि ज्ञान, दर्शन, चारित्र का विषय, हार जिनके जीवन में होगा, भले ही कोई कितनी भी शत्रुता रखे, उनके दिल में कहीं न कहीं वह स्थान होगा कि मैं भी कुछ करूं। है तो जो चीज है, वही है। सत्य को कभी झुठलाया नहीं जा सकता और सूर्य को कभी दीपक दिखलाया नहीं जा सकता। आज हम सौभाग्यशाली हैं कि हमारे पूर्वाचार्यों ने हमें ऐसी शिक्षा दी और जिनवाणी का बोध दिया। आचार्य श्री गणेशलाल जी म.सा. श्रमण संघ के सर्वमान्य उपाचार्य पद पर थे। कहने को उपाचार्य थे, किंतु उनको संघ संचालन के सारे अधिकार थे। उन्होंने संघ को सही दिशा में ले जाने का भरसक प्रयत्न किया, किंतु खेमेबाजी के कारण परिणाम ढाक के तीन पात रहे। सही दिशा में चलने के बजाय हालात दिनों दिन बिगड़ रहे थे। कुछ ऐसे ही प्रसंग बने जो साधु जीवन को लांछित करने वाले थे। उसकी सम्यक् व्यवस्था की गई। लेकिन ग्रुपिंग के कारण व्यवस्था को दरकिनार करते हुए लांछित स्थितियों का पोषण होने लगा तो उन्होंने संयम सुरक्षार्थ कार्रवाई की। वृद्धावस्था में इतनी हिम्मत करना उन जैसे आचार्य के लिए ही संभव था, ऐसा कह सकते हैं। उनके उस क्रांतिकारी कर्म के प्रति मंदिरमार्गी समाज से निकलने वाला एक पत्र, जो मुंबई से निकलता है, उसने अपने संपादकीय में या पत्र में लिखा कि हमने आचार्य गणेशलाल जी म.सा. को नहीं देखा। उनको सुना नहीं है, किंतु ऐसा कौनसा ज्ञान हो गया कि उन्होंने जिन शासन की सुरक्षा के लिए क्रांतिकारी कदम उठाया। आज हम सुख से, चैन से, आराम से, साधना के क्षेत्र में अपने

आपमें गतिशील हैं।

मैं यह चाहूंगा कि साधना का अमृत हमारे में सूखे नहीं। साधना के अमृत से हमारा दिल भरा रहना चाहिए। उसमें वात्सल्य, धर्म प्रेम, स्वधर्मी प्रेम इतना लबालब रहना चाहिए कि हम एक स्वधर्मी को देखकर प्रफुलित हो जाएं, हमारा हृदय विकसित हो जाए। ऐसा नहीं हो कि हम एक-दूसरे को देखकर दूसरी तरफ मुंह कर लें। यदि ऐसी स्थिति बनती है तो वह हमारे जीवन के लिए हितकर नहीं होगी। न हमारे जीवन के लिए हितकर होगी और न ही हमारे समाज के लिए हितकर होगी। हम यदि सच्चे मायने में अपने गुरुजनों की, उनके शब्दों की, उनके भावों की आराधना करना चाहते हैं तो हमें इसके लिए कटिबद्ध रहना चाहिए, तत्पर रहना चाहिए। हमारा दिल उस अमृत से, वात्सल्य से, धर्म प्रेम से ओत-प्रोत रहना चाहिए। भरा रहना चाहिए। सराबोर रहना चाहिए। यह तब होगा, जब हम धर्म में गहरे उतरेंगे। गहराई में उतरेंगे।

'जिन खोजा तिन पाइया, गहरे पानी पैठ।' गहरे पानी में रत्न उपलब्ध होंगे। गहरे पानी में जब उतरेंगे तो ही मोती, रत्न मिलेंगे। वैसे ही हम धर्म के क्षेत्र में गहरे उतरेंगे तो उसमें रहे हुए मोती, रत्न हमें भी प्राप्त हो पायेंगे। हमें मिल पायेंगे।

चातुर्मास में हम साधु-साध्वियों ने यहां का अन्न लिया, जल लिया, सेवा ली, भक्ति ली, श्रद्धा ली। हम कितना दे पाए, यह तो मैं नहीं कह सकता हूं और कौन कितना ले पाया, यह भी मैं नहीं कह सकता हूं, किंतु हमने अवश्यमेव इन चार महीनों में अपने ज्ञान, दर्शन और चारित्र की आराधना यहां पर की और संघ ने हमें सुंदर वातावरण दिया। हमें अनुकूल वातावरण दिया। हमने कभी व्याख्यान दिया तो भला, नहीं दिया तो भला। कभी मांगलिक हुई तो भली, नहीं हुई तो भली। कभी हमने प्रार्थना कराई या नहीं कराई। कभी ज्ञान चर्चा हुई, कभी नहीं हुई। कभी प्रश्नोत्तरी में बैठे, कभी नहीं बैठे, कभी भी संघ के सदस्यों ने मुझसे शिकायत नहीं की। जहां तक मैं जानता हूं मेरे कानों में शिकायत नहीं आयी। हमारी यह थोड़ी कमी है कि हम जनता के बीच में कम ही बैठ पाते हैं और उनसे रू-बरू कम ही हो पाते हैं। यह चाहे हमारी वृत्ति समझ लें, चाहे कमी समझ लें।

फिर भी जोधपुर संघ ने हम साधु-साध्वियों को निभाने का पूरा प्रयत्न किया। वैसे मेरी वृत्ति रही है कि किसी से अपेक्षा रखना नहीं। ज्यादा अपेक्षा

रखता भी नहीं हूं। मुझे रखने की आवश्यकता ही नहीं है, क्योंकि मेरी अपेक्षाएं स्वत: ही पूरी हो जाती हैं। अपेक्षा करने की जरूरत कहां पड़ी? मुझे अपेक्षा करने की जरूरत ही नहीं पड़ती। जैसा आदेश-निर्देश हो, उसके लिए इन संत-सती वर्याओं की सदा तत्परता रहती है। मुंह से शब्द निकलना चाहिए, इनके चरण विन्यास होने शुरू हो जाते हैं। ऐसे साधु-साध्वी परिवार को प्राप्त करके मैं अपने आपको सौभाग्यशाली मानता हूं और मानता हूं कि आचार्य देवों का यह वरदहस्त और आशीर्वाद है। उसके कारण ही यह सुकृपा है, सुपरिणाम है, सुफल है। फिर भी इनकी अपेक्षाओं पर मैं खरा कम उतर पाता हूं। बहुत बार सेवा-शिक्षा की बात भी सामने आई, किंतु मैं बाइपास कर देता। फिर भी ध्येय, संतोष और श्रद्धा भक्ति, समर्पणा। मेरे निमित्त से साधु-साध्वियों को कहीं पर भी किसी प्रकार से ठेस भी लगी होगी तो मैं आज के प्रसंग से यह चाहता हूं कि हम प्रतिक्रमण के पहले वह सारी ठेस मिटाकर, अपने दिल के घाव को भर लें। ये मुझे क्षमा प्रदान करें।

श्रावक-श्राविकाएं, स्थानीय और बाहर के लोग, मैं अपनी वृत्ति को बहुत अच्छी तरह जानता हूं। जैसी आपकी श्रद्धा, समर्पणा है, वैसा आउटपुट आपको नहीं दे पाता। फिर भी आप अपनी श्रद्धा बनाए रखते हैं। ये महापुरुषों का उपकार है कि उन्होंने हमारे भीतर श्रद्धा कूट-कूट कर भरी है। नाना गुरु ने संघ को संभालने के बाद एक प्रकार से उजड़े हुए चमन को खिलाया था। आज हमें कोई दिक्कत नहीं पड़ रही है। हम खिले हुए उद्यान में बैठे हुए हैं। उस समय नाना गुरु को कितना परिश्रम करना पड़ा! उसी का परिणाम है कि आज हमारी जड़ें बड़ी गहरी हैं। हमारे द्वारा आपकी अनदेखी भी हुई, किंतु आप अनदेखा नहीं करते। यह श्रद्धा का बल है, यह समर्पणा का बल है।

मेरे निमित्त से किन्हीं भी भाइयों के, बहिनों के, दर्शनार्थियों के किसी के भी दिल में कोई भी ठेस लगी हो तो मैं चाहूंगा कि वे उदार दिल बनकर, क्योंकि श्रावक का दिल सदा उदार होता है, उदार हृदय होता है, वे उदार बनकर, वे ये मानें कि संतान माता-पिता के पेट पर लात मार दिया करती है, फिर भी माता-पिता उसको प्रेम ही करते हैं, उसको प्यार ही करते हैं। वैसे ही हमारे द्वारा कुछ भी ऐसी कोई भी स्थिति आपके साथ बनी हो, आप सभी उदार दिल से क्षमा करेंगे। एक कविता की पंक्ति का उच्चारण कर देता हूँ, जो उत्क्रांति के लिए बनाई थी किंतु एक ही रत्न अंगूठी में भी जड़ा जा सकता है, हार में भी जड़ा जा

सकता है, चूड़ा-मणि में भी जड़ा जा सकता है।

दाता कर दातारी, तेरी खिले पुण्य फुलवारी।
तू है दाता मैं हूं भिक्षुक, कर मन से तैयारी।
दाता कर दातारी...

क्या चाहिए मुझे? क्या चाहिए मुझे? आप विदाई क्या दे रहे हो? कौनसा तिलक लगाकर विदाई दे रहे हो? केसर, कुमकुम, चंदन? कैसे तिलक से आप विदाई करना चाहोगे? कौनसा तिलक लगाओगे, यह आपके ऊपर है। मेरी बात बहुत स्पष्ट है कि प्रसंग जब समुदाय का होता है, विशेष प्रसंग सामने आते हैं, तभी हमारी परीक्षा होती है। सामान्यतया तो कोई क्या हमारी परीक्षा करेगा? और क्या परीक्षा होगी? किंतु जब विशेष प्रसंग आते हैं, उस समय हमारी परीक्षा होती है कि हम परस्पर स्नेह, वात्सल्य के भाव को कितना बनाए रखने में समर्थ होते हैं? घर का बच्चा लात मार दे, दाढ़ी और मूंछ के बाल खींच ले तो भी उसे सीने से लगा लेते हैं। उसे प्यार ही करते हैं।

वैसे ही हमारे पूरे संघ के साथ व्यवहार होना चाहिए। मैं चाहूंगा कि आप सभी दातार हैं। दातारी आपके भीतर रही हुई है। आज चातुर्मास के निमित्त से किसी के भी दिल में कोई उतार-चढ़ाव की बात बनी हो, ये कुछ भी नहीं है, केवल हमारे मन की बातें हैं। मैंने एक दिन पहले भी कहा था कि अहंकार होता है तो चोट लगती है। हमने कुछ अपेक्षा कर ली और अपेक्षाएं पूरी नहीं होती हैं तो हमें उपेक्षा लगती है। हम उपेक्षा और अपेक्षा के भावों से ऊपर हैं। इन भावों में मत उलझो, क्योंकि उपेक्षा तभी होती है जब हमारे भीतर अपेक्षाएं होती हैं। हम अपेक्षाओं से बहुत ऊंचे उठें, बहुत ऊंचे उठें।

आप श्रावक हैं, आप तीर्थंकर देवों के पुजारी हैं। आप आचार्यश्री हुक्मीचंद जी म.सा. और 'हु शि उ चौ श्री ज ग नाना' ऐसे गुरुओं के पुजारी रहे हैं। क्या किसी अपेक्षा को लेकर अपने आप में उपेक्षा की अनुभूति करेंगे? मैं नहीं मानता। कभी हमारे द्वारा ऐसी कोई बात हो भी गई है तो मैं चाहूंगा कि ऐसी प्रेम और स्नेह की गंगा प्रवाहित हो जाए, किसी प्रकार का कलमस ही हमारे दिल में नहीं रहे। ऐसी दातारी रखना मैं साधु हूं, मैं भिक्षुक हूं। मैं तो याचना करने में शर्म नहीं करता। मैं आपसे याचना करता हूं। मेरा कटोरा, मेरा पातरा आप अवश्य भरेंगे। ऐसा नहीं हो कि मेरा पातरा रीता रह जाए। हम भिक्षुक हैं, हम विहार करने वाले संत हैं। आपका जो भी कलमस उसमें आएगा, कहीं पर

निर्जन जगह देखकर उसको परठ देंगे। उनका निबटारा हो जाएगा। उसकी चिंता मत करना, किंतु आपका प्यार, आपका स्नेह, आपका भाईचारा, आपका श्रावकत्व सुरक्षित रहे, यह मैं अवश्य चाहूंगा। इसलिए एक बार फिर बोल देते हैं।

दाता कर दातारी, तेरी खिले पुण्य फुलवारी।
तू है दाता मैं हूं भिक्षुक, कर मन से तैयारी।
दाता कर दातारी, दाता कर दातारी।
दाता कर दातारी, दाता कर दातारी।।

मैं पूरा विश्वास लेकर चलता हूं। मुझे अपने श्रावकों पर पूरा विश्वास है, पूरा भरोसा है। घर में चार बरतन होते हैं, वे भी कभी खड़खड़ा जाते हैं। वह कोई बड़ी बात नहीं है, फिर भी वे उसी स्थान पर रहते हैं। हो सकता है कि हमारे भीतर भी कुछ खड़खड़ाहट हो गई हो, किंतु हम उन सारी बातों को भूलकर ज्ञान, दर्शन, चारित्र के क्षेत्र में संघ अभ्युत्थान में अपनी निरंतरता बनाए रखेंगे। अपनी गतिशीलता बनाए रखेंगे। हमारी गतिशीलता में कहीं पर भी द्वंद्व नहीं आएगा। कहीं अवरोध पैदा नहीं होगा। कहीं व्यवधान पैदा नहीं होगा। ऐसी हमारी तैयारी होनी चाहिए। प्रत्येक श्रावक-श्राविका की तैयारी होनी चाहिए। प्रत्येक भाई-बहिन की वैसी तैयारी होनी चाहिए।

मैं ऐसी आशा और विश्वास के साथ यहां जोधपुर से विहार करने की बात करता हूं। साधु की मर्यादाएं आप जान ही रहे हैं। साधु की जो मर्यादा है, वह मर्यादा पालने की है और विदाई की बात भी गुरुदेव ने बताई थी कि विशेष रूप से दायित्व का निर्वाह करना। विदाई इसलिए कठिन है, क्योंकि आदमी ईमानदारी से विश्वासपूर्वक दायित्व का निर्वाह करता नहीं है। 'वि' यानी विशेष रूप से 'दा' यानी दायित्व का निर्वाह और 'ई' यानी ईमानदारी से। विशेष रूप से विश्वासपूर्वक दायित्व का निर्वाह करना विदाई देना है। आप सोचें कि दिल से विदाई देनी है तो आप ईमानदारी से अपने कर्तव्य और दायित्व का पालन करने में समर्थ रहेंगे। विश्वास महत्त्वपूर्ण है। उसी विश्वास की बात पर प्रभव चोर, उसके साथी और जम्बू कुमार के माता-पिता, पत्नियां, सास-श्वसुर जम्बू कुमार के साथ दीक्षित हो जाते हैं; वह प्रसंग भी बड़ा मनोरम है। मन को, हृदय को आनन्द देने वाला है। उसकी आज भी कुछ चर्चा कर लेते हैं।

जय-जय सब बोलो, त्यागी वैरागी जंबू राज की।

जंबू कुमार के सास-श्वसुर ने कहा कि अब आप नादान नहीं हैं,

बालक नहीं हैं। जंबू कुमार ने उनका उत्तर देते हुए कहा कि तात्! मेरी बाल बुद्धि तो तब थी, जब मैं जड़-चेतन का भेद नहीं समझ रहा था। उस समय नादान था, वह मेरी बाल बुद्धि थी। अब मेरी बाल बुद्धि नहीं है। जिस बुद्धि में जड़-चेतन का भेद ज्ञात हो जाए, जड़ भिन्न है, चेतन भिन्न है, यह ज्ञान जिसकी बुद्धि में समझ आ जाए, वह बाल बुद्धि नहीं होती। यह बात मेरी समझ में आ गई, इसलिए मुझे कोई खेद नहीं है। मैं जिस रास्ते पर चल रहा हूं, मैं उसको एकदम सही समझ रहा हूं। मेरे मन में कोई खिन्नता नहीं है, कोई खेद नहीं है।

आपने दीक्षा को उत्तम माना। आपने कहा कि हम कहते हैं कि दीक्षा अच्छी चीज है। दीक्षा लेने की कोई मनाही नहीं है। जो काम उत्तम है तो शुभस्य शीघ्रम्। उत्तम काम को सबसे पहले करना चाहिए। जब रावण मृत्यु शय्या पर पड़ा हुआ था तो राम ने लक्ष्मण से कहा कि जाओ भाई, रावण से नीति की शिक्षा लो। पहली बार तो रावण ने फटकार दिया, क्योंकि वे सिर की तरफ जाकर खड़े हुए। दूसरी बार पैर की तरफ जाकर खड़े हुए और उन्होंने विनय से शिक्षा मांगी तब रावण ने कहा कि कोई भी शुभ संकल्प मन में आ जाए तो उसको संपन्न करने में विलंब नहीं करना। 'शुभस्य शीघ्रम्', शुभ कार्य को जल्दी से जल्दी निबटा लेना और कोई भी बुरा विचार मन में आवे तो उसको जितना धकेल सको, जितना टाल सको उसको टालते हुए चले जाना। उसको हटाने की कोशिश में रहना, उसे टालते हुए रहना। जितना बन सके उसको टालने का प्रयत्न करना चाहिए।

यही बात जंबू कुमार ने कही कि आप दीक्षा को उत्तम समझ रहे हैं तो उत्तम कार्य करने में लाज काहे की? मैं दीक्षा ले रहा हूं तो मुझे शर्म किस बात की? क्योंकि लज्जा और शर्म की बात ही नहीं है। यदि मैं जुआ, मांस, शराब आदि में जाता तो आपको लज्जा होती। उस समय मुझे लज्जा आती या नहीं आती, किंतु आपको लज्जा आती। मैं यदि दीक्षा ले रहा हूं तो न आपको लज्जा आनी चाहिए और न ही मन में यह विचार होना चाहिए कि हमारे धोले में धूल पड़ जाएगी। क्यों धोले में धूल पड़ जाएगी? क्यों आपको नीचा देखना पड़ेगा? आप तो सिर ऊंचा करके देख सकते हो। आपका बेटा, आपका जंवाई दीक्षा लेने जा रहा है, कोई गलत कार्य करने के लिए नहीं जा रहा है।

इस प्रकार से उन्होंने बहुत सारी बातें बताईं। आपने कहा कि मैं माता-पिता की सेवा करूं। अनंत जन्मों में, अनंत माता-पिता हुए हैं। इस जन्म में ही

मेरे सिर पर कितने लोगों का उपकार है? कितने लोगों का उपकार है? हम कहते हैं कि माता का रज और पिता का वीर्य, उससे शरीर का निर्माण हुआ है। उनका उपकार हुआ या नहीं हुआ? (प्रतिध्वनि - हुआ) विजय भाई, किसका उपकार हुआ? (प्रतिध्वनि - माता-पिता का) और उनके भी माता-पिता का रज और वीर्य उनके शरीर में था या नहीं था? वह हमारे भीतर आया या नहीं आया? (प्रतिध्वनि- आया) उनके माता-पिता का, वह भी अनुकृति हुई या नहीं हुई? ऐसे जानें तो कितनी पीढ़ियों का उपकार हमारे पर रहा है?

आज के हमारे माता-पिता हमको सामने दीख रहे हैं और उनके माता-पिता यानी दादा-दादी, उनका भी उपकार है या नहीं है इस शरीर के लिए? माता-पिता का शरीर उनसे निर्मित है, उस शरीर से हमारा शरीर निर्मित है तो उस शरीर का भी हमारे भीतर अंश आया या नहीं आया? (प्रतिध्वनि - आया) और वह आज कहां है? उन माता-पिताओं की रक्षा के लिए क्या उपाय है? इतना ही नहीं, बाकी उन सारे माता-पिता की शृंखला के उपकारों का हनन करते हैं तो कैसे ठीक लगेगा? क्या यह सही हो पाएगा? मैंने आपको महेश दत्त की कहानी एक बार पहले कभी बताई होगी। वे अपने पुत्र को गोद में खिला रहे थे और एक संत ने कहा कि तुम अपने शत्रु को गोद में खिला रहे हो। पिता ने कहा था, इसलिए तुमने उनकी बरसी पर एक पाडे को मारकर भोज दिया है। वह पाडा ही उसका पिता था। उसी का बेटा वह है। उसी पाडे को मारकर उसने वह भोज दिया। जिस पुत्र को गोद में खिला रहा था, वह उसकी पत्नी का जार पुरुष था। उसके साथ विषय क्रीड़ा करते देख उसने उसको मार दिया, यानी उस जार पुरुष को मार दिया। उसी जार पुरुष ने तुम्हारी पत्नी की कुक्षि में जन्म लिया और उसको तुम बड़े आनन्द से अपनी गोद में खिला रहे हो।

यह कुछ मालूम नहीं पड़ता है कि किसी जन्म का कौन शत्रु है और कौन किस जन्म का मित्र है? आज हम अपने शत्रु की बात करते हैं, किंतु इस दुनिया में ऐसा कौनसा जीव है जिसका हमारे पर उपकार नहीं है? इस प्रकार की बातों से सास-श्वसुर निरुत्तर हो जाते हैं। वे कहते हैं कि जब आप दीक्षा ले रहे हैं, हमारी लड़कियां दीक्षा ले रही हैं तो हम इस संसार में रहकर क्या करेंगे। वे भी तैयार हो जाते हैं। इधर प्रभव ने कहा कि कुमार! मैं भी जल्दी से अपना कार्य निबटाकर आता हूं। जंबू कुमार की अनुमति लेकर वह कोणिक राजा के दरबार में पहुंचा और वहां उनको नमस्कार किया और कहा कि मैं आपका अपराधी हूं।

मैं प्रभव हूं। प्रभव नाम सुनते ही एक बार तो राजा के भी भीतर कंपन्न हो गया। उसने कहा कि क्या समझकर तुम यहां आ गए?

प्रभव ने कहा कि राजन्, मैं आपका अपराधी हूं। आज तक आपकी सेना, आपकी पुलिस, आपके जवान, आपके कोतवाल कोई भी मुझे पकड़ने में समर्थ नहीं हुए हैं। आज मैं स्वयं आपके सामने खड़ा हूं और मैं अपने सारे अपराधों को स्वीकार करता हूं। इसके साथ ही जितनी भी मैंने चोरियां की हैं, जितने भी डाके डाले हैं, वह सारी संपत्ति, मैं चाहता हूं कि उसको आप अपने सुपुर्द लें। जो जिस-जिस का धन है, उसे उस-उस को सौंप दें। आप जो भी अपराध का दंड देना चाहते हैं, वह मैं लेने के लिए तैयार हूं क्योंकि मैंने जंबू कुमार से इस बात को समझ लिया है। मैंने आज से ये सारी चीजें छोड़कर साधु जीवन स्वीकार करने का इरादा कर लिया है। इसलिए आपको जो दंड देना है, आप मुझे दीजिए। मैं उसको भोगकर साधु बनना चाहता हूं।

यह सुनकर राजा कोणिक सिंहासन से उठते हैं और प्रभव को सीने से लगा लेते हैं। कहते हैं कि भाई, तुम साधु बनना चाह रहे हो, संन्यासी बनने की बात कर रहे हो, तुम्हारे सारे अपराधों का पश्चात्ताप हो गया है। इससे बढ़कर क्या पश्चात्ताप होगा। इससे बढ़कर इस दुनिया में क्या दंड है? हमारी दंड नीति किसी को मारने की नहीं है। बल्कि हमारे भीतर से अपराध मिट जाए, हमारा जीवन शुद्ध हो सके इसलिए हमारी दंड नीति है। तुम अपने जीवन को सुधारना चाहते हो, सदाचारमय बनाना चाहते हो, ऐसी स्थिति में तुम्हारे सारे अपराध माफ हो जाते हैं। उसने सारी संपत्ति को लाकर, सुपुर्द कर दिया और जैसा आगे उसका करना था, वह किया गया। प्रभव शीघ्रता से पांच सौ चोरों के साथ आगे बढ़ता है, ऐसा कहा जाता है। कुछ कथाओं में अलग-अलग पहुंचना कहा जाता है और कुछ कथाओं में कहा जाता है कि वे साथ में पहुंचते हैं। कुछ भी हो, वे आर्य सुधर्मा स्वामी के सामने पहुँच गये। कितने लोग पहुंच गए? कितने लोग पहुंचे। (प्रतिध्वनि- 527 लोग)

तारो पार उतारो गुरुवर, आए शरण सुखकार,
संयम पथ का बोध कराते, वे सब थे तैयार जी।। जय-जय.....
विधि युक्त दीक्षा दे सबको, यतना का फिर ज्ञान,
यतना ही है धर्म की जननी, यतना मोक्ष निधान जी।। जय-जय.....

सभी आर्य सुधर्मा स्वामी के सामने हाथ जोड़े खड़े हैं। गुरुदेव तारो,

पार उतारो। भव से पार करो, हमारी नैया पार करो और आर्य सुधर्मा स्वामी उनको संयम पथ का बोध देते हैं कि संयम क्या होता है। संयम की परिभाषा क्या है यह बोध उनको देते हुए उनको विधि युक्त दीक्षा देते हैं। उस विधि में वे सभी ईशान कोण में जा लोच करते हैं, संयमी वस्त्र पहनते हैं और शीघ्र पहुंच जाते हैं। उनको विधि युक्त दीक्षा देते हैं। फिर यतना का पाठ, कैसे चलना, कैसे उठना, कैसे खड़े होना, इसका उन्होंने बोध दिया और कहा कि साधु-साध्विगण को यतना का पालन करना चाहिए। ऐसा प्रयत्न श्रावक का भी होना चाहिए।

एक यतना से निश्चित रूप से ही भव पार हो जाएगा। यतना यदि तुम्हारे जीवन में रहे तो संसार से बेड़ा पार हो जाए और यदि यतना छूट गई तो बाकी कितनी भी तपस्या कर लो, कितना भी कुछ कर लिया, फिर भी कुछ होने वाला नहीं है। वहां सबने उस यतना को स्वीकार किया। उसके बाद जंबू स्वामी, जंबू कुमार आर्य सुधर्मा स्वामी के चरणों के समीप आते हैं, वंदना नमस्कार करते हैं और उनसे निवेदन करते हैं कि भगवंत, आपने भगवान महावीर की चरण सेवा करते हुए, चरण उपासना करते हुए उनसे धर्म के मर्म को सुना है। आपने उनसे आगमों का ज्ञान प्राप्त किया है। हे भंते! यदि उचित लगे और आपको यदि पात्र लगूं तो वह ज्ञान आपके श्रीमुख से सुनना चाहता हूं। आर्य सुधर्मा स्वामी ने भगवान महावीर से जो सुना वैसे का वैसा ज्ञान आर्य जंबू स्वामी को सुनाया और वही ज्ञान आज तक अग्रसर है। वह ज्ञान आज तक चला आ रहा है।

वैसे इस मायने में विचार करें कि आर्य सुधर्मा स्वामी के साथ आर्य जंबू स्वामी का भी हमारे ऊपर बहुत बड़ा उपकार है। जिनकी वाचना के माध्यम से आज भी वह ज्ञान हमें प्राप्त हो रहा है। इस प्रकार आर्य सुधर्मा स्वामी देखते हैं कि मेरा समय नजदीक आ गया है। उन्होंने अपनी जीवन संध्या को साधने का प्रयत्न किया और जंबू स्वामी को संघ का भार सौंपते हैं। वे संघ का उत्तरदायित्व उनको सौंपते हैं। वे केवली बनकर मोक्ष को प्राप्त करते हैं। इधर गणिवर श्री जंबू स्वामी, शासन की सारणा, वारणा, धारणा करते हैं और अनेक साधकों को दीक्षा पथ पर अग्रसर करते हैं। अनेक लोगों को विधि मार्ग बताते हैं। अनेक लोगों को वे संयम की दीक्षा, व्रतों की दीक्षा और सम्यक्त्व की दीक्षा देते हैं। ज्ञान की बात सुनाते हैं। एक समय आता है और वे अपने सारे कर्मों का क्षय करके, अपने चार घाती कर्मों का क्षय करके केवलज्ञानी हो जाते हैं। उसके बाद

चार अघाती कर्मों का भी क्षय करके केवलीज्ञान सहित सिद्ध-बुद्ध-मुक्त हुए और परिनिर्वाण को प्राप्त हुए।

एक और बात मैं कहना चाहता हूं। मुख्य बात है, जो सबको ध्यान में लेने की है। होली चातुर्मास के लिए, फाल्गुनी चातुर्मास के लिए विभिन्न क्षेत्रों की विनतियां प्राप्त हुई हैं और होती रही हैं। जिसमें से मुख्य क्षेत्र हैं - दिल्ली, सिरसा (हरियाणा), मुकेरिया (पंजाब), गीदडबाह, पाली, नागौर, बड़ौत (यू.पी.), अजमेर, सूरतगढ़, फलौदी, बालेसर सत्ता, अमृतसर, जेठाणिया, केतु कलाँ, महामंदिर (जोधपुर)। इन सभी की, इन सभी संघों की फाल्गुनी चातुर्मासी की विनती प्राप्त हुई है। ये सभी अपने-अपने स्थान पर होली चातुर्मास खोलने के लिए हम सबके सम्मुख विनती करने वाले हैं। इन सभी संघों को और अन्य सभी - सकल संघों को मैं आज के प्रसंग से सूचित करना चाहता हूं कि इस बार होली चातुर्मास खोलने का विचार नहीं है। साथ ही होली चातुर्मास के प्रसंग से प्रवचन में मेरा और साधु-साध्वियों का चातुर्मास भी खोलने का विचार फिलहाल नहीं है। जो भी होगा, वह आपको घर बैठे, सूचना मिल सकती है। पुन: ध्यान में लें - न तो होली चातुर्मास खोलने का प्रसंग है और न होली पर चातुर्मास की घोषणा होने की बात है। इस महत्त्वपूर्ण सूचना के साथ ही विराम लेता हूँ।

दिनांक - 12.11.2019

8

एक परत जो दिल को भाती

जय, जय भगवान। अजर, अमर अखिलेश...

पारस पत्थर लोहे को सोना बनाता है। हमने सुना है, बनाया नहीं है। पर सुना जरूर है कि पारस पत्थर, पारसमणि का लोहे को स्पर्श करा दो तो वह लोहा सोना बन जाता है। किसी महात्मा ने आर्त प्राणी को, दु:खी प्राणी को अपने पास डिबिया में रखा हुआ पारस पत्थर डब्बी सहित दे दिया। उसके मन में संशय हुआ कि पारस पत्थर यदि लोहे को सोना बनाता है तो महात्मा ने यह पारसमणि मुझे क्यों दे दी? मैं देख रहा हूं कि यह लोहे की डब्बी, जिसमें यह मणि है, वह तो सोना नहीं बनी?

उसके मन में उलझन पैदा हो गई। उसी उलझन से वह पुन: महात्मा के चरणों में पहुंचा। निवेदन किया कि महात्मन्! सचमुच में पारसमणि से यदि लोहा सोना बनता है तो आपने इस अद्भुत मणि को मुझे क्यों दे दिया? आपने दिया है तो लगता है कि इससे भी बढ़कर आपके पास कोई खजाना है, नहीं तो आप यह मुझे क्यों देते? दूसरी बात, इस लोहे की डब्बी में यह पारसमणि रखा हुआ होने पर भी यह लोहे की डब्बी सोने की नहीं बनी तो कैसे भरोसा करें कि यह पारस पत्थर लोहे को सोना बना देगा। महात्मा ने कहा कि डब्बी खोलो। उसने डब्बी खोली तो महात्मा ने कहा, इसको बहुत बारीकी से देखो। उसने बारीकी से देखा। कहा कि बोलो, इसमें क्या है? उसने कहा कि इसमें कुछ भी नजर नहीं आ रहा है, बस यह पारसमणि नजर आ रही है। महात्मा ने कहा कि थोड़ा और ध्यान से देखो। एक बहुत पतली झिल्ली मणि और डब्बी के बीच में है, जिससे मणि का स्पर्श उस डब्बी से नहीं हो पाया है। इसलिए यह सोने की नहीं बनी। उसने भी गौर से देखा तो दिखा कि बीच में एक हलकी पतली सी झिल्ली है।

किताबों पर क्या लगाते हैं? (प्रत्युत्तर- लेमीनेशन) लेमीनेशन, वह

कितनी पतली झिल्ली होती है? लेमीनेशन जिस पर लगा हुआ है, उस पर पानी की बूंद गिर जाए तो उस नीचे वाले कागज को गीला करेगी? (प्रतिध्वनि - नहीं) उसको गीला नहीं करेगी। एक पतली-सी झिल्ली है। महात्मा ने कहा कि ये झिल्ली है इसलिए पारसमणि इस लोहे को सोना नहीं बना पा रही है। उसने विचार किया कि इतनी-सी झिल्ली का इतना असर! महात्मा ने उपदेश किया कि ऐसी ही झिल्ली यदि साधक लगा लेता है तो वह संसार के किसी भी पदार्थ से मोहित नहीं होता। जैसे पारसमणि का असर उस लोहे तक नहीं पहुंच पा रहा है, वैसे ही यदि एक झिल्ली 'इदं न मम' की बीच में रहे तो उसका असर, संसार के मोह का, ममत्व का असर संत के जीवन में लग नहीं पायेगा।

मुनियों के लिए विहार प्रशस्त माना गया है, अच्छा माना गया है। वे विहार करते हुए हिचकते नहीं हैं। लोगों का इतना प्रेम मिलता है, इतनी श्रद्धा मिलती है, इतना उनको आत्मीय भाव मिलता है, फिर भी वे एक झटके में विहार कर जाते हैं। इसका मतलब है कि उनके हृदय में लेमीनेशन की पट्टी लगी हुई है। एक पतली झिल्ली लगी हुई है, जिससे वे किसी से जुड़ते नहीं हैं। किसी से अटैचमेंट नहीं होता है। बस, जो अपने बीच में एक ऐसी झिल्ली बना लेता है, वह जीव सुखी हो जाता है। वह दूसरे के प्रभाव से प्रभावित नहीं होता है। बाहर का प्रभाव उसको प्रभावित नहीं कर सकता। बाहर का प्रभाव चाहे कितना भी प्रभावी हो, किंतु उस झिल्ली को छेदकर जाने की उसमें ताकत नहीं है। वह झिल्ली जब तक संत के हृदय में लगी हुई है, तब तक उसका साधु जीवन सुरक्षित है, तब तक उसका संत जीवन सुरक्षित रहेगा। यही झिल्ली संसारी और साधु में भेद करने वाली है।

संसार के प्राणी बहुत जल्दी मुहब्बत कर बैठते हैं, बहुत जल्दी अटैचमेंट हो जाता है, जुड़ाव हो जाता है। कल तक जिसके साथ कोई संबंध नहीं था, जैसे ही वह घर का सदस्य बना, उसके साथ अटैचमेंट हो गया। उसके साथ जुड़ाव हो गया। वह जुड़ाव काफी गहरा भी हो जाता है। यों समझ लो कि आत्मा का शरीर के साथ जैसा जुड़ाव होता है, वैसे ही व्यक्ति दूसरों के साथ जुड़ाव कर लेता है। इस कारण से उनको कोई पीड़ा होती है तो वह उसको स्वयं की लगती है। यह जुड़ाव यदि नहीं होता तो वह पीड़ा उसको उस रूप में अनुभूत नहीं होती।

पक्षी पेड़ पर आकर बैठते हैं, रैन-बसेरा करते हैं और रात बीती नहीं कि वे अपने-अपने गंतव्य की ओर उड़ जाते हैं। फिर उनका पेड़ से कोई संबंध

नहीं है। संध्या का समय हुआ और वे पेड़ पर लौटकर आ जाते हैं। फिर सुबह हुई, वापस उड़ जाते हैं। केवल अपनी सुरक्षा के लिए वे पेड़ का आश्रय स्वीकार करते हैं कि हम पेड़ पर रहेंगे तो सुरक्षित रहेंगे। इसलिए वे उसको, उस आश्रय को स्वीकार करते हैं। अन्यथा उनको पेड़ से क्या लेना-देना? उनको पेड़ से कोई मुहब्बत नहीं है, लगाव नहीं है। यही संकेत अध्यात्म देता है, यही संकेत हमें जिनेश्वर देवों की वाणी देती है कि यदि तू सुख से जीना चाहता है तो किसी के साथ जुड़ मत। तुम्हें लोगों के बीच में रहना है, यह निश्चित है। पर लोगों के बीच में रहते हुए भी तुम उनसे निर्लेप रहो, निर्लिप्त रहो। वह लेप तुम्हारे भीतर लगे नहीं।

एक व्यक्ति चणे-भूंगड़े लेने गया भड़भूजे के वहां। एक डब्बे में उसने भूंगड़े भरवाये। दूसरा व्यक्ति किराणे की दुकान पर आटा लेने गया। उसने डब्बे में आटा भरवाया। तीसरा व्यक्ति घी लेने के लिए गया और डब्बे में घी भरवाया। भूंगड़ों को लाकर डब्बे से खाली किया तो डब्बे में कितना लेप था? हलका-फुलका होगा तो बात अलग है, किंतु उसका लेप लगेगा नहीं। आटा खाली करेगा तो थोड़ा लेप डब्बे में रहेगा। ऐसे अंगुली लगाने पर अंगुली सफेद हो जाएगी। उस पर आटा लग जाएगा और घी को खाली किया तो पोंछते जाएंगे, पोंछते जाएंगे फिर भी उसका लेप नहीं हटेगा। वैसे ही जो संसारी प्राणी चने के प्रतिलेप वाले होते हैं, वे शीघ्र प्रतिबोध को प्राप्त कर लेते हैं। उनको प्रतिबोध शीघ्र हो जाता है। आसक्ति हमें बोध होने नहीं देती। जैसे ही भीतर बोध प्रकट होना चाहता है, आसक्ति बीच में आ जाती है।

पानी में घी डाला गया। दूध में घी डाला गया। वह घी ऊपर-ऊपर आ जाता है, वैसे ही आसक्ति ऊपर-ऊपर आ जाती है। अरे! तू यह क्या कर रहा है? तू यदि दीक्षित हो जाएगा तो पीछे क्या होगा? तुम्हारे परिवार का क्या होगा? तुम्हारी पत्नी का क्या होगा, तुम्हारे बाल-बच्चों का क्या होगा? ये भाव रुकावट पैदा करते हैं या नहीं करते हैं? (प्रतिध्वनि - करते हैं) रुकावट पैदा कर रहे हैं तो क्यों कर रहे हैं? यह बताओ। अभी हमारा अटैचमेंट है, लगाव है। हो सकता है, हम कह सकते हैं कि हमारा दायित्व बनता है, हमारा कर्तव्य बनता है, हम जिम्मेदार हैं। मैं यह नहीं कहता कि आपकी जिम्मेदारी नहीं है, किंतु जिस समय व्यक्ति की सोच उन चनों की तरह बन जाएगी, उतनी निर्लेप अवस्था बन जाएगी तो वह सोचेगा कि आज मुझे सौ वर्ष पूरे हो जाए तो क्या होगा?

मिन्नी जी, क्या होगा? फिर कौन संभालेगा परिवार को? भूत बनकर आकर संभालोगे क्या? कौन संभालेगा?

आचार्य देव फरमाया करते थे, 'पूत सपूतं किं धन संचय, पूत कपूतं किं धन संचय' तेरा बेटा यदि सपूत है तो उसके लिए तुमको चिंता करने की आवश्यकता नहीं है। उसके भीतर इतनी कूवत होगी कि वह अपना जीवन निर्वाह कर सकेगा। यदि पूत कपूत है, उसके लिए क्यों फालतू की मगजमारी कर रहे हो? क्यों मगजमारी कर रहे हो? तुम कितने भी पैसे कमाकर छोड़ जाओ, वह सुधरेगा या बिगड़ेगा? (प्रतिध्वनि - बिगड़ेगा) आप जितनी संपत्ति छोड़ोगे, वह उसको उतना ही बिगाड़ने वाली बन सकती है। बंदर के हाथ में तलवार देने पर, चाकू देने पर वह उससे खराबा ही करेगा। वह भला करने वाला नहीं होगा। वह खुद के भी हाथ-पांव काट लेगा या किसी पर उसे फेंकेगा तो उसको चोट लगाएगा।

कपूत को भी संपत्ति मिलना अहितकर होती है। वह उसको फायदा पहुंचाने वाली नहीं होती है। वह न तो उसको फायदा देने वाली होती है और न ही दूसरे लोगों का फायदा कराने वाली होती है। उससे उसकी बुराइयां बढ़ने ही वाली होगी। गलत रास्ते में वह तेजी से बढ़ने वाला होगा। पैसा नहीं है तो क्या करे? जो मौज-मस्ती करनी है, वह नहीं कर पा रहा है। पैसा होगा तो? पैसा होगा तो वह गलत कार्य करेगा, क्योंकि अच्छे कार्य करने की उसकी योग्यता नहीं है। उसकी पात्रता नहीं है। कपूत है। इसलिए नीतिकार कहते हैं, 'पूत सपूतं किं धन संचय, पूत कपूतं किं धन संचय' पूत यदि सपूत हो तो उसके लिए धन-संपत्ति जोड़ने से क्या मतलब है? यदि पूत कपूत हो तो भी कोई मतलब नहीं है। फिर तो हमको क्या करना चाहिए? 'नो टेंशन, अटेंशन' टेंशन मुक्त।

आज का दिन हमारा अच्छी तरह निकल गया। कल भी हमारा जीवन सुख-शांति से निकल जाएगा, यह विश्वास रखो और इतना भाग्य का भरोसा रखो कि कहीं से कहीं हम अपनी चर्या को चला ही लेंगे। राम-लक्ष्मण और सीता वन में गए, एक जगह देखा कि यह स्थान ठीक है। यहां अपने को रुकना चाहिए। वहां पर कौन मजदूर मिले? कहां से लकड़ी मिली? कहां से अन्य साधन मिले? लक्ष्मण ही इधर-उधर से खोज-खाजकर लाए और उन्होंने ही कुटिया बनाई। उनके भीतर कुटिया बनाने की कला थी, क्योंकि पहले पुरुषों को 72 कलाएं सिखाई जाती थीं और स्त्री को 64 कलाएं। वह कला लक्ष्मण में थी।

उन्होंने कुटिया बना ली।

यदि आदमी भला होता है तो उसके सहयोग के लिए हर ओर आदमी खड़े हो जाते हैं। आपने सबके साथ यदि भलाई का काम किया है तो हर वक्त लोग आपके लिए खड़े मिलेंगे। आपने यदि किसी के साथ हाथ नहीं बढ़ाया और आप चाहो कि लोग मेरे इर्द-गिर्द रहें, यह कम संभव है। किंतु ये बात वापस ध्यान में लेनी है कि लोगों के बीच में रहते हुए भी उनमें डूबना कभी नहीं। पानी में जाओ भले ही, पर डूबो मत। पानी में तैरने वाला तैरकर निकल जाएगा। डूबने वाला डूब जाएगा। हम भी यदि मोह में, ममत्व में डूब जाएंगे तो संसार में ही रुकेंगे। संसार में ही डूब जाएंगे। नहीं तो परिवार के भीतर रहते हुए भी हम तर सकते हैं।

भरत चक्रवर्ती परिवार में रहते हुए निर्लिप्त भावों से जी रहे थे। निस्पृह भाव से जी रहे थे। कोई लगाव नहीं मात्र कर्तव्य का पालन। 'कर्मण्ये वाधिकारस्ते' कर्म करना तुम्हारा अधिकार है, किंतु निर्लेप भाव से करो। निष्पृह भाव से करो। कोई आकांक्षा नहीं। तुम्हारा जितना सामर्थ्य है, उतने सामर्थ्य से तुम कार्य करो। हर किसी की भलाई करो। इसमें नीतिकार कहीं रुकावट पैदा नहीं करते, किंतु अपने ध्येय में तुम सदा सावधान रहो। तुम्हारा लक्ष्य तुम्हारी आंखों से कभी ओझल नहीं होना चाहिए। अपना लक्ष्य है कि जो मनुष्य जन्म मिला है, मैं इसको व्यर्थ में नहीं जाने दूंगा। मैं अपनी आत्मा की साधना करूंगा। ऐसा ध्येय, ऐसा लक्ष्य होता है तो उसको दस मिनट का भी समय मिलेगा, वह आत्मस्थ हो जाएगा। वह दस मिनट का समय उसके लिए 24 घंटों तक असर करने वाला बनेगा। 24 घंटे उसको अपने ध्येय से कोई विचलित करने वाला नहीं बनेगा।

चने के डब्बे के समान, चने की भरणी के समान जिसके भीतर निर्लिप्त भाव है, वह जल्दी से बोध को प्राप्त हो सकेगा। उससे थोड़ा कठिन, आटे के डब्बे के समान लेप वाला व्यक्ति बोध को पाता है। घी जिस डब्बे में डाला गया है, वैसे लेप वाला व्यक्ति कठिनाई से, बहुत कठिनाई से बोध को प्राप्त करेगा। उसको बात जल्दी समझ में आएगी नहीं। घी के पीपे को यदि साफ करो तो काफी मेहनत लगेगी। हाथ से सूंत-सूंतकर साफ कर लोगे तो भी पूरा साफ नहीं होगा। फिर आटे को लेकर साफ करोगे तो और सफाई होगी। उसके बाद गर्म पानी से उसको साफ करना पड़ेगा। इतने पर भी साफ हो जाए, कोई जरूरी नहीं है। शायद उसके बाद भी सर्फ या साबुन को लेकर उसको साफ करेंगे तो

उसकी सफाई अच्छे से हो सकती है। उसको धोने में कितना टाइम लगा? उसको धोने में कितनी मेहनत लगी?

वैसे ही आसक्ति को धोने में टाइम लगता है। आसक्ति को धोने में समय लगता है और मेहनत भी लगती है। दूसरी तरफ अनासक्त प्राणी है। उसका विचार बहुत सुंदर होता है। उसका विचार लेप रहित होता है। उसका विचार उसको अच्छाइयों की तरफ ले जाने वाला होता है। उसके विचार प्राय: बहुत अच्छे व प्रांजल होंगे। कभी बुरे विचारों में जाने भी लगेगा तो उसको लगाम लग जाएगी। उसका मन ही उसको लगाम लगा देगा कि तुम यह क्या कर रहे हो? कितने समय तक तुम्हें रहना है? कितने समय की जिंदगी है?

मेरा रतलाम चातुर्मास था। उस समय भीनमाल में एक मंदिरमार्गी संत की मृत्यु हो गई थी। उसमें कुछ पुलिस प्रशासन का भी हाथ था। पुलिस गाड़ी में डालकर उनको पुलिस थाने ले गए। ऐसी कुछ घटनाएं घटी थीं। वे मुनि रतलाम के थे। हमको समाचार मिले तो मैंने व्याख्यान में उसका जिक्र किया। सोलापुर में विराजित मंदिरमार्गी संतों ने कहीं समाचार पत्र में पढ़ा होगा कि मैंने व्याख्यान में मंदिरमार्गी संत के बारे में कहा। तब उन्होंने उसकी काफी प्रशंसा की कि इस प्रकार से एक मंदिरमार्गी संत नहीं होते हुए भी उन्होंने बोला है। दूसरे दिन वहां पर सामूहिक श्रद्धांजलि का कार्यक्रम रखा गया। मेरे को आकर बोला तो मैंने कहा कि मैं तो अपनी बात कह चुका हूं। मुझे जो बोलना था, वह मैं बोल चुका हूं। समान सामाचारी के अभाव में सामूहिक कार्यक्रम का रूप भिन्न बन जाता है। इसलिए मेरे आने की स्थिति नहीं है।

अन्य कई संत स्थानकवासी भी थे, वे वहां पहुंचे थे। उसमें साधुमार्गी श्रावकों का प्रतिनिधिमंडल भी उपस्थित था। जैसा वे बोल रहे थे कि स्थानकवासी संत ने तीस सेकंड उस प्रसंग की बात कही, उसके बाद उनका लगभग आधा घंटा मेरे पर ही ज्यादा रोष निकला कि ऐसी बात थी तो एक दिन व्याख्यान बंद नहीं रख सकते थे क्या? आदि-आदि। कुछ लोगों को अच्छा नहीं लगा तो उठकर वहां से निकल आए। कुछ लोग आकर मेरे पास आक्रोश करने लगे कि हम ऐसा करेंगे। अखबारों में प्रतिकार निकलवाएंगे, यह करेंगे आदि प्रतिकारात्मक बातें करने लगे। मैं सुनता रहा, सुनता रहा, सुनता रहा। फिर कुछ लोगों ने कहा कि म.सा. को भी तो सुन लो। म.सा. क्या दिशा-निर्देश देते हैं। मुझसे कहा कि आप क्या फरमाते हैं? मैंने कहा कि देखो भाई! हम तो

पिंजरे के पक्षी हैं। यह चार महीने का पिंजरा है। हम चार महीने तक पिंजरे में बंधे हुए हैं। चार महीने तक रुकना है। चातुर्मास के चार महीने यह पिंजरा रहेगा। जैसे ही चार महीने चातुर्मास के पूरे होंगे कि पिंजरा खुलेगा और हम तो उड़ चलेंगे। विहार कर जाएंगे। हम लोग तो चले जाएंगे, किंतु तुम लोगों को यहीं पर रहना है। तुमको अपने गांव में रहना है, अपनी जगह में रहना है। तुम यहां से छोड़कर थोड़े ही चले जाओगे? हमारे लिए कुछ कह दिया, उसके लिए तुम यदि गांठ बांधना चाहोगे तो पीछे कितने समय तक वह गांठ चलती रहेगी? एक बार गांठ बांधना आसान है, फिर धीरे-धीरे खिंचाव बढ़ता जाता है और गांठ सख्त होती जाती है। गांठ एक बार पड़ जाती है तो फिर खोलना चाहो तो वह खुलनी आसान नहीं होती है।

हम अगर छोटी-छोटी बातों को लेकर ऐसा करेंगे तो गांठ बंध जाएगी, होना-जाना कुछ भी नहीं है। फिर फालतू का संक्लेश क्यों होना? मैंने कहा, क्यों फालतू का संक्लेश लेते हो? कुछ लोगों ने कहा कि देखो म.सा. क्या बोल रहे हैं? जो उग्र भाव में थे, वे कहने लगे कि आचार्य श्री अब थोड़ी ना कहेंगे कि ऐसा करना चाहिए। आचार्य श्री तो यही कहेंगे कि नहीं करना। यह तो अपना काम है। हमें ही करना है। हम तो करेंगे, हम नहीं सहेंगे। इस पर मैंने कहा कि तुम्हें करना ही है तो फिर मेरे पास क्यों आए? मुझसे पूछते क्यों हो? तुमको अपने हिसाब से करना है तो मेरे पास आने की जरूरत ही नहीं थी। वहां से वे चले गए कि चलो। उन्होंने अखबार में प्रतिकार नहीं किया। संघ के लोगों ने कह दिया कि म.सा. ने मना कर दिया है तो नहीं करेंगे। थोड़ी देर के लिए विचार करें, यदि वे कर भी लेते तो क्या होता? होता यह कि वे अपनी भड़ास निकाल लेते। लोग मजा देख लेते, किंतु ऐसा हुआ नहीं। जो आक्रोश था, कुछ समय बाद शान्त हो गया।

हवा को बाजार में फैलते देर नहीं लगती। यह हवा भी चली गई। सामने वाले पक्ष से लोग कहने लगे कि हम स्वयं ही लज्जित हैं। हम स्वयं ही दुःखी हैं। ऐसा व्याख्यान नहीं दिया जाना चाहिए। वे लोग यदि अखबारों में प्रतिकार निकालते तो सामने वाले पक्ष में खिंचाव आता या शांत होता? उन्होंने कुछ नहीं किया तो सामने वाले को अपने आप सोचने का मौका मिल गया। सामने वाला अपने आप ही सोचने लगा कि हमने ठीक नहीं किया। ध्यान रखें, आप किसी को सजा देकर राजी हो जाएंगे। किंतु हमारा कार्य सजा का नहीं,

संशोधन और सुधार का है। कहीं भी कोई गलती हो तो उसका सुधार करना।

कहने का मतलब है कि हम तो कुछ दिन के पक्षी हैं, कुछ दिन रुकने वाले हैं। किंतु यदि गांठ पड़ गई तो लंबी खिंच जाएगी। इसलिए व्यक्ति को सोचना चाहिए। मैं संसार में कितने दिन का हूं? साधु चार महीने एक स्थान पर रुकता है, उसके बाद विहार कर लेता है। हम 40 साल और रुकने वाले हैं। 60 साल तो आ ही गए और 40 साल और हो जाएंगे। कितने साल और रुक जाएंगे? हम और कितने रुकने वाले हैं? फिर हम क्यों क्लेश पैदा करें? क्यों किसी के साथ दुर्व्यवहार करना? क्यों किसी के साथ दुर्भाव पैदा करें? क्यों किसी के साथ दुश्मनी पैदा करें? हम ऐसा क्यों करेंगे? हम क्यों नहीं अपने भीतर सदाचार का भाव रखें, शांति का भाव रखें? ये भाव हमारे भीतर होने पर चित्त बड़ा शांत रहता है, मन पवित्र रहता है। पवित्र मन, पवित्र बुद्धि सदा अच्छी सोच देने वाली होगी। जिस बुद्धि में स्वार्थ भरा रहेगा, वह बुद्धि हमें कभी भी साथ नहीं देगी। वह कोई न कोई तिकड़म लड़ाने की कोशिश करेगी।

हम अपनी बुद्धि को मलीन नहीं होने दें। हम अपनी बुद्धि को पवित्र बनाए रखें। इसके लिए जरूरी है कि हम अपनी भावना को निर्लिप्त रखें, अनासक्त रखें। किसी से अटैचमेंट नहीं करें। कोई मेरा कितना भी जिगरी है, किंतु न्याय मार्ग से बढ़कर मेरा कोई पथ नहीं है। न्याय मार्ग से मेरा लगाव है। संक्लेश से अपना संबंध नहीं होना चाहिए। सच्चाई को कभी छुपाने का काम नहीं हो। गोल-मोल करने का भी काम नहीं करेंगे। कोई व्यक्ति मेरा कितना भी जिगरी है, पर सच से बढ़कर नहीं। 'सत्यमेव जयते' ही मेरा है। मैं सबके साथ कितना ही संबंध रख लूं, किंतु जहां सत्य की बात आएगी, वहां मैं सबसे अलग हूं और यह दृष्टिकोण हम अपने भीतर पनपा सकते हैं। यह तभी होगा जब हमारे भीतर आसक्ति नहीं होगी। हमारे भीतर स्वार्थ दंभ की भावना नहीं होगी। हम सच्चाई को स्वीकार कर पाएंगे और सच्चाई हमारे भीतर पनप पाएगी।

संजय मुनि जी म.सा. फरमा गए, अभी थोड़ी देर बोले और फरमाते-फरमाते बैठ गए। क्यों बैठ गए? दिल भर गया। बस, एक झिल्ली हटती है तो वह गड़बड़ करती है और झिल्ली लगी रहती है तो आनन्द ही आनन्द है। मेरे से अलग विहार करने की बात कोई नई नहीं है। बहुत बार मेरे से अलग विहार किया है। वर्षों तक पूर्वांचल क्षेत्र में नेपाल, सुदूर सिल्चर जो नेपाल से भी दूर है। (प्रतिध्वनि- नेपाल में है) अरे, नहीं भाई! नेपाल तो दूसरी तरफ आ जाता है

और वह सिल्चर तो एकदम अलग दिशा में हो गया। उन सुदूर क्षेत्रों में शासन की भव्य छाप और प्रभाव छोड़कर आए हैं। लोग तो कहते हैं कि संजय मुनि जी को वापस भेज दो। संजय मुनि जी का भी जाने का तो मन है कि उधर चला जाऊं। मन को मजबूत करना पड़ेगा। वह झिल्ली रहेगी तो बाहर के कोई भी प्रभाव, हमारे पर असर करने वाले नहीं होंगे। संजय मुनि जी हों, चाहे अन्य मुनि हों, विहार तो करना ही होता है। करना होता है या नहीं करना होता? (प्रतिध्वनि- करना होता है) तो फिर क्या विचार करना? जैसे उमंग से आए, वैसे ही उमंग से विहार करना है। करना चाहिए या नहीं करना चाहिए? (प्रतिध्वनि- करना चाहिए)

जब आप कहते हैं कि हम गुरु को दिल में बिठा कर चलते हैं, दिल रखते हैं तो अलग कौन है? कौन है अलग? चाहे हर्षिलाश्री जी म.सा. हों, अर्चनाश्री जी म.सा. हों या मंजुलाश्री जी म.सा. अथवा प्रियंकाश्री जी म.सा.। कोई भी सतियां जी हों, सबको कौनसे रास्ते जाना पड़ेगा? यह विदाई के रास्ते में, विहार के रास्ते में सबको जाना है। अपनी-अपनी दिशाएं, अपना-अपना क्षेत्र, अपनी-अपनी गति। हम कहीं भी रहें पाथेय हमारे साथ होना चाहिए। पाथेय क्या है? निर्लेप भाव, अनासक्त भाव। हम कहीं भी रहें, निस्पृह रहें, निर्लिप्त रहें और यह निस्पृहता, निर्लिप्तता, अनासक्तता बहुत आत्मतोष देने वाली होती है। ये हमें दु:खी नहीं होने देगी, यह निश्चित है। हमारे मन की अपेक्षाएं, हमारे मन की आकांक्षाएं हमें दु:ख पहुंचाने वाली होती हैं। हमें पीड़ित करने वाली होती हैं। ये नहीं तो किसी प्रकार की कोई पीड़ा नहीं।

हर व्यक्ति अपने घर के सामने से गंगा नदी को नहीं बहा सकता। भगीरथ जी के बारे में कहते हैं, उन्होंने गंगा नदी को लाने का काम किया। वैसे ही क्या हम सभी घर के सामने से नदी निकाल सकेंगे? (प्रतिध्वनि- नहीं) पर गंगा नदी का पानी चाहे तो डब्बे में ला सकते हैं या नहीं ला सकते हैं? (प्रतिध्वनि- ला सकते हैं) संत, महासतियां जी, वे सारे के सारे हमारे घर के सामने से निकलें, यह भी संभव नहीं होता है। फिर हमें क्या करना चाहिए? गंगा जल भरकर ले जाएं। संतों को हम अपने क्षेत्र में लाकर क्या करेंगे? हम अपने क्षेत्र में लाकर उनकी वाणी को सुनना चाहेंगे। वह संतों का उपदेश, वह वाणी जो यहां सुनी है, साथ में डब्बा भरकर ले जाएं और उसको अपने उपयोग में लेते रहें।

आचार्य पूज्य गुरुदेव नानालाल जी म.सा. का दिल्ली परिसर में विहार

हो रहा था। आचार्य श्री गणेशलाल जी म.सा. मौजूद थे। आचार्य देव मुनि अवस्था में थे। संयोग ऐसा हुआ कि 'जमना पार' आचार्य श्री गणेशलाल जी का पधारना नहीं हुआ। नाना गुरु उस क्षेत्र में पहुंचे। लोगों ने स्थानक की अनुमति दी। छोटा-सा आला खोला और कहा कि इसमें ये किताबें हैं, धार्मिक ग्रंथ हैं, आप चाहें तो इनका उपयोग कर सकते हैं। इनको स्वाध्याय में काम ले सकते हैं। आचार्य देव ने देखा कि जवाहराचार्य जी के व्याख्यानों की किताबें वहां पर थी। आचार्य देव ने विचार किया कि क्या आचार्य श्री जवाहरलाल जी म.सा. इधर पधारे थे? गुरुदेव ने उनसे ही पूछा तो उन्होंने कहा कि आचार्य श्री जवाहरलाल जी म.सा. इधर तो नहीं पधारे थे। उस समय हमने उनसे विनती भी की थी, किंतु वे इधर नहीं पधार पाए। अभी आचार्य गणेशलाल जी से भी हमने बहुत आग्रह किया, किंतु वे भी नहीं पधार पाए। हमारे तो आप छोटे संत ही हिस्से में आए हैं। मुनि श्री के पूछने पर कि ये किताबें यहां कैसे? तब उन्होंने कहा मुनिश्री हम दिगंबरों के बीच में रहते हैं। हम अपने धर्म को कैसे टिकाए रखें? इसके लिए संत-सतियां जी का योग तो कभी-कभार मिलता है। कभी नहीं भी मिलता है।

हमने खोज-बीन की तो हमें ज्ञात हुआ कि आचार्य श्री जवाहरलाल जी म.सा. के प्रवचनों की कुछ पुस्तकें निकली हैं। हमने खोज करके उन पुस्तकों को इकट्ठा किया, यहां रखी व नियमित रूप से हम यहां पर स्वाध्याय करते हैं। सामायिक करके बैठते हैं, अच्छी भाषा में बोलने वाला कोई उच्चारण करता है। वह बोलता है, हमको सुनाता है, हम सुनते हैं। हम तो यह समझते हैं कि हमको रोज आचार्य श्री जवाहरलाल जी म.सा. का व्याख्यान सुनने को मिल रहा है। बन्धुओ! श्रद्धा ही सब कुछ है। उन किताबों में रहे हुए विचारों को सुनकर, वे यह मान रहे हैं कि हम आचार्य श्री जवाहरलाल जी म.सा. का व्याख्यान सुन रहे हैं। तो क्या हम भी उनकी तरह ऐसा नहीं कर सकते हैं? पर जिनको रोज या प्राय: प्रत्यक्ष सुनने को मिले तो वह ऐसा उपक्रम क्यों करने लगा?

हम भी रोज व्याख्यान सुन सकते हैं। हर रोज ही वह गंगा का जल हमें मिल सकता है। मिल सकता है या नहीं मिल सकता है? (प्रतिध्वनि- मिल सकता है) संत आवें तभी हम वाणी सुनें और संत नहीं आवें तो हम निराश हो जाएं, ऐसा हमारा विचार नहीं होना चाहिए। हमें स्वाध्याय से जुड़ना चाहिए। धर्म को यदि जिंदा रखना है तो यह बहुत जरूरी है। इसी से परिवार में संस्कार बनते

हैं। आप स्वयं भी संस्कारी बनते हैं। कितना भी हो आदमी पढ़ते-पढ़ते, सुनते-सुनते कुछ तो गढ़ा ही जाता है। रोज पत्थर पर रस्सी निकलती है तो उस पर भी निशान हो जाता है। जहां परनाले से पानी गिरता है, गिरते-गिरते उस स्थान पर वह गड्ढा कर देता है। यह आप लोग भी जानते तो हो? जब आप जानते हो तो क्यों नहीं विचार करते कि हम तीर्थंकरों की वाणी को सुनते हैं, पढ़ते हैं तो हमारे भीतर बदलाव क्यों नहीं आएगा? हमारे भीतर उसका रस नहीं आए, क्या यह संभव है? क्या पत्थर से भी हमारा दिल कठोर है?

जो भी विनती करने वाले संघ हैं, वे विचार करें कि हमें भी संत मिले तो अच्छी बात है, सुंदर बात है, यदि नहीं तो उनके प्रवचनों का पाथेय साथ में रखेंगे। जहां जाएंगे साथ लेकर जाएंगे और जहां बैठें, हमने उस पाठ को सामने ले लिया। हम उस पर विचार करें। पढ़ने का तरीका अलग-अलग होता है। पढ़ना ऐसा चाहिए कि थोड़ा पढ़कर उस पर विचार करें। एक पैराग्राफ के बाद मेरे मन में क्या विचार पैदा हुए? अपने विचारों को पैदा करने का प्रयत्न करें। नहीं तो धड़ाधड़ एक घंटे में, दो घंटे में किताब को पढ़कर पूरी कर देते हैं। वह बरसाती पानी होगा। वह पानी बहने वाला होगा, वह पानी खेती में ज्यादा काम नहीं आएगा। सावन का पानी काम का होता है। वह टप-टप करके धीरे-धीरे बरसता है। वह खेती के काम आने वाला होता है। वैसे ही हम थोड़ा-थोड़ा पढ़कर अपने विचारों को व्यक्त करने की शक्ति पैदा करें। वे विचार पैदा होने लग गए तो वह धीरे-धीरे पढ़ा हुआ हमारे लिए लाभदायक होगा। हम निश्चित रूप से उसमें रहे हुए तथ्यों को ग्रहण करने में समर्थ बनेंगे और जीवन को रूपांतरित करने की हमारे भीतर ताकत आ पाएगी।

श्याम नगर से चातुर्मासिक प्रवेश हुआ और चातुर्मास का विहार भी श्याम नगर से, यह भी एक संयोग है। पुण्याई जिस क्षेत्र की प्रबल होती है, संतों को खींच लेती है। बहिनें गाया करती हैं- 'म्हारी पुण्याई लगा थोड़ो जोर, संतां ने लाईजे पावणा।' पुण्याई के लिए भी आसक्ति त्याग एक महत्त्वपूर्ण हेतु है।

आसक्ति के तीन प्रकार मैंने अभी बताए हैं। उनमें से चने वाले बरतन की तरह हमें निर्लेप बनना है। हम वैसा बनने का प्रयत्न करेंगे तो अवश्यमेव इस जन्म में कुछ अच्छा करने में समर्थ बनेंगे। कुछ अच्छा करेंगे तो मरने से पहले हमें अवश्य संतोष होगा। उस समय हमें लगेगा कि हमारा मनुष्य जन्म व्यर्थ नहीं गया है। मेरा मनुष्य जीवन व्यर्थ नहीं गया है। मैंने अपने हिसाब से किया है तो

मेरा दिल मुझे गवाही देगा, मुझे तृप्ति का अहसास कराएगा। ऐसी अनासक्ति का अहसास हम सबके भीतर होना चाहिए। सुबह उठे, जब भी उठे, रात-दिन मन में ऐसी तृप्ति रहनी चाहिए कि मैंने इस मनुष्य जीवन का लाभ लिया है। मैंने इसको अच्छी तरह से जीया है। मन में टीस नहीं रहनी चाहिए। मन में यह नहीं रहे कि मैंने क्या किया? कल का दिन मैंने खो दिया, वह चीज नहीं हो। यदि इतना-सा हमने अपने आपको साध लिया, इतना-सा सूत्र जीवन में ले लिया, इतना-सा जीवन में अमल कर लिया तो हमारा जीवन धन्य बनेगा।

आज मंगलवेला में मंगलाचरण में विशेष ज्यादा नहीं कहता हूं। इतना ही कहूंगा कि एक सूत्र हमारे जीवन में आ जाए। यह एक सूत्र ही हमारे पूरे जीवन का रूपांतरण करने वाला बनेगा। जैसे थोड़ा-सा जामण दूध को दही बना देता है, वैसे ही एक सूत्र हमारे जीवन के दु:ख को निकालकर सुखी बनाएगा। समाधि देने वाला होगा, शांति देने वाला होगा। हम उस सूत्र से अपने भीतर को भावित करें। ऐसा हम करेंगे तो धन्य बनेंगे।

इतना ही कहते हुए विराम।

दिनांक-13.11.2019
श्याम नगर, कमला नगर अस्पताल के पास
जोधपुर

9

श्रम हमारी साधना

धार तरवार नी सोहेली दोहेली...

तीर्थंकर देवों की चरण सेवा को दुरूह बताया गया है। बहुत कठिन कहा गया है। उस कठिनता को दर्शाने के लिए बताया गया कि तलवार की धार पर चलना एक बार सुगम हो सकता है, किंतु तीर्थंकर देवों की चरण उपासना, भक्ति या उनकी आज्ञा की आराधना कर पाना आसान नहीं है।

क्यों नहीं है आसान? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि मनुष्य का मन विभिन्न इच्छाओं से आक्रांत होता है। उसके मन में विभिन्न अपेक्षाएं, अभिलाषाएं बनती रहती हैं, चलती रहती हैं। जैसा भी नया-नया विषय उसके सामने आता है, वह उसके प्रति आकर्षित होता रहता है। उसके अनुसार उसकी चाहत होती हुई चली जाती है। तीर्थंकर देवों की वाणी की आराधना, आज्ञा की आराधना मन के धरातल पर होती है। मन को इधर-उधर दौड़ाने से आराधना नहीं होती। मन को एकदिशानुगामी बनाना होता है। जो मेरा लक्ष्य है, उसी के अनुसार मेरा मन रहे। मन इधर से उधर गति नहीं करे एवं नए-नए आकर्षणों के प्रति उसमें कुतूहल भाव भी नहीं जगे, तब आराधना हो पाती है।

हमने सुलसा की जीवनी सुनी होगी। अम्बड़ संन्यासी जिसने ब्रह्मा, विष्णु, महेश और 25वें तीर्थंकर का रूप बनाकर लोगों को मुग्ध किया, किंतु सुलसा उन आकर्षणों में मुग्ध नहीं हुई। अम्बड़ था तो संन्यासी पर था बारह व्रतधारी श्रावक। वह सुलसा की धर्म श्रद्धा व धर्म-निष्ठा को जानना चाहता था इसलिए उसने उपर्युक्त तरीके अपनाये। किंतु सुलसा उन तरीकों पर विमुग्ध नहीं हुई। उसकी दृढ़ता कितनी थी, यह उसके व्यवहार से स्पष्ट हो गया। लोगों के आग्रह करने पर उसने कहा कि न मुझे ब्रह्मा को देखने की जरूरत है, न विष्णु को देखने की और न ही महेश को देखने की आवश्यकता है। लोगों ने कहा कि

अब तो 25वें तीर्थंकर प्रकट हो गए। ये तो जैन के हैं, अब तो चल। उसने कहा कि नहीं। 25वें तीर्थंकर आज तक हुए नहीं हैं, होते नहीं हैं और होंगे भी नहीं। कोई जरूर छलने वाला जीव है। मैं नहीं चल सकती हूं। यह थी आस्था, यह थी दृढ़ता। ऐसी आस्था और दृढ़ता होती है। एक ही लक्ष्य रहता है, उस लक्ष्य के अनुसार जब गति होती है तब तीर्थंकर देवों की आज्ञा की आराधना भव्य तरीके से हो पाती है।

पचीसवें तीर्थंकर को प्रकट हुआ जान लें तो हमारी भावना क्या बनेगी? हमारे मन की स्थिति कैसी रहेगी? शायद हम अपने मन को न रोक पाएं। यदि कोई हमसे यह कहे कि भाई! तुम दृढ़धर्मी होकर जानते हुए भी कि पचीसवें तीर्थंकर नहीं होते, फिर कैसे चले गये तो हम सीधे से स्वीकार भी नहीं करेंगे। हम कहेंगे मैं दर्शन करने नहीं गया। देखने चला गया कि तीर्थंकर की सम्पदा कैसी होती है। मतलब मैंने जाकर कोई गलती नहीं की। मैंने सम्यक्त्व में अतिचार नहीं लगाया? हम जो भी सोच लें, सत्य तो सत्य ही रहेगा।

तीर्थंकर देवों ने 4 तीर्थों की स्थापना की। वे हैं- साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका। साधु को श्रमण भी कहा जाता है और श्रावक को श्रमणोपासक भी कहा जाता है। श्रमण से हम क्या समझ रहे हैं और श्रमणोपासक का तात्पर्य क्या है? जीव-अजीव का ज्ञाता होना। 'अभिगयजीवाजीवे' ऐसा पाठ आगमों में आपको जगह-जगह मिलेगा। अमुक व्यक्ति, जिसने तीर्थंकर देवों का उपदेश सुना और श्रमणोपासक हो गया। जीव, अजीव आदि तत्त्वों का ज्ञाता हो गया। यद्यपि श्रावक-श्रमणोपासक के लिए अन्य विशेषण भी प्राप्त होते हैं, किंतु जीवाजीव का ज्ञाता होना उसके लिए प्रथम है।

श्रमण उसे कहा जाता है, जो श्रम करे। श्रम किसमें करे? यह बात उत्तराध्ययन सूत्र के 25वें अध्ययन से स्पष्ट होती है कि समता में उसका श्रम होना चाहिए। उसकी मेहनत, उसका परिश्रम, उसका श्रम, उसकी साधना समता के लिए होनी चाहिए। समता का तात्पर्य क्या है? नाम तो हमने सुना है? समता रखेंगे, समता रखेंगे, समता रखेंगे। पर रखें कैसे? मन के अनुकूल अथवा प्रतिकूल? कैसे भी प्रसंग आ जाएं, मन उद्वेलित नहीं हो। न हर्ष में फूले, न हर्ष में हर्षित हो और न ही गम के क्षणों में गमगीन हो। यह साधना श्रमण की होती है। श्रमण इसमें अपना मन लगाता है कि मेरे मन के अनुकूल हर वक्त

होगा, कोई जरूरी नहीं है। अनुकूल स्थितियों में मन प्रसन्न हो जाए और प्रतिकूल परिस्थितियां आते ही मन हताश हो जाए, ऐसा नहीं होना चाहिए। अनुकूल हो या प्रतिकूल हो, हर वक्त उसका मन एकरस रहेगा, एकरूप रहेगा, एकात्म भाव रहेगा तो वह श्रमणत्व को स्वयं में साकार कर पायेगा।

काम कठिन जरूर है, किंतु असंभव नहीं है। कोई कार्य कठिन हो सकता है, किंतु असंभव नहीं। असंभव उसको कहा जाता है, जो कभी होगा ही नहीं। जैसे जीव कभी अजीव नहीं होगा। जैसे हर वक्त जीवों की मोक्ष-मुक्ति होती रहेगी, भव्य जीव मोक्ष में जाते रहेंगे। क्योंकि भगवान ने कहा कि भव सिद्धि जीव मुक्ति को प्राप्त करेगा, किंतु यह भी सही है कि भव्य जीवों से संसार कभी खाली नहीं होगा। असंभव है कि खाली हो जाए। मतलब होना ही नहीं है। कठिन वह होता है जिसको साधा तो जा सकता है, पर साधने में कुछ कठिनाइयां आती हैं। व्यापार, धंधा, धन कमाना बहुत सारी चीजें बहुत आसान हो सकती हैं और कठिन भी हो सकती हैं, किंतु मन को साधना बहुत ही कठिन होता है।

मन साधने के संदर्भ में कहा गया है कि हजारों-हजार योद्धाओं को संग्राम में जो योद्धा परास्त कर देता है, उन सबको जीत लेता है, वही योद्धा अपने मन से पराजित हो जाता है। मन को जीत नहीं पाता। इसलिए भगवान कहते हैं कि हजारों योद्धाओं को जीत लेना, लाखों योद्धाओं को जीत लेना वीरता नहीं है। वीरता है कि तुम एक अपने अविजित मन को जीत लो। अविजित मन को जीत लो तो वह हजारों, लाखों सुभटों को जीतने से भी बढ़कर होगा। यह साधना कौन करता है? (प्रतिध्वनि- श्रमण) श्रमण, श्रमण का अर्थ है श्रम करना। समता भाव के लिए श्रम करना।

फिर प्रश्न होता है कि श्रम तो एक मजदूर भी करता है? क्या वह श्रम मुनि करे, क्या श्रमण को भी वैसा श्रम करना होगा? नहीं, उसका श्रम होता है समता में। समता अपने मन में कैसे रखी जाए वह उसका उद्देश्य होता है। वही उसका लक्ष्य है। उसी में वह अपना श्रम करता है कि मन की उलझन कभी भी बने नहीं। मन कभी किसी में उलझे नहीं। मन सुलझा हुआ रहे। क्योंकि यह भी साफ है कि शुद्धि उसकी होती है, जो ऋजुभूत होता है, जो सुलझा हुआ होता है। जो सुलझेगा नहीं, उसकी शुद्धि नहीं होगी और जहाँ शुद्धि नहीं होगी, वहां धर्म टिकेगा नहीं।

दूसरा पक्ष कि श्रमणोपासक किसको कहते हैं? श्रमणोपासक किसको कहते हैं? जो श्रमण की उपासना करने वाला होता है, वह होता है श्रमणोपासक। श्रमण की उपासना कैसे करेगा? क्या करेगा? इस पर विचार करता है। हम तो खुले हैं, हम तो गृहस्थ हैं कहने वाला श्रमणोपासक नहीं होता। मतलब हम खुले गृहस्थ हैं कुछ भी करें। यह कथन श्रमणोपासक का नहीं हो सकता है। वह गृहस्थ है, वह खुला है, फिर भी मर्यादा में बंधा हुआ है, एकदम खुला नहीं है। उसके लिए मर्यादाएं मौजूद हैं। ऐसा नहीं है कि मर्यादाविहीन है। व्रत स्वीकार किया है तो वह मर्यादा में आया है। इसलिए उसे यह नहीं मानना चाहिए कि वह पूरा खुला है। उसे अपने व्रत, नियम ध्यान में रहना जरूरी है। दूसरी बात श्रमणोपासक यानी श्रमण प्रधान धर्म का उपासक। हमारा धर्म श्रमण प्रधान है। इस धर्म का प्रादुर्भाव भगवान महावीर के द्वारा हुआ। वे भी श्रमण थे। हमने कई स्थानों पर पढ़ा भी होगा श्रमण भगवान महावीर स्वामी की जय। अत: श्रमणोपासक का तात्पर्य होगा श्रमण के धर्म के अनुरूप चर्या में जीने वाला। जिससे श्रमण धर्म विद्रूप होता है, वैसा आचरण, वैसा व्यवहार नहीं करना।

इस विषय में और बारीकी से विचार करेंगे तो ज्ञात हो पाएगा कि क्यों कहा गया श्रमणोपासक? मैं जहां तक सोचता हूं कि श्रमण की उपासना करने का अर्थ, यहां पर उत्तम साधक के रूप में लिया गया है। हमने बहुत-सी जगहों पर पढ़ा होगा। आपने रामायण में सुना होगा, पढ़ा होगा, चलचित्र में देखा होगा कि ऋषि विश्वामित्र जी आते हैं और राजा दशरथ से निवेदन करते हैं कि हम ऋषियों की साधना में राक्षसों के द्वारा व्यवधान खड़ा हो रहा है। उनसे हमारी रक्षा करने के लिए आप राम को मेरे साथ भेजें। वे उत्तम साधक बनकर हमारी रक्षा करेंगे और राम को वे ले गए। राम उत्तम साधक बनकर राक्षसों से उन ऋषियों की रक्षा करते हैं। उसी प्रकार श्रमणोपासक को भी उत्तम साधक बनकर श्रमणों की रक्षा करने वाला होना चाहिए। उत्तम साधक का मतलब क्या है कि खुला नहीं है। मैं तो खुला हूं, हम तो गृहस्थ हैं। नहीं। वे भी मर्यादायों से बंधे हैं। राम ने भी एक प्रकार से उत्तम साधक बनकर ऋषियों की रक्षा की थी। ऐसा नहीं कि उन्मुक्त भाव से जीये थे। वैसे ही श्रमणोपासक श्रमण की उपासना तब कर पाएगा, जब उसका जीवन सधा हुआ होगा।

आचार्य पूज्य श्री जवाहरलाल जी म.सा. युग दृष्टा थे, युग क्रांत दृष्टा थे। उन्होंने यह कहा है कि श्रमणोपासक यदि श्रमण की तरह जीवन नहीं

जीयेगा तो वह श्रमण की उपासना कैसे कर पाएगा? आप यदि सचित्त पदार्थों का सेवन करोगे तो अचित्त, शुद्ध आहार साधुओं को कहां से मिलेगा? आप रात्रि भोजन करेंगे तो साधुओं को प्रासुक आहार-पानी कैसे उपलब्ध होगा? इसका मतलब यह नहीं कि साधुओं को बहराने के लिए हम जल्दी खा लें। यह गलत हो जाएगा। यह तरीका सही तरीका नहीं होगा। हमारी चर्या में अपने आप परिवर्तन आ जाए। हम अपनी चर्या को परिवर्तित करें। बाहर के सुख, ऐश्वर्य से वह अपने आप को अलग करे।

उत्तराध्ययन सूत्र के 29वें सूत्र में भगवान से पूछा गया कि धर्म श्रद्धा का परिणाम क्या होगा? धर्म श्रद्धा का लाभ क्या होगा? भगवान ने कहा, अब तक खुले रूप से जी रहा था, स्वच्छंद जी रहा था। जो मन चाहे, कर रहा था। मन चाहे वैसा खा रहा था, पी रहा था, मौज-मस्ती में जी रहा था। पांच इंद्रियों के विषयों का पूर्ण रूप से सेवन कर रहा था, प्रचुर रूप से सेवन कर रहा था। किंतु जैसे ही धर्म का भाव भीतर उतरता है तो दिशा बदल जाती है। अब खाना-पीना, मौज-मस्ती, एशो-आराम मेरा लक्ष्य नहीं है। खाना तो खाना पड़ेगा, पर अब वह खाना जीवन जीने के लिए होगा। वस्त्रादि का ग्रहण भी जीवन निर्वाह के लिए है। मकान की आवश्यकता रहने के लिए हो।

गृहस्थ को अपना जीवन जीने के लिए आरंभ-समारम्भ तो करना पड़ता है, किंतु उसमें रुचिशीलता नहीं रहती। वह लाचारी समझता है। वह क्या सोचता है? वह सोचता है कि वह दिन मेरा धन्य होगा, जिस दिन मैं आरंभ परिग्रह का त्याग करूंगा। बोलते तो आज भी हैं। बोलते हो ना? 'आरंभ परिग्रह तज करी...' वह दिन धन्य होगा, जब मैं आरंभ परिग्रह का त्याग करूंगा, किंतु यह केवल वचन है। अन्तर् भाव क्या है? आरंभ को बढ़ाना या परिग्रह को बढ़ाना? बढ़ाना या घटाना? परिग्रह को घटाना या बढ़ाना? आज कहीं से ऑफर आ जाए कि इतना-इतना माल चाहिए और आपको यह मुनाफा मिलेगा। हम उसके लिए तैयार रहेंगे या पीछे हो जाएंगे? (प्रतिध्वनि- तैयार रहेंगे) तैयार रहेंगे तो स्पष्ट है कि हम बोलते जरूर हैं, क्योंकि हमको बोलाया जा रहा है, बोलाया गया है। हमें प्रेरणा की गई है।

हम प्रार्थना में आते हैं तो बोलते हैं। हमको प्रार्थना के समय में बोलाया जाता है कि वह दिन धन्य होगा। हम भी ऊंचे स्वर में बोल जाते हैं, किंतु अन्तर् भाव जब तक पैदा नहीं होता, तब तक 'साया सोखे सु रज्ज माणे

विरज्जइ' कि जो बात है, वह फलीभूत नहीं होगी। वह फलीभूत कब होगी? परिग्रह के प्रति मेरा कोई रुझान नहीं है। आनन्द श्रावक ने भगवान से मर्यादा ली कि चार करोड़ सोनैया व्यापार में लगा रखे हैं, उससे ज्यादा और धन व्यापार में नहीं लगाऊंगा। जो धन है, उसका जो मुनाफा होगा, उसको पास नहीं रखूंगा। उसको जोड़कर नहीं रखूंगा।

अमर नगर। अमर मतलब जहां मृत्यु नहीं होती है, जो कभी मरता नहीं है। (सभा में ध्वनि- बावजी! ये तो एक नाम है) नाम है। नाम है, नाम अलग है और काम अलग है? इस अमर नगर में ऐसे कितने अमर लोग हैं, जो यह विचार करके चलते हैं कि व्यापार में जो भी मुनाफा होगा, उसको जोड़ना नहीं? रोज-रोज हमको नहीं मालूम पड़ेगा तो साल में एक दिन जब मालूम पड़ता है, तब साल के उस दिन मुनाफे का पैसा नहीं बचेगा। साल भर में जो मुनाफा हुआ, उसका क्या करना है? (प्रत्युत्तर- काम में लगाना) उसको काम में लगाना, काम में लगाएंगे। किसी भी काम में लगाओ, पर हिंसा के किसी काम में नहीं लगाना। उसको लगाएंगे तो सही रूप में ही लगाएंगे। मूल बात है कि उस पैसे को जोड़ना नहीं। यहां पर कौन-कौन है? (दो-तीन श्रावकों ने हाथ खड़े किए) नहीं जोड़ते हो आप लोग? (एक श्रावक बोलता है- मेरे परिग्रह की सीमा रखी हुई है) अरे! सीमा नहीं। इस वर्ष जो मुनाफा होगा, उसको व्यापार में एड नहीं करना। (दो श्रावकों ने अपने हाथ खड़े किए) बहुत बढ़िया।

जैसे मैंने व्यापार में कुछ पैसा लगा रखा है तो उससे ज्यादा पैसा नहीं लगाना। सीमा की बात है, यदि मैं व्यापार कर रहा हूं। ब्याज में पैसा दे रखा है, जो भी ब्याज में पैसे आएंगे, उसको आगे नहीं बढ़ाना है। आनन्द श्रावक ने यह नहीं रखा था कि 5 लाख या 10 लाख की मर्यादा। उसने यह मर्यादा की थी कि उनके पास जितनी संपत्ति है, उससे आगे नहीं बढ़ाना। किसी के पास आज संपत्ति है 20 लाख की और वह नियम करके सीमा रखते हैं 1 करोड़ की। अब सीमा एक करोड़ की है और पास में 20 लाख हैं तो 80 लाख के बीच में झूलता रहेगा। 80 लाख मन में झूलेगा या नहीं झूलेगा? (प्रतिध्वनि - झूलेगा) 80 लाख पूरा करने के लिए मन झूलेगा। 20 लाख पूंजी है और 20 लाख सीमा रखी है तो अब मन कहां झूलेगा? उससे आगे बढ़ना नहीं। जीवन निर्वाह हो रहा है तो किसलिए आरंभ करना? किसलिए परिग्रह का पोषण करना?

यह दृष्टि किसकी होती है? यह दृष्टि श्रमणोपासक की होती है। यह

दृष्टि किसकी होती है? जिसका रुझान धर्म में हो गया, धर्म में विश्वास हो गया, धर्म में श्रद्धा हो गई, उसकी यह दृष्टि बनती है कि नहीं अब व्यापार में चाहे मुझे कितना भी विस्तार करना पड़े, एक निश्चित से अधिक धनराशि व्यापार में नहीं लगाऊंगा। जैसे आनन्द श्रावक ने 4 करोड़ सोनैया लगाए तो उसका रोटेशन होगा। उसमें और एड नहीं करूंगा। उसका जितना मुनाफा होगा, वह मुनाफा खर्च में जाएगा। आनन्द श्रावक ने सोच-समझकर प्रतिज्ञा की। वह प्रतिज्ञा संतोष ज्ञापित करती है। उसमें तृप्ति की झलक है।

मैं यहां आज इस हॉल में बैठा हूं। मेरे ऊपर छत कितनी ऊंची बनी हुई है? मेरी हाइट उतनी नहीं है। छत उससे काफी ऊंची बनी है। वैसे ही परिग्रह परिमाण करने वाले की छत इतनी ऊंची है कि उस छत तक पहुंचा ही कैसे जाए? वह जब इतना लंबा होगा, तब पहुंचा जा सकेगा। आनन्द श्रावक ने अपनी इच्छाओं पर रोक लगा ली। 4 करोड़ सोनैया मेरे व्यापार में लगा हुआ है। इससे ज्यादा मैं नहीं लगाऊंगा। चार करोड़ सोनैया लगे हुए हैं, उससे जो भी मुनाफा होगा, कितना होगा? वह अनुमानित मुनाफा चार करोड़ सोनैया का होगा, सालभर का वह मुनाफा, सालभर में ही खत्म करना है। सालभर में उसे खर्च करना है। उसको पास में रखना नहीं है। बहुत सोच-समझकर उन्होंने प्रतिज्ञा ली थी, मर्यादा की थी। इस मर्यादा से फायदा क्या है? फायदा यह हुआ कि अब उससे आगे उनका मन झूलता नहीं है। वहीं पर मन स्थिर है। ऐसी मर्यादा करने वाले श्रमणोपासक का मन भी स्थिर रहेगा या झूलेगा? (प्रतिध्वनि- स्थिर रहेगा) वह चक-डोलर में झूलेगा नहीं, वह स्थिर रहेगा। पानी में उठने वाली तरंगों की तरह उसमें तरंगें नहीं उठेंगी। वह शांत रहेगा। उसे छत तक स्वयं को पहुँचाने की मशक्कत नहीं करनी पड़ेगी।

यह समता का रूप है। श्रमण भी समता की ओर अग्रसर होने वाला होता है और श्रमणोपासक भी उसी समता का आधार लेकर चलता है। उसी ओर उसको अग्रसर होना होता है, किंतु उस बीच उस पर एक बहुत बड़ा दायित्व होता है, वह होता है - श्रमणों की रक्षा का। साधु जीवन की सुरक्षा कैसे हो? साधु के शरीर की रक्षा करने वाले तो बहुत लोग हैं, बहुत सारे लोग हैं। साधु बीमार हो जाए तो इलाज कराने के लिए बहुत लोग तैयार हैं कि बावजी! मुझे मौका दो। मैं दवाइयां लाकर दूंगा। मैं डॉक्टर को लाकर इलाज करवाऊंगा। इलाज कराने वाले, शरीर की सुरक्षा चाहने वाले हजारों लोग मिलेंगे, किंतु संयमी जीवन की

रक्षा करने वाले कितने हैं? यह कि हम साधु जीवन में दोष नहीं लगाएंगे।

म.सा. गोचरी के लिए घूम रहे हैं तो उसमें निरवद्य दलाली कर सकते हैं, किंतु ऐसा नहीं कि म.सा. उस गृहस्थ के घर गए, उस घर गए। कई जगह घूमे, कहीं पर धोवन पानी नहीं मिला तो ऐसा नहीं कि घर में राख डालकर, बरतन धोकर उसका धोवन पानी बनाकर रख दो। ऐसा नहीं करना। यदि उनको धोवन पानी नहीं मिलेगा तो वे चौविहार कर लेंगे, क्योंकि साधु बने हैं तो पहले सोच-समझकर बने हैं। अपने माइंड को फ्रेश करके साधु बने हैं कि हो सकता है कि कभी हमको चौविहार करना पड़ जाए। भरी गरमी में भी शायद कभी पानी नहीं मिले तो वह तैयारी करके चलता है। वह घर से निकला, तभी उसी तैयारी से निकला है? वह बिना तैयारी के नहीं निकला है। यह मानसिकता पहले बना दी जाती है। साधु बनने से पहले उसे बता दिया जाता है।

साधु जीवन बहुत आसान है, बहुत सरल है। मन उसमें रम गया तो साधु जीवन जैसा दूसरा कोई जीवन है ही नहीं। साधु जीवन जैसा कोई सरल जीवन है ही नहीं। यदि नहीं रमा तो उससे कठिन दूसरी अवस्था नहीं है, उससे ज्यादा दिक्कत की अन्य अवस्था नहीं है। नहीं रमे तो 'दुविधा में दोनों गए, माया मिली न राम' की हालत हो जाती है। 22 परीषह, ये कठिनाइयां हैं। भोजन-पानी की कठिनाई, आहार-पानी की कठिनाई, गरमी-सरदी में कठिनाई, वहां सारी कठिनाइयां होंगी। न ए.सी. मिलेगा, न कूलर मिलेगा। और न ताप के लिए हीटर ही मिलेगा। सरदी है तो उन्हीं कपड़ों में काम चलाना है। ऐसा भी नहीं कि सरदी में अलग कपड़ा है और गरमी आ गई तो उसे परठ दो। अन्य ले लो। यह नहीं चलेगा। यह सावधानी वह पहले से अपने दिमाग में लेकर चलता है। घर छोड़ने से पहले उसे समझ लेना होता है, इसलिए यदि कदाचित् मुनि को भोजन, पानी नहीं मिले तो श्रावक, श्रमणोपासक दोष लगाकर आहार दिलाने का पक्षधर नहीं हो। वह निर्दोष दलाली कर सकता है।

बलदेव जी मुनि बने, बलराम जी मुनि बने और जंगल में रहने लगे, क्योंकि गांव में आए तो गड़बड़ हो गई। उस जंगल में एक मृग मुनि के प्रति भक्ति रखने वाला इधर-उधर देखता है। जंगल में कोई लकड़ियां काटने के लिए आया, उसके पास यदि भाता है, खाना है तो वह मुनि को जाकर निवेदन करता। वह अपनी भाषा में इशारा करता। मुनि समझ जाते और वे भिक्षा के लिए पधार जाते। वह निरवद्य दलाली है, वह शुद्ध दलाली है, वह निर्दोष दलाली

है। दलाली करने की मनाही नहीं है, किंतु कहीं आहार बनवा देना, कहीं पानी बना देना, ऐसा कार्य श्रमणोपासक नहीं करेगा। साधु जीवन की पालना में वह सहयोगी बनेगा, साधुओं के लिए नए संकट का रास्ता खड़ा नहीं करेगा। ध्यान से सुन रहे हो ना?

हम कहते हैं कि वैज्ञानिक युग है। आज के युग में साधु जीवन के लिए नए परीषह खड़े हो गए हैं। पुराने जमाने के परीषह कुछ और थे, किंतु आज नए परीषह खड़े हो गए हैं, क्योंकि हमारी सोच अलग बन गई। ऐसे समय में श्रमणोपासक अपनी सोच को सुलझाए रखता है। वह सोच को उलझाता नहीं है। वह सोच को साफ-सुथरा रखता है कि मैं श्रमणों की उपासना करने वाला हूं, उनके शरीर की उपासना करने वाला नहीं। उनकी साधना की उपासना करने वाला हूं। उनके संयमी जीवन की उपासना करने वाला हूं। वह संयमी जीवन यदि दूषित हो गया तो फिर क्या बचेगा?

आचार्य पूज्य गुरुदेव श्री नानालाल जी म.सा. ने इस जोधपुर में भी चातुर्मास संपन्न किया था, घोड़ों के चौक में लगभग चालीस साल पहले। वे फरमाया करते थे कि यदि टंकी में जहर घुल गया तो नलों में से पानी कैसा आएगा? (प्रतिध्वनि- जहरीला) टंकी में यदि कोई जहर घोल रहा हो तो हम उसके सहकारी होंगे या उसको इनकार करेंगे, उसको रोकेंगे? (प्रतिध्वनि- उसे रोकेंगे) यदि कोई टंकी में जहर घोलने का काम करे, हम देखें तो क्या हम यह सोचेंगे कि अपने को क्या करना है? घोल रहा है तो घोलने दो। शायद ऐसा नहीं सोचेंगे, क्योंकि आपको ज्ञात है कि कल मेरे घर में पानी आएगा तो कैसा पानी आएगा? यदि टंकी के पानी में जहर घुला हुआ है तो घर में पानी भी वही आएगा। आप नहीं चाहोगे कि आपके घर में जहरीला पानी, जहर मिला हुआ पानी आए।

वैसे ही साधु जीवन जल की टंकी है, पानी की टंकी है। उसमें यदि दूषण हो गया, वह यदि दूषित हो गया, उस टंकी का पानी दूषित हो गया फिर महाराज के मुंह से जो भाषा निकलेगी, वह कैसी निकलेगी? 'जैसा खाए अन्न, वैसा होए मन' उनका मन कैसा बनेगा? (प्रतिध्वनि- जहरीला) और 'जैसा पीये पानी, वैसी होए वाणी' बताओ, फिर उनके मुंह से उपदेश कैसा निकलेगा? फिर भक्तों को राजी रखने का उपदेश निकलेगा या सिद्धत्व की ओर आपको सही दिशा दिलाने वाला उपदेश निकलेगा? साधु की सुरक्षा रहेगी, साधु जीवन की सुरक्षा रहेगी तो निश्चित रूप से हमें शुद्ध उपदेश मिलेगा। एकदम सही

उपदेश मिलेगा। अन्यथा, अन्यथा क्या होगा? (जोर देकर) क्या होगा? 'हूँ ना कहूँ तेरी, तू ना कहे मेरी, और चापने दे मजेदार हाथ फेरी' ऐसी स्थिति में क्या होगा? सोच सकते हैं! वह लुटिया डुबाएगा या उबारेगा? सोचने की बात है।

यह श्रमण और श्रमणोपासक की व्याख्या है। जो भगवान तीर्थंकर देवों ने चार तीर्थ की स्थापना की, उसे बहुत ऊंचाई पर लाएं। ऐसा नहीं कि हम तो खुले हैं, हम तो गृहस्थ हैं। हम तो कुछ भी कर सकते हैं, हम तो कुछ भी बोल सकते हैं। नहीं, नहीं। ऐसा सोचना भी मत। दिमाग में हो तो भी निकाल देना। मुझे ऐसा करना है जो धर्म को लजाने वाला नहीं हो। धर्म को लजाने वाला कोई कार्य मुझे नहीं करना है। श्रमणोपासक धर्म को लजाने वाला कार्य नहीं करेगा। धर्म की जाहोजलाली जिससे होती है, उसकी सोच, उसकी समझ, उसका कार्य उसी प्रकार का होगा।

आज हम देखें कि हमारा स्तर कहां आ गया? एक युग, एक जमाना था। हम कहानियों में पढ़ते हैं कि श्रावक की जुबान लोहे की लकीर जैसी होती थी। राजाओं के सामने यदि वह बयान दे दे तो बाकी सारे बयान खारिज हो जाते थे। कहा जाता कि यह श्रावक है। यह झूठ नहीं बोलता। यह सही कह रहा है। उसकी बात को स्वीकार किया जाता था। और आज? आज हमारे बच्चे भी हमारी बात पर भरोसा करते हैं या नहीं करते हैं? सोचो आप। कहां थे हम और कहां आ गए? हम कहां रह गए? हम कहां थे? राजा लोग भी, न्यायालय में न्यायाधीश भी उनका लोहा मानते थे और आज हमारा बच्चा हमारे पर विश्वास नहीं कर रहा है। क्यों नहीं कर रहा है? क्यों नहीं कर रहा है? (थोड़ा आवाज पर जोर देते हुए) इसका उत्तर क्या है?

बोलो मित्रो बोलो, किसने जैन धर्म बदनाम किया।
जैनी बनकर जैन धर्म का हमने कितना नाम किया।

बोलो मित्रो बोलो, किसने जैन धर्म बदनाम किया? किसने किया? किसी बाहर के आदमी ने आकर किया क्या? (प्रतिध्वनि- नहीं) भारत में किसी विदेशी ने आकर गड़बड़ कर दी? (प्रतिध्वनि- नहीं) जैनियों में हम ही गड़बड़ी करने वाले हैं या कोई दूसरे आकर गड़बड़ी करने वाले हैं? (प्रतिध्वनि- हम ही गड़बड़ी करने वाले हैं) और यह गड़बड़ी क्यों हुई? आरंभ और परिग्रह की लालसा से गड़बड़ी हुई, स्वार्थ से हुई या धर्म भावों से हुई? यदि धर्म की बात 'सायासोक्खेसु रज्जमाणे विरज्जइ', हमारे जीवन में उतर गई होती तो हमें कभी भी

यह दिन नहीं देखना पड़ता। बहुत-से जैनी होंगे, किंतु जैनत्व में जीने वाले कितने हैं?

हम तो कई बार बोलते हैं कि इस जमाने में शुद्ध पंच-महाव्रतधारी साधु तो मिल जायेंगे, किंतु एकदम बारह व्रतों की पूरी आराधना करने वाले श्रावक कितने मिलेंगे? बहुत कम मिलेंगे। नहीं मिलेंगे, यह तो हम नहीं कहेंगे। मिलेंगे, पर बहुत कम मिलेंगे। ऐसा नहीं है कि नहीं मिलें, क्योंकि भगवान महावीर ने कहा है कि मेरा शासन 21 हजार वर्ष तक चलेगा। इसलिए उस प्रकार के श्रावक भी मिलेंगे, किंतु उन श्रावकों की संख्या बहुत कम मिलेगी, बहुत कम मिलेगी। बहुत ही कम। जो संसार में रहता है, किंतु संसार में डूबता नहीं है। पानी में, नदी में नौका रहती है, किंतु डूबती नहीं है, वह पार लंघाने वाली होती है। वैसे ही वह श्रावक संसार में रह रहा है, संसार में रहते हुए कइयों को धर्म की ओर अग्रसर करता है। धर्म से हटाने का काम वह नहीं करेगा। वह यह समझ रहा है कि मेरे कर्म अनुकूल नहीं हैं, मेरा वैसा क्षयोपशम नहीं है। जिससे मैं साधु नहीं बन पा रहा हूं किंतु धन्य होगा वह दिन। कौनसा दिन?

वो दिन धन होसी, जद बणस्यूं मैं अणगार,
वो दिन धन होसी।

(सभा में बैठे लोग गीत गाने लग जाते हैं, उनको रोकते हुए) थोड़ा रुको। मुझे बोलने दो।

वो दिन धन होसी, वो दिन धन होसी।
जद बणस्यूं मैं अणगार, वो दिन धन होसी।
वो दिन धन होसी, वो दिन धन होसी।।

इस गीत में थोड़ा अलग है। कुछ लोग अलग भी गाते हैं, इसलिए मैंने कहा कि थोड़ा मुझे गाने दो। अब हम क्या बोलेंगे?

वो दिन धन होसी, वो दिन धन होसी।
जद बणस्यूं मैं अणगार, वो दिन धन होसी।

एक बार और सुनो। 'वो दिन धन होसी, जब बणस्यूं मैं अणगार, वो दिन धन होसी।' बाकी तो सोने का सूरज नहीं उगता है। कभी न कभी जिस दिन मैं साधु बनूंगा, उस दिन तो मेरे लिए सोने का सूरज ही उगेगा। उगेगा या नहीं उगेगा? (प्रतिध्वनि- उगेगा) बाकी दिन कितने भी हो, साल के 365 दिन मेरे किस काम के? वे दिन मेरे किस काम के? मेरे तो वह दिन धन्य होगा। कौनसा

दिन धन्य होगा? जब मैं करोड़पति बन जाऊंगा? सौ करोड़ की संपत्ति हो जाएगी तब? अरबपति बन जाऊंगा तब? भारत का सबसे पहला अमीर नागरिक कि इसके पास सबसे ज्यादा संपत्ति है, तो वह दिन धन्य हो जाएगा?

चक्रवर्तियों का दिन भी धन्य नहीं बना। चक्रवर्ती की पदवी भी मिल गई तो भी वह दिन धन्य नहीं बना। उनके लिए कौनसा दिन धन्य बना? उसके लिए कौनसा दिन धन्य हुआ? जब वे भी साधु जीवन को स्वीकार करते हैं, वह दिन उनका धन्य बन जाता है। धन्य बन गया। श्रावक कौनसे झूले में झूलता है।

वो दिन धन होसी, वो दिन धन होसी।
जद बणस्यूं मैं अणगार, वो दिन धन होसी।

वह वैराग्य के झूले में झूलता रहता है। वह संवेग-निर्वेद के भावों में झूलता रहता है। उसके दिमाग में क्या चलता है? क्या चलता है दिमाग में? नेमीचंद जी क्या चलता है दिमाग में? कितने पैसे बढ़ाने हैं? पिछले साल इतनी आमदनी हुई तो इस साल कितनी होनी चाहिए? क्या चलता है? क्या श्रमणोपासक के मन-मस्तिष्क में ऐसा भाव चलना चाहिए? नहीं, उसके मन में विचार चलते हैं कि धर्म को कैसे बढ़ाऊं? धर्म कैसे जन-जन में फले? कैसे लोगों को धर्म की तरफ आकर्षित करूं और कैसे धर्म मार्ग में लगाऊं? यह सोच श्रमणोपासक की होती है। किसकी होती है? (प्रतिध्वनि- श्रमणोपासक की) श्रमणोपसक की होती है यह सोच। अपने ध्यान में रखना।

श्रमण श्रम करता है समभाव के लिए और श्रमणोपासक उसका पथानुगामी होता है। उसी का अनुगमन करने वाला होता है। अनुगमन करते हुए वह अभी साधु नहीं बन पा रहा है, किंतु साधुता के लिए प्लेटफॉर्म तैयार करने हेतु तत्पर रहता है। उस प्लेटफॉर्म को सुरक्षित रखने की उसकी जिम्मेदारी होती है।

मैं कई बार बोला करता हूं कि भगवान महावीर ने आप लोगों पर बहुत बड़ा विश्वास किया है। कितना बड़ा विश्वास किया? कितना बड़ा, क्या विश्वास किया? क्या विश्वास किया? आपको कहीं यात्रा के लिए जाना है, कहीं कुछ करने के लिए जाना है और अपने घर की संपत्ति आप किसी को सौंप कर जाना चाहते हैं तो किसको सौंपेंगे? जिस पर आपको भरोसा होगा। जिस पर आपका अपार विश्वास होगा, उसको सौंपेंगे या हर किसी को ही सौंप देंगे कि ले भाई, रख लेना? किसको सौंपकर जाओगे? आजकल तो लाख-दो लाख भी हर

किसी को देते नहीं हैं कि क्या पता वापस मिलेंगे या नहीं मिलेंगे? अपनी सारी संपत्ति सौ करोड़ की तो किसको सौंपकर जाएंगे? किसको सौंपोगे? (प्रतिध्वनि- जिस पर विश्वास होगा) जिस पर विश्वास होगा, उसी को ही तो सौंपकर जाओगे ना?

भगवान महावीर ने साधुओं की जिम्मेदारी किसको सौंपी? जानते हो ना कि भगवान महावीर ने आप पर विश्वास किया। किया या नहीं किया? (प्रतिध्वनि- किया) तब साधुओं की रक्षा करने का दायित्व किसका हुआ? (प्रतिध्वनि- श्रावक का) और रक्षक ही भक्षक बन जाये, बाड़ ही उठकर खेत को खाने लगे तो क्या होगा? यह बताओ कि भगवान के साथ विश्वासघात करने वाला बनना है या विश्वास कायम रखने वाला बनना है? हमको क्या करना है? विश्वास को बनाए रखना है या भगवान के विश्वास की घात करना है? बोलो जोर से। (प्रतिध्वनि- विश्वास को बनाए रखना है) आवाज मजे की नहीं आई अभी तक। पूरे जोश और पूरे दमखम से बोलो, यदि मन की बात हो तो ही बोलना। मन की बात नहीं हो तो मत बोलना। झूठ मत बोलना, सामायिक में बैठे हो। क्या करना है? भगवान के विश्वास को बनाए रखना है या विश्वास का घात करना है? (प्रतिध्वनि- विश्वास को बनाए रखना है) यह विश्वास को कायम रखने का काम कौन करता है? श्रमणोपासक उसे कायम रखता है। श्रमणोपासक उस विश्वास को कायम रखने का काम करता है। हमें ऐसा ही लक्ष्य बनाना है।

इतना ही कहते हुए विराम।

दिनांक-14.11.2019
जैन स्थानक, अमर नगर
जोधपुर

10

चाह नहीं तो राह सही

धर्म जिनेश्वर गाऊं रंग शुं भंग, म पडशो हो प्रीत जिनेश्वर...

मन अनियंत्रित है। जो व्यक्ति अनियंत्रित मन से कुछ कार्य करने लगता है तो उसमें सफलता प्राप्त नहीं कर पाता। बार-बार उसके सामने कठिनाई आती है, वह पीड़ित हो जाता है। उसे बड़ी पीड़ा होती है कि मैं अपने मिशन में, अपने कार्य में सफल नहीं हो पा रहा हूं। इसी बात को स्तुति के माध्यम से कहा है कि भगवान की प्रीत में विघ्न पैदा नहीं हो।

विघ्न कौन पैदा करता है? विघ्न पैदा करने वाला कौन है? हमारा मन, हमारी बुद्धि, हमारी वृत्ति ही विघ्न पैदा करती है। उसी से विघ्न पैदा होते हैं। वे विघ्न पैदा नहीं करें, इसके लिए क्या उपाय हो सकता है?

मन तुम्हारा लग जाए। मन को ऐसा कार्य सौंपा जाए जिसमें वह तन्मय हो जाए। वहां यदि उसकी तन्मयता बन जाती है तो फिर वह विचलित नहीं होगा। तन्मयता तब होती है, जब हमारी रुचि हो। सबसे पहले आवश्यक हो जाता है कि हम अपनी रुचि को पैदा करें। जैसे पैसे कमाने की रुचि है, जैसे मान-सम्मान पाने की रुचि है, वैसी धर्म-आराधना के लिए रुचि पैदा हो जाए। अन्यथा कई बार हम साज को सजाते ही रह जाते हैं और संगीत पैदा हो ही नहीं पाता। इसे हमको थोड़ा समझना है।

संगीत जहां होता है, वहां तबले, हारमोनियम आदि साधनों का उपयोग किया जाता है। वे ढीले हों तो उसको कसा जाता है, ठीक-ठाक किया जाता है। साज को सजाने में ही यदि हमारा पूरा समय बीत जाये तो संगीत पैदा कब होगा? यदि आज हम धार्मिक क्षेत्र पर दृष्टिपात करते हैं तो लगता है कि अधिकांश समय हमारा साज सजाने में ही बीता है। बीत रहा है। यह क्रिया करो, वह क्रिया करो, ऐसी क्रिया करो। किसलिए क्रियाएं करना? सामायिक किसलिए

करना? किसलिए करना सामायिक? क्या उत्तर होगा हमारा? (प्रतिध्वनि- समभाव की साधना के लिए) समभाव की साधना के लिए।

दूसरा प्रश्न होता है कि समभाव हमारे में आया कितना? हमने समभाव को कितना साध लिया? एक प्रश्न हमारा है कि सामायिक किसलिए की जाती है? तो उत्तर है, समभाव के लिए। दूसरा प्रश्न कि हमने इतने वर्षों से सामायिक की है। हमने समभाव को कितना साध लिया? एक व्यापारी, एक दुकानदार, एक महाजन दुकान लगाता है। एक साल, दो साल, तीन साल यदि मुनाफा नहीं होता है तो उसी में खपता रहेगा या और कुछ नया सोचेगा? (प्रतिध्वनि- नया सोचेगा) तीन साल जिनको पैसे दिए, ब्याज नहीं आ रहा है और पैसे वहां लगाने की बात करेगा या वहां से पैसे निकालने की बात करेगा? (प्रतिध्वनि- वहां से निकालने की बात करेगा) हां, वहां पर हमारी बुद्धि बहुत चलती है। वहां पर हम बहुत सोचते हैं, किंतु सामायिक करते हुए, साधना करते हुए, उपवास, बेला, तेला आदि करते हुए भी हमारे भीतर समभाव नहीं आ रहा है। कौनसा पुरजा खराब है, कौनसा स्क्रू ढीला है, कौनसा तार बराबर काम नहीं कर रहा है, क्या इसकी कभी हमने खोज की है? यह कि मेरा मन क्यों नहीं सध रहा है?

समभाव का अर्थ क्या है? समभाव का अर्थ है मन के ऊहापोह शांत होना। मन में ऊहापोह नहीं होना। अपने में स्थित हो जाना। बाहर के प्रभाव से अप्रभावित रहना। जैसा मैं कह रहा हूं, वैसा ही कर रहा हूं। जैसा सोचता हूं, वैसा ही करता हूं। कथनी और करनी में भिन्नता नहीं है। जहां कथनी और करनी में भिन्नता नहीं होती है, वहां समभाव सधता है। 'मनस्य एकं, वचस्य एकं, कार्मण्येकं महात्मानाम्।' नीति में बताया गया कि मन एक है, वचन एक है, काया एक है। जैसा मन में आया, वैसा ही वचन में आया और जैसा वचन में आया, वैसी ही काया की प्रवृत्ति हुई। मन, वचन, काया तीनों के एकदिशानुगामी होने को समभाव कहते हैं। वह महात्माओं का लक्षण है, महान आत्माओं का परिचायक है। मन कहीं और जा रहा हो, वचन से कुछ और ही बोल रहा है, मन में कुछ और है तो यह दुरात्माओं का लक्षण है।

ऐसी प्रवृत्ति हमारे मन को सुकून देने वाली नहीं बनेगी। समभाव लाने वाली नहीं बनेगी। अधिकांशतया हम लोग क्या कर रहे हैं, यह तो हमें ही सोचने की आवश्यकता रहेगी, किंतु यह परीक्षण हमें अवश्य करना चाहिए कि मेरे भीतर एकरूपता का स्वरूप प्रकट हुआ या नहीं हुआ? मेरी कथनी-करनी में

कोई अंतर तो नहीं आ रहा है? यदि आ रहा है तो मुझे इसे दूर करना है। मैंने उसके लिए अब तक क्या प्रयत्न किए, इसकी भी समीक्षा करनी चाहिए। मैंने प्रयत्न किया है या नहीं किया है? यदि नहीं किया है तो मुझे करना है। यदि किया है, उसके बावजूद दूरी दूर नहीं हो रही है तो मुझे प्रयत्न करना चाहिए। मुझे समीक्षा करनी चाहिए कि मेरे उपायों में ऐसी क्या खामी रही है, जिसके कारण से एकरूपता नहीं बन पा रही है?

इस प्रकार हम अनुप्रेक्षा, समीक्षा करेंगे तो उस दिशा में आगे बढ़ पाएंगे, अन्यथा एक सामायिक करनी है। उसमें कुछ माला गिन ली, कुछ प्रार्थना कर ली और हमारी सामायिक का समय पूरा हो गया। हमने सामायिक पाल ली। यह हमारा रूटीन चलता रहता है। यह रूटीन साज-सज्जा जैसा हुआ। इसका प्रभाव हमारे भीतर क्या आया? हमारे वचन में, काया की एकरूपता बनी या नहीं बनी? यदि नहीं बनी, वह जैसा है, वैसा ही चल रहा है, मैदान में घोड़े जिस प्रकार से दौड़ रहे हैं, उसी प्रकार से मन का घोड़ा आज भी दौड़ रहा है, फिर हमने इतने वर्षों में साधना का निचोड़ क्या पाया? साधना का परिणाम हमने क्या पाया? हमें क्या मिला? इसलिए आनन्दघनजी स्तुति करते हुए परमात्मा से कह रहे हैं कि,

धर्म जिनेश्वर गाऊं रंग शुं भंग,
म पडशो हो प्रीत जिनेश्वर...

हे जिनेश्वर भगवन्! प्रीत के बीच में विघ्न पैदा नहीं हो। मानो परमात्मा प्रभु उपदेश देते हैं कि हे भव्य आत्मन्! विघ्न मेरी तरफ से नहीं है। भक्ति भी तुम्हारी तरफ से है और विघ्न भी पैदा होता है तो तुम्हारी तरफ से ही पैदा होता है। भक्ति भी तुम्हारी तरफ से ही हो रही है और भक्ति में यदि विघ्न पैदा होता है तो वह भी तुम्हारी तरफ से ही हो रहा है। इसलिए इस पर तू ही विचार कर कि इस विघ्न के पैदा होने का कारण क्या है? क्या कारण है?

उस पर विचार करने से मानो यह संकेत मिला कि तुम दूसरी चीज यदि मन में ले आते हो तो वही विघ्न पैदा कारक है। वही तुम्हारी भक्ति को बाधा पहुंचाने वाला है। हम काम एक जगह कर रहे हैं और सोच कहीं दूसरी जगह रहे हैं।

हमने कई बार संतों के मुंह से सुना होगा, व्याख्यानों में सुना होगा कि दो मित्र आपस में विचार करते हैं, एक-दूसरे को प्रेरित कर रहे हैं। एक मित्र

कहता है कि चलो, आज संत-भगंवतों का पदार्पण हुआ है, व्याख्यान सुनने चलते हैं। दूसरा कहता है कि फिल्म अच्छी लगी हुई है, हम वहां चलते हैं। अथवा आज क्रिकेट का मैच है, फाइनल मैच है, वो देखते हैं। ऐसा कुछ होता है ना? (प्रतिध्वनि- हां) कहा कि आज तो टीवी देखने बैठेंगे और व्याख्यान का समय वही है। दोनों के विचार अलग-अलग हैं, दोनों एक-दूसरे को प्रेरित कर रहे हैं। वह कहता है, तुम चलो और वह कहता है तुम मेरे साथ चलो। दोनों एक-दूसरे के विचारों से, प्रेरणा से प्रभावित नहीं हुए। संतों के उधर जाने वाला संतों के उधर गया और फिल्म या क्रिकेट मैच देखने वाला उधर गया। चले तो गए। पहला व्याख्यान में बैठा है, दूसरा सिनेमा हॉल में बैठा है, किंतु दोनों बोरियत में जा रहे हैं। व्याख्यान में आने वाले को व्याख्यान रास नहीं आ रहा है और फिल्म देखने वाले को फिल्म रास नहीं आ रही है। एक व्याख्यान में बैठा तो जरूर है, पर सोचता है कि मित्र ने कही थी फिल्म देखने की बात। अच्छी फिल्म लगी है। काश! वहां चला जाता तो यह एक घंटे की बोरियत से बच जाता। अब क्या करूं? अब तो कुछ होगा नहीं। इसलिए समय पास करना है। समय निकालना है, वह समय पास करने के लिए व्याख्यान में बैठा है। उधर, दूसरे मित्र को वहां फिल्म रास नहीं आ रही थी। वह सोचता है, मित्र ने व्याख्यान में चलने का बहुत आग्रह किया था। यदि व्याख्यान में चला गया होता तो यहां मुझे बोर नहीं होना पड़ता। व्याख्यान में चला जाता तो मित्र की बात भी रह जाती और व्याख्यान में कुछ नया सुनने को मिल जाता। पर मैंने उसकी बात नहीं सुनी, मैं यहां आकर बैठ गया। सिनेमा में बैठा है और सोच रहा है व्याख्यान की बात। वहीं, जो व्याख्यान में बैठा हुआ है, वह सोच रहा है सिनेमा की बात।

हम भी सामायिक करते हैं तो सोचते क्या हैं? क्या सोचते हैं? (प्रतिध्वनि- दुकान की) दुकान से निवृत्त हो गए तो क्या सोचेंगे? निवृत्त होने के बाद भी घर की, परिवार की चिंता। लड़के की शादी नहीं हुई है, लड़की की शादी नहीं हुई है तो उसकी शादी करनी है। लड़का दीक्षा लेने के लिए तैयार हो जाए तो? वह भी एक टेंशन हो जाय। उसका भी विचार सामायिक में आ जाएगा या नहीं आ जाएगा? उसे कहां भेजूं, कहीं दूर दिसावर जहां संत-सती न पहुंच पाते हों। ऐसे क्या-क्या विचार नहीं आते होंगे। कुछ नहीं तो घर में चल रही होती विवादास्पद चर्चा, उसकी बात दिमाग में आ जाएगी। घर में कोई जीमणवार होने वाला है, उसके लिए समस्या हो तो वह समस्या आ जाती है। ये सारी बातें या

कभी कुछ तो कभी कुछ याद आ जाती है। इसका मतलब क्या हुआ कि हम जहां जीते हैं, वहां होते नहीं हैं और जहां होते हैं, वहां जीते नहीं हैं। यही दुविधा है। इसको दुविधा कहा गया है। यह दुविधा जब तक बनी रहती है, तब तक समभाव की साधना, समभाव की आराधना या समभाव की प्राप्ति संभव नहीं है।

हमने बहुत बार यह सुना है कि 'दुविधा में दोनों गए, माया मिली न राम।' दुविधा में न माया मिली और न राम मिले। यहां दुविधा में आए, यहां भी दुविधा में रह गए। एक घंटे दूसरा काम करते तो पैसे कमा लेते। वह भी हाथ से चला गया और उधर आत्मा-परमात्मा से जो लिंक जुड़ना था, वह भी नहीं जुड़ पाया। न उधर से लाभान्वित हो पाए और न ही इधर से। इसलिए कहा गया है कि दुविधा में दोनों गए। न तो धन कमा सके, न ही घर को त्याग सके और न ही आत्मा को देख सके।

'एक घड़ी, आधी घड़ी, आधी में पुनि आध, तुलसी संगत साध की कटे कोटि अपराध।' थोड़ा-सा समय भी यदि हम अपनी आत्मा के लिए नियोजित करते हैं और उसके बीच में किसी को आने नहीं देते हैं तो उसका आनन्द कुछ और ही होता है। इसी प्रकार प्रभु भक्ति भी करें, यदि पास में ज्यादा समय नहीं है, एक घंटा नहीं, आधे घंटे का समय भी नहीं है तो 15 मिनट का समय भी सही। वह भी चलेगा। किंतु वह भक्ति ऐसी होनी चाहिए कि उस समय बीच में कोई दूसरा नहीं होना चाहिए। बीच में दूसरा विचार नहीं आना चाहिए। तब 'एक साधे सब सधे' चरितार्थ हो जायेगा।

एक जगह संत गोचरी के लिए गए और देखा कि घर में कोई आवाज नहीं आ रही है। संत ने आवाज लगाई 'घर में कोई है?' आवाज सुनी तो एक हाथ में आरती और एक हाथ में घंटी घुमाती-घुमाती बहन देखती है कि कौन है? ऊपर की मंजिल से देखा, घर में कौन आ गया है? भक्ति कहां हो रही है? आरती कहां पर उतर रही है?

भक्ति करूंगा तेरी सांझ-सवेरे, ध्याऊंगा तुझे ध्याऊंगा
आकर भूला, मन में फूला, तू वादे क्यूं भूला
जग से जोड़ी, मूरख तूने तोड़ी, लगन भगवान से
कि तुझको जाना ही पड़ेगा संसार से।।
ओ मतवाले प्रभु गुण गा ले, तू अपनी जबान से
कि तुझको जाना ही पड़ेगा संसार से।।

मुझे किससे प्रीत जोड़नी थी और किससे जोड़ ली? प्रीत किससे जोड़नी थी? (प्रतिध्वनि- भगवान से) और जोड़ किससे ली? जोड़ किससे ली? भगवान से प्रीत जोड़ने की बात होती है, किंतु हमने प्रीत किससे जोड़ ली? (प्रतिध्वनि- घर से) हमारे लिए यही दुविधा बन जाती है और इसी दुविधा में हम फंस जाते हैं।

भक्ति कैसी होनी चाहिए? इसका एक रूपक पूज्य गुरुदेव फरमाया करते थे कि एक वृद्ध महिला थी। वह वृद्ध भी थी और आंखों से लाचार भी थी। आंखों की रोशनी बराबर काम नहीं कर रही थी। वह वृद्ध महिला दरवाजे के पास के चबूतरे पर बैठी थी। जाती हुई कुछ बहिनों की आवाज कानों में आई तो पूछा- बायां! कठे जा रही हो? तो कहा- व्याख्यान में जा रही हैं। कोई बड़े महाराज आए हैं तो व्याख्यान में जा रही हैं। उसने कहा- मुझे भी व्याख्यान में ले चलो। बोलो बहिनों, अब क्या करना चाहिए? ले जाना चाहिए या नहीं ले जाना चाहिए? वहां पर कुछ बहिन इशारा कर रही थी कि चुपचाप चलो, बोलो मत अन्यथा गले पड़ गई तो इसे भी ले जाना पड़ेगा। ऐसा विचार आपके मन में आता है या नहीं आता है? सच्ची-सच्ची बोलना आप लोग। सामायिक में बैठे हो। झूठ बोलने की जगह नहीं है।

टालने का विचार होता है या नहीं होता है? साथ में ले जाएंगे तो हाथ पकड़ना पड़ेगा। हाथ पकड़कर धीरे-धीरे चलना होगा। बेकार की यह माथा-पच्ची क्यों मोल लेनी? ले जाओ तो वापस लेकर आओ। वे बहिनें बोलती तो नहीं है, पर मुंह पर अंगुली लगा ऐसे इशारा करती हैं कि निकल जाओ। उन बहिनों में एक बहिन ऐसी थी, जिसने सोचा कि ले चलते हैं। हमारा क्या लगेगा? इसके मन में आ गया है। कह रही है तो ले चलते हैं। इस उम्र में संतों की वाणी थोड़ी समझ आ गई तो बुढ़ापा सुधर जाएगा। सुधर जाता है क्या बुढ़ापा? (प्रतिध्वनि- हां, बावजी!) क्यों बुढ़ापा बिगड़ा हुआ होता है क्या? क्यों बिगड़ जाता है बुढ़ापा? संतों की वाणी सुनकर भी बुढ़ापा बिगड़ता है तो बुढ़ापा सुधरेगा कब? बुढ़ापा सिर्फ संतों की वाणी सुनने से सुधरता नहीं है, उस सुनी हुई वाणी को आचरण में लाएंगे तो बुढ़ापा सुधरेगा। आचरण में लाएंगे तो उससे आगे की बात बनेगी। सुनने वाले शूरवीर तो बहुत हैं, उसको आचरण में लाने का प्रसंग आता है तो सारे घोड़े आकर अड़ जाते हैं, फिर घोड़े चलते नहीं हैं। दिमाग के घोड़े चलते नहीं हैं। वहां आकर दुविधा होती है।

व्यक्ति सोच ले कि बेटा सक्षम हो गया, अब जिम्मेदारी बेटे की। जैसा बेटा कहे, वैसा अपने को जीना है। इतने दिन बेटे को मैं चला रहा था। अब बेटा मेरे को जैसा चलाएगा, वैसा चलेंगे। ऐसा होगा तो क्या विवाद होगा? बुढ़ापा सुधरेगा या बिगड़ेगा? बुढ़ापा सुधारना है, पर सुधारे कौन? सुधारने के लिए हमको अपने भीतर की पकड़ को बदलना पड़ेगा। वह बदलने के लिए हम जल्दी तैयार होते नहीं हैं। वह तैयारी नहीं होती है तो वहां टकराहट पैदा होती है। टकराहट पैदा होती है तो चिनगारियां निकलती हैं। किंतु इससे विपरीत दोनों हाथ मिल जाते हैं तो हाथ जुड़ जाते हैं। दोनों हाथ मिलते हैं तो हाथ जुड़ जाते हैं। उस स्थिति में अपने आप सारा काम सही हो जाता है।

उस बहिन ने कहा कि चलेगी तो अपना क्या लेगी? वह अपने पैरों से चलेगी। हमें उठाकर ले जाना तो पड़ेगा नहीं। हमें तो केवल हाथ पकड़कर ले जाना है। कहा, चलो माँ जी। आपको भी ले जाते हैं। माँ जी उसके साथ चली। माँ जी उसके बीच-बीच में कहती है कि आपकी वजह से आज मैं भगवान की वाणी सुन लूंगी, संतों के दर्शन हो जाएंगे। वाणी सुनने को मिल जाएगी। माँ जी व्याख्यान में जाकर बैठ गई। माँ जी व्याख्यान सुन रही थी। अन्य भी कई बहिनें व्याख्यान सुनने में लगी हुई थी। किंतु कुछ बहिनें देखती हैं कि दूसरी बहिनें कौनसी साड़ी पहनकर आई हैं? कौनसे नए आभूषण पहने हैं? हाथ की चूड़ी है तो उसको हाथ लगाकर पूछती हैं। एक-दूसरे के पहनावे को देखती हैं।

वे सारी चीजें कहां पर देखना? म्यूजियम में बहुत सारी चीजें देखने को मिलती हैं। वे सारी चीजें यहां देखने को मिल जाती हैं। कोई बहिन पूछती है कि ये साड़ी कहां से ली? यह साड़ी कौनसी दुकान से लेकर आई? अब भाइयों के तो चादर सफेद की सफेद है। उनके तो अब क्या देखें? भाई तो सामायिक लेकर बैठे हैं तो क्या देखें? थोड़ा अलग कुछ हो तो देखें भी सही, चादर तो सफेद की सफेद, एकदम सफेद है। उनको क्या देखें। बहिनों के देखें तो? रंग-बिरंगी साड़ियां। यह भी देखते हैं कि स्थानक में आयेगी तो दिन में तीन बार में तीन तरह की साड़ी। (सभा में से आवाज- हां बावजी, सही बात है) तीन साड़ी किसलिए? ताकि लोगों को मालूम पड़ेगा कि मेरे पास साड़ियां हैं। लोगों को मालूम पड़ाना होता है तो धर्म कहां आएगा बीच में?

धर्म सरलता में है। दिखावे में, आडंबर में नहीं है। हमने क्या सोच लिया, नया वस्त्र, नया आभूषण पहनकर जाएं, उससे क्या होगा? क्या उससे

उत्पन्न गर्व हमें धर्म में प्रविष्ट होने देगा? हम धर्म में प्रवेश पाएं न पाएं, दूसरों को भी धर्म विमुख करने वाले तो नहीं होंगे? कई बार कई लोग- बहिनें यह देखती हैं कि कौन क्या पहन कर आई है। वहां पर भी कई बहिनों की दृष्टि किधर ही लगी थी। पर उस बुढ़िया की आंखों में रोशनी थी नहीं, अत: उसने यह राग-रंग देखा ही नहीं। उसकी बुद्धि, उसका मन पूरा संत-वचनों को सुनने में लगा हुआ था। संतों ने एक मर्म की बात कही कि यदि सुख पाना है, समाधि पानी है तो त्रिकाल संवर की आराधना करनी चाहिए। तीन काल संवर की आराधना करो। सुबह के समय जब सूर्योदय का समय होता है उस समय यदि आपके पास समय है तो सामायिक की आराधना करें। नहीं तो कम से कम 15 मिनट तक संवर पूर्वक आत्मा-परमात्मा का चिंतन-मनन करना। चाहे जो कुछ करना हो। संवर करो। परमात्मा का स्मरण करो, परमात्मा की भक्ति करो। उस भक्ति में किसी प्रकार की दूरियां नहीं होनी चाहिए। वह भक्ति निखालिस होनी चाहिए। फिर ठीक दोपहर का समय, उस समय भी 15 मिनट का संवर करो। आत्म चिंतन और भक्ति में समय को लगाओ। भक्ति में तन्मय हो जाओ। यदि कुछ नहीं आता है, नवकार मंत्र में अथवा लोगस्स में लीन हो जाओ। लोगस्स भी नहीं आता है तो जो भी स्तुति आ रही है, उस स्तुति में तन्मय हो जाएं। ऐसे तन्मय हो जाएं कि मेरे आस-पास, पड़ोस में क्या हो रहा है कुछ भी पता नहीं पड़े।

पूणिया श्रावक सामायिक में बैठा था। मगध सम्राट श्रेणिक उसके घर पर पहुंच गए, किंतु बंदे को मालूम ही नहीं पड़ा कि मेरे घर में राजा आ गए। वह थी एकाग्रता। वह थी भक्ति। अभी जिसमें लगा है, उसी में लग गया। यह भगवान महावीर के सिद्धांत की बात कि यदि हम सुनना-समझना चाहें तो भगवान महावीर कहते हैं कि जिस कार्य में लग रहे हो, तुम्हारा मन उसी में लगे। पांच अभिगम हम बहुत लोग जानते हैं। पांच अभिगम हैं- सचित्त का त्याग, अचित्त का विवेक, उत्तरासन धारण, मन की एकाग्रता और अंजलीकरण। अंजलीकरण को विधि युक्त वंदन भी कहते हैं। विधिपूर्वक वंदन के साथ पर्युपासना करने की बात है। पर्युपासना का स्वरूप क्या है? जिनकी उपासना कर रहे हैं, मन, वचन, काया, उसी में एकरूप हो जाए। फिर हमें पता ही नहीं पड़े कि मेरे पास आकर कौन बैठे हैं? मैं सामायिक कर रहा हूं तो मुझे मालूम नहीं पड़ना चाहिए कि पास में कोई आकर बैठ गया या कोई उठकर चला गया। इतना जो साधता है, उसको जो भक्ति का आनंद आता है, वह जो भक्ति का आनंद

लेता है, उसे ही मालूम होता है कि भक्ति क्या होती है? फिर वह उसी में लीन रहना चाहेगा।

एक बार गरमी की तपन से कोई ए.सी. रूम में आकर बैठ गया। उसे लगा कि ऐसी भी ठंडक होती है। वह चाहेगा कि मेरे घर में भी ए.सी. लगाऊं। रोज राबड़ी खाने वाला शालिभद्र का जीव, संगम आज खीर खा रहा है। पहले कभी खीर खायी नहीं। आज उस खीर का स्वाद उसको कैसा लगेगा? भविष्य में कभी खीर सामने आए तो उसकी रुचि खाने की बनेगी या नहीं बनेगी? (प्रतिध्वनि- रुचि बनेगी) रुचि बनेगी। वैसे ही यदि धर्म की आराधना करते हुए हमारे भीतर से संगीत निकला है, उसकी हमको अनुभूति हुई हो तो हमारा मन कभी नहीं चाहेगा कि सामायिक करना छोड़ूं। कभी नहीं चाहेगा कि आराधना छोड़ूं। वह आराधना करना चाहेगा। यदि आज वापस वैसा ध्यान नहीं भी लगा हो तो भी उसको विश्वास होगा कि वापस कभी ध्यान लगेगा? वह आराधना में जुड़ा रहेगा, लेकिन जब किसी को उसमें वह चीज मिलती नहीं है, ले-देकर 48 मिनट पास करना होता है तो खींचतान करके, 'नई बात नौ दिन खींची ताणे 13 दिन' पांच, दस, पंद्रह दिन खींचतान करके चला लेता है। किंतु बाद में गति अवरुद्ध हो जायेगी। कहेगा कि आज यह काम आ गया, कल वह काम आ गया। न काम का अंत होगा, न सामायिक का मन ही हो पाएगा।

संत आते हैं तो धर्म स्थानक में कितने लोग आ जाते हैं? और सतियां जी आती हैं तो? सतियां जी आती हैं तो थोड़ा फर्क पड़ेगा और संत-सतियां कोई भी नहीं हो तो? (एक श्रावक बोलते हैं- बंद ही हो जाता है) बंद ही हो जाता है? (दूसरे श्रावक कहते हैं- बंद कैसे होगा? आप जैसे महापुरुष और शूरवीर बैठे हैं तो बंद कैसे होगा?) अरे भाई, हमारे जैसे बैठने से क्या होगा? हम थोड़ी ना बैठे ही रहेंगे। हम देखते हैं कि स्थानक तो निरंतर नए बनते जा रहे हैं, किंतु आराधना करने वाले सिमटते जा रहे हैं।

पहले के श्रावक होते थे पक्के और स्थानक होते थे कच्चे। उन स्थानकों में मिट्टी ऐसी होती थी कि पानी डालो तो वह चूस लेती थी, अब थोड़ा-सा पानी डालो तो? (प्रतिध्वनि- फिसल जाएंगे) इस टाइल पर तो जल्दी नहीं फिसलेंगे। किंतु आजकल टाइल्स कैसी लगाते हैं? इटैलियन, ग्रेनाइट वगैरह और पता नहीं कौन-कौन सी टाइल्स लगाते हैं? उन पर सहसा पानी दिखता ही नहीं है। फिसले तो कमर की हड्डी टूट जाए। तीन महीने रेस्ट,

बढ़िया है आराम मिलेगा। काम नहीं करना पड़ेगा। छुट्टी मिलेगी। स्थानक तो होने लगे पक्के और श्रावक हो गए? (प्रतिध्वनि- कच्चे) आहा! आहा! कैसे बोले हो? दिल से बोले हो एकदम। 'सच्चाई छुप नहीं सकती बनावट के उसूलों से' सच्चाई अपने आप प्रकट होती है। यह कच्चावट क्यों? क्योंकि जो संगीत आराधना से हमारे भीतर पैदा होना चाहिए था, वह नहीं हुआ। हम साज सजाते रह गए, किंतु अपने भीतर संगीत पैदा नहीं कर पाए। संगीत पैदा नहीं हुआ तो बार-बार आने की रुचि पैदा नहीं होती है। बार-बार आने की रुचि पैदा होगी पर तब जब संगीत पैदा हो जाये। यदि वैसा हो गया तो अपने आप रुचि पैदा हो जायेगी।

बच्चों को लुभाया जाता है कि शिविर में जा, पाठशाला में जा। वहां पर यह इनाम मिलेगा, वह इनाम मिलेगा। इनाम दिखा-दिखाकर उसको लाने की कोशिश कर रहे हैं। इससे हानि भी बहुत है, नुकसान भी बहुत है। जैसे ही आपका पुरस्कार बंद हुआ कि बच्चों की उपस्थिति घट जायेगी। घटेगी या बढ़ेगी? (प्रतिध्वनि- घटेगी) यह लोभ-लालच धर्म नहीं है। लोभ पाप है या पुण्य है? (प्रतिध्वनि- पाप) हम लोभ जगा रहे हैं या नहीं जगा रहे हैं? हम लोभ दे रहे हैं या क्या कर रहे हैं? किंतु मार्केट ही वैसा बन गया है। नहीं तो बच्चे आएंगे ही नहीं। अभी हम लोभ का आश्रय ले रहे हैं, किंतु लोभ जगाने के पीछे भाव है कि उन्हें कुछ धर्म का बोध हो जाए। इस बहाने उनको धर्म का बोध हो जाए।

गुरुदेव फरमाया करते थे कि मां अपने बच्चे को घी खिलाना चाहती है, किंतु उसका घी खाने का मन नहीं होता। वह कहता है कि मेरे से नहीं खाया जाएगा। माता ने उसको हलवा बनाकर दे दिया। खिचड़ी में डालकर अच्छी तरह घोटकर दे दिया तो उसने खा लिया। घी अंदर चला गया या नहीं चला गया? (प्रतिध्वनि- चला गया) क्या हम भी प्रयत्न यह कर रहे हैं कि चलो, इस बहाने से घी अंदर चला जाए। थोड़ा बोध प्रकट हो जाए, किंतु हकीकत में लोभ की दिशा यदि पकड़ ली, तो वह नुकसान की बात बनेगी। होता है और बहुत बार यही होता है कि लोभ की दिशा जल्दी पकड़ता है, बोध की दिशा पकड़ते-पकड़ते पकड़ता है। जल्दी नहीं पकड़ता। आदमी लोभ को पकड़ लेता है, किंतु बोध को पकड़ने वाले बहुत कम होते हैं।

उस वृद्ध माँ जी, जिसकी नेत्र ज्योति बराबर नहीं थी, उसने सुना तीसरी संध्या सूर्यास्त के समय संवर की आराधना करना। ये त्रिकाल संवर की

आराधना, उसमें भक्ति करना है। उस वृद्ध माँ जी ने यह सुना, उस पर विचार किया कि मेरे से अन्य कोई काम तो होता नहीं है। ये भक्ति मैं कर लूंगी। उसने मन में पक्का संकल्प कर लिया। पक्का संकल्प करके उसने त्रिकाल संवर की आराधना चालू कर दी। एक देवता भी उस समय संत के वहां आया हुआ था। जब उस बहिन ने प्रतिज्ञा ली तो उसने देखा कि महाराज पच्चक्खाण दिला रहे हैं। यह बहिन क्या त्रिकाल आराधना कर पाएगी? कुछ दिनों तक देखा कि क्या कर रही है? कुछ दिनों तक त्रिकाल आराधना करते हुए देखा।

एक बार जब माँ जी आराधना करके निवृत्त हो रही थी तो कहा कि माँ जी आराधना हो गई? तो कहा - हां भाई, हो गई। उससे पूछा कि तुम कौन हो? तो कहा कि मैं देव हूं। मांगो जो भी मांगना है। तो कहा कि भाई, मुझे तो कुछ नहीं चाहिए। मैं तृप्त हूं। त्रिकाल आराधना का अर्थ क्या है? आपको तृप्ति आ जाए। लालसाएं पैदा होना आराधना नहीं है। माँ जी कहने लगी, मुझे आराधना में तृप्ति है, मुझे कुछ नहीं चाहिए। मुझे वह चीज मिल गई है, इसलिए अब मुझे कुछ नहीं चाहिए। 'छवि अन्तर की देखी जिसने, वह फिर बाहर क्या देखे' जिसने अन्तर् की छवि का अनुभव कर लिया, उस शांति और समाधि का अनुभव कर लिया। अब उसे बाहर का कुछ भी नहीं चाहिए।

उस माँ जी ने कहा कि बेटा मुझे कुछ नहीं चाहिए। कहा, नहीं माँ जी, नहीं। देव दर्शन खाली नहीं जाते, तुमको कोई न कोई चीज तो मांगनी ही पड़ेगी। उसने कहा कि बेटा क्या मांगूं? मुझे तो कुछ चाहिए ही नहीं। कहा-नहीं, तुमको मांगना तो पड़ेगा। कुछ भी मांगो। माँ जी ने सोचा कि इतना आग्रह कर रहा है तो क्या मांगूं? सोचा कि मेरी आंखें मांग लूं। फिर सोचा कि आंखें मांगूंगी तो घर की हालत देखकर और दु:खी हो जाऊंगी। बेटे की शादी नहीं हो रही है। बेटे की शादी की बात मांग लूं। तो सोचा कि बेटे की शादी की बात मांग लूं तो पहले ही घर में खाने का अभाव पड़ा है। एक आदमी और आ जाएगा तो उसको क्या खिलाऊंगी? फिर विचार किया कि घर मांग लूं तो घर संभालेगा कौन? एक के बाद एक समस्या खड़ी होती गई। अंततोगत्वा देव ने यह भी कहा कि एक ही बात मांगनी है। अलग-अलग नहीं, एक ही वर मांगना है।

उसने एक वर मांगा कि तुम देना ही चाहते हो तो सातवीं मंजिल पर मैं मेरे लड़पोते को चांदी के बाजोट पर सोने के थाल, रत्नों की कटोरी में खीर खाण्ड का खाना खाते हुए देख लूं। क्या मांगा? क्या मांगा? आंखें मांग ली,

मकान मांग लिया, बहू मांग ली, पोता, पड़पोता मांग लिया। क्या नहीं मांगा? यह बुद्धि निर्मल और पवित्र कैसे बनी? आपस में क्लेश करने से? तेरा-मेरा करने से? रोष करने से, कट-कट करने से बुद्धि पवित्र होती है? (प्रतिध्वनि-नहीं) त्रिकाल आराधना करने से उसकी बुद्धि में पवित्रता आई। उस पवित्रता के कारण उसके भीतर यह सोच आयी, यह समझ आयी और उसने यह वर मांगा।

देवता ने सोचा कि माँ जी बड़ी होशियार निकली। उसने एक ही वरदान मांगने को कहा था। उसका ही आग्रह था कि एक वरदान जो तुम मांगोगी वह पूरा होगा। अत: देवता ने उसे वह वरदान दिया। यह एक रूपक आख्यान है, बात है, किंतु इससे मूल बात यह समझ में आती है कि यदि मन को पवित्र रखते हैं, बुद्धि को पवित्र रखते हैं तो अचिन्त्य कार्य सिद्ध हो जाते हैं। मन और बुद्धि धार्मिक विचारों से, धर्म अनुष्ठानों से पवित्र होती है, यह मैं नहीं कहूंगा। धर्म-अनुष्ठान वे ही सही हैं जो हमें धर्म तक पहुंचाने वाले हैं। नहीं तो क्रिया केवल ऊपरी क्रिया रह जाएगी। अनुष्ठान भीतर तक पहुंचाने वाले होने चाहिए।

हम सामायिक किसलिए कर रहे हैं? आपने कहा, समभाव के लिए कर रहे हैं। हकीकत में समभाव घटा या बढ़ा, इसका परीक्षण भी तो होना चाहिए। स्कूल में हमारी परीक्षाएं ली गई थीं, हमने परीक्षाएं दी थीं। हमने परीक्षा दी और एक क्लास से दूसरी क्लास में गए, दूसरी क्लास से तीसरी क्लास में गए और आगे की कक्षाओं में जाते रहे। हमको मालूम पड़ा कि हमने पढ़ाई की तो एक कक्षा से दूसरी कक्षा में जा रहे हैं। यहां पर कक्षा कौनसी बढ़ी? कौनसी कक्षा हमने उत्तीर्ण की? कितनी शांति और समाधि हासिल की? इसका परीक्षण कौन करेगा? यह परीक्षण स्वयं को ही करना पड़ेगा। परीक्षा देने वाले भी हम और परीक्षक भी स्वयं हम ही। तब हम जान पाएंगे कि मैं कितना जल में उतरा हूं? मैंने कितनी ऊंचाइयां प्राप्त की है। उसके आधार पर मेरा विचार होगा कि अब मुझे आगे क्या करना चाहिए? यदि हम इस प्रकार से शोध करते रहेंगे, अपनी परीक्षा करते रहेंगे तो हम धर्म क्षेत्र में आगे से आगे बढ़ते हुए चले जाएंगे। नहीं तो हम क्रिया करते रहेंगे और वहीं के वहीं अटके रह जाएंगे। एक कदम भी आगे नहीं बढ़ा पाएंगे। जब कदम आगे ही नहीं बढ़ा पाए तो फिर हमने क्या पाया?

आनन्द श्रावक साधु नहीं बन सके। आनन्द श्रावक भगवान के प्रमुख दस श्रावकों में से थे। आप कह सकते हैं कि वे भी साधु नहीं बन सके तो हम साधु कैसे बनें? आप यदि साधु नहीं बन पा रहे हैं तो कोई बात नहीं। आग्रह तो है ही

नहीं। पर आनन्द श्रावक साधु नहीं बने, इसलिए हम क्यों बनें, यह बात नहीं होनी चाहिए। यदि उनकी देखादेखी करना है तो वे घर में नहीं रहे थे। उन्होंने जब देखा कि मेरी संतान सक्षम हो गई है तो पारिवारिक जनों को बुलाकर, भोजन-पानी कराकर एक मीटिंग की और कहा कि अब तक विशेष कार्यों में, सामान्य कार्यों में, विवाह-शादी, व्यापार-धंधे आदि के विषय में आप सभी लोग मेरे से राय-परामर्श लेते रहे हो। मेरे से परामर्श करते रहे हो, किंतु अब मैं भगवान महावीर की धर्म प्रज्ञप्ति को स्वीकार करना चाहता हूं, इसलिए मैं इन सारे कार्यों से निवृत्त हो रहा हूं। मैं अपने स्थान पर अपने ज्येष्ठ पुत्र को स्थापित करता हूं। आपको अब जो भी राय लेनी है, परामर्श लेना है, उससे लोगे। मेरे से किसी प्रकार की कोई चर्चा नहीं करोगे। इस प्रकार से वे संसार के कार्यों से पूर्णरूपेण निवृत्त हो पौषधशाला में जाकर धर्म आराधना में लग गए।

कितने लोग हैं, जो ऐसे धर्म आराधना में लग गए या लगने को तैयार हैं? जो यह तय करे कि अब मुझे परिवार से कोई लेना-देना नहीं है। परिवार में क्या हो रहा है, पूछताछ नहीं करनी है। घर में क्या हो रहा है, किसकी शादी है, किसका विवाह है, किसकी दीक्षा है? व्यापार कैसा चल रहा है, यह सारी बातें नहीं करनी है। ऐसे कितने लोग हैं? हम यह तो कह देते हैं कि आनन्द श्रावक साधु नहीं बना तो हम कैसे साधु बनें? किंतु वे घर पर नहीं रुके तो आप घर में क्यों रुके हुए हो? हमारा लक्ष्य तो वही होना चाहिए कि साधु बनें। लेकिन चारित्र, मोह कर्म का क्षयोपशम नहीं हो तो वह साधु नहीं बन सकता, किंतु श्रावक के 12 व्रतों को तो स्वीकार किया जा सकता है एवं आनन्द श्रावक की तरह घर-परिवार को छोड़कर, धर्म स्थानक में रहकर धर्म आराधना तो की जा सकती है। उसे करने के लिए स्वतंत्र हैं या नहीं हैं? कर सकते हैं या नहीं कर सकते हैं? कर सकते हैं तो करें। उस प्रकार से भी यदि करें तो संसार का मोह कम होता है और अपनी आत्मा को शांति पहुंचाने वाला बनता है।

आनन्द श्रावक साधु नहीं बना, किंतु एकाभवतारी बन गया। मनुष्य भव से देवलोक में गया है। चार पल्योपम की आयुष को पूरा करके महादेव क्षेत्र में जन्म लेगा और वहां साधु बनकर सारे कर्मों का क्षय करके वह सिद्ध होगा, बुद्ध होगा, मुक्त होगा। परिनिर्वाण को प्राप्त करेगा। सभी दु:खों का अंत करेगा। यह शक्ति आज हमारे भीतर भी मौजूद है। भगवान ने कहा कि इस काल में भी मोक्ष नहीं जा सकते तो भी एकाभवतारी, एक भव बीच में करके मुक्ति का

वरण कर सकते हो, किंतु वह मुक्ति वरण कब होगी?

बीजो मन मंदिर आणूं नाहि,
ए अम कुलवट रीत जिनेश्वर, गाऊं रंग शुं,
धर्म जिनेश्वर गाऊं रंग शुं।

बीजो मन मंदिर आणूं नाहि। दूसरी आलतू-फालतू बातें दिमाग में नहीं आनी चाहिए। बस एक लक्ष्य, उसी लक्ष्य को साधना है। जैसे माँ जी ने एक लक्ष्य को साधा तो सुखी हो गई। आत्म भावों से तो पहले ही सुखी हो गई, त्रिकाल संवर की आराधना से और बाहरी सुख-सुविधाएं भी उसको प्राप्त हो गईं। एक को साधने से सारी बातें सिद्ध होती हैं और सभी जगह हाथ मारने लगें तो एक भी चीज हाथ में आती नहीं है। इसलिए आनन्दघनजी कहते हैं कि मैं समझ गया। अब मैं दूसरा कोई भी विचार अपने मन मंदिर में प्रतिस्थापित नहीं करूंगा।

दो होते हैं तो दोनों तरफ दिमाग चलता रहता है। दो नहीं हो, एक ही हो तो दिमाग कहां चलता रहेगा? (प्रतिध्वनि- उस एक तरफ) एक तरफ। वैसा हम लक्ष्य बनाएं, अवश्यमेव हम भी अपने गंतव्य को प्राप्त करेंगे। हम भी अपने लक्ष्य को साधने का, वरने का पुरुषार्थ करें, उसमें सफल हों। ऐसा हम करेंगे तो धन्य बनेंगे।

इतना ही कहते हुए विराम।

दिनांक-15.11.2019
जैन स्थानक, अमर नगर
जोधपुर

11

भक्ति से हृदय हो भाव विभोर

धर्म जिनेश्वर गाऊं रंग शुं भंग, म पडशो हो प्रीत जिनेश्वर...

धर्म जिनेश्वर की स्तुति करते हुए कुछ बातों की ओर संकेत किया गया है। पहली बात है, 'गाऊं रंग शुं।' मैं धर्म जिनेश्वर को गा रहा हूं, स्तुति कर रहा हूं। वह स्तुति बड़े रंग से होनी चाहिए। मैं भक्ति के उसी रंग में रंग जाऊं। 'तुझ में, मुझ में भेद न पाऊं।' परमात्मा और मेरा स्वयं का एकरूप हो जाए। उसी रंग में मैं रंग जाऊं।

इस प्रकार का भाव जब भक्त के मन में उभरता है और वह तन्मय हो जाता है तो नयों की दृष्टि से विचार करने पर वह उस समय भगवान रूप ही होता है। वह भक्त अलग नहीं होता। भक्त और भगवान दोनों एक ही हो जाते हैं। उसके भीतर भी वैसी भगवत्ता प्रकट हो जाती है या भगवत्ता के लक्षण उसके भीतर स्फुटित हो जाते हैं, दीखने लग जाते हैं, झलकने लग जाते हैं। भाव से वह तद्रूप हो जाता है।

मीरा की बात हमने बहुत बार सुनी कि वह भक्ति में लीन हो जाती थीं। आगम कहानियों में यह बात स्पष्ट हुई है कि महासती मृगावती, प्रभु महावीर में इतनी लीन हो गई, तल्लीन हो गई कि उसे अन्य कुछ सूझ ही नहीं रहा था। हमारी दृष्टि एक से अधिक चीजों को देखती रहेगी तो वह हमें द्वंद्व की ओर ले जाने वाली बनेगी। वह हमें भक्ति में ले जाने वाली नहीं बनेगी। वह क्षण हमें भक्ति से सराबोर कराने वाला नहीं होगा। इसलिए पांच अधिगम में, पांचवां अधिगम संत-भगवंतों की चरण उपासना को पाने के लिए है, वह एकाग्रता का है। एकाग्रता यानी तन्मयता, तन्मय हो जाना। पर्युपासना में इतनी तन्मयता हो जाए कि जिसकी पर्युपासना की जा रही है, वह सेव्य और सेवक जुदा-जुदा नहीं रहे। जिस समय हमारे भीतर ऐसी भक्ति प्रस्फुटित होती है, तभी वस्तुत:

निश्चय नय से हमारे द्वारा सेवा या भक्ति हो पाती है। बाकी समय औपचारिकता होती है। पुण्य का बंध कराने वाली एवं कुछ कर्मों की निर्जरा कराने वाली हो सकती है किंतु जो आनन्द देने वाली होनी चाहिए, वह आनन्द नहीं मिलेगा। जो आनंद मृगावती को मिला, वह आनन्द हमें नहीं मिल पाएगा। वैसा आनन्द हमें उस औपचारिकता से नहीं मिल पाएगा।

कहीं दूर वर्षा हुई है तो उसकी ठंडी हवा हमें कुछ शीतलता देने वाली होती है, किंतु उस वर्षा का अनुभव हमें नहीं हो सकता। वह वर्षा जब हमारे क्षेत्र में होगी तभी हम उसका अनुभव कर सकेंगे। वैसे ही जब हमारे भीतर भक्ति बरसेगी, बरसने लगेगी तब हम उस भक्ति का अनुभव कर पाएंगे और तभी वह आनन्द हम प्राप्त करने में समर्थ होंगे। यह भक्ति की विधि सामान्य नहीं है। हमने तो सस्ती मान ली है कि भक्ति क्या है? एक दो गीत गा लो, तन्मय हो जाओ। कोई सोचता है कि भगवान की प्रतिमा के सामने नृत्य कर लो। कोई सोचता है कि दीपक और अगरबत्ती कर लो और हमारी भक्ति हो गई। इस प्रकार से भक्ति नहीं होती है। जब तक भक्ति में आदमी डूब नहीं जाए तब तक भक्ति का आनन्द नहीं ले सकता।

महाभारत की एक घटना हमने बहुत बार सुनी ही होगी। कौरवों और पांडवों को द्रोणाचार्य ने अध्ययन करवाया था। अध्ययन की समाप्ति पर बड़े विशाल पैमाने पर उनकी परीक्षा होने वाली थी। अनेक देशों के राजा और राजकुमार उस परीक्षा को देखने के लिए उपस्थित थे। जनता भी उपस्थित थी। एक तेल का घड़ा रखा गया। उसके समीप बांस लगाकर उस पर एक पुतली रखी, उसकी आंख का भेदन करना था। उस पुतली के चारों ओर जैसे पंखा चल रहा है, चल रहा था। उसके बीच से तीर जाकर उस आंख को भेदे, ऐसी व्यवस्था बना रखी थी।

सबसे पहले दुर्योधन को पुकारा गया। वह कहता है- सर, हाजिर हूं। द्रोणाचार्य ने कहा- वत्स! इसे राधावेध करना है। दुर्योधन ने कहा कि तैयार हूं गुरुदेव। द्रोणाचार्य- पहले मेरे प्रश्नों का उत्तर दो। बोलो तुम्हें नीचे तेल का कड़ाह नजर आ रहा है? दुर्योधन- गुरुदेव नजर आ रहा है। द्रोण- पुतली नजर आ रही है? दुर्योधन- गुरुदेव नजर आ रही है। वत्स, क्या मैं तुम्हें दीख रहा हूं? गुरुदेव बहुत स्पष्ट दीख रहे हो। इतने लोग बैठे हुए हैं, क्या उनको तुम देख रहे हो? बहुत अच्छी तरह से वे दीख रहे हैं। वह तो बड़े दमखम से उत्तर दे रहा था कि

मैं सारे प्रश्नों का सही जवाब दे रहा हूं, किंतु द्रोणाचार्य का मन बैठ गया। उनके मन ने उसी समय रिजल्ट दे दिया। उनके मन ने स्वीकार किया कि यह उत्तीर्ण होने वाला नहीं है। फिर भी कहा कि वत्स, चलाओ तीर। तीर चला पर क्या हुआ? दुर्योधन सफल हुआ या पराजित हो गया? (प्रतिध्वनि- पराजित हो गया) वह उसमें उत्तीर्ण नहीं हो पाया, क्योंकि उसकी दृष्टि एक जगह नहीं जम पायी थी। तन्मय नहीं हो पायी थी।

ऐसे कई राजकुमारों के नंबर आए। वे पराजित होते गये और अपने स्थान पर बैठते गये। यथाक्रम से अर्जुन का भी नंबर आया। अर्जुन से भी ये ही सारे प्रश्न पूछे गए। अर्जुन कहता है कि गुरुदेव मुझे तो कुछ नजर नहीं आ रहा है। केवल पुतली की आंख और मेरे तीर की नोंक के अलावा मुझे और कुछ भी नजर नहीं आ रहा है। द्रोणाचार्य का दिल हरा-भरा हो गया कि कोई तो निकला जिससे लोग कह सकेंगे कि द्रोणाचार्य ने पढ़ाया है अन्यथा तो यही होता कि कैसे पढ़ाया है इनको? सारे के सारे अनुत्तीर्ण होते हुए चले जा रहे हैं। द्रोणाचार्य ने कहा- वत्स! चलाओ तीर। तीर चलाया और अर्जुन राधावेध में सफल हो गया। उत्तीर्ण हो गया।

अर्जुन सफल कैसे हुआ? इस पर चिंतन करेंगे तो पायेंगे कि वह लक्ष्य के प्रति तन्मय हो गया। अन्य सब उसकी आंखों से ओझल हो गया। जैसे अर्जुन उसमें एकमेक हो गए थे, तन्मय हो गये थे, वैसे ही भक्ति में हमको एकमेक होना पड़ेगा। तन्मय होना पड़ेगा। यदि भक्ति में एकमेक हो पाते हैं तो ही भक्ति सुफल देने वाली होती है। तभी उसका परिणाम मिल पाता है।

मृगावती की भक्ति उसके जीवन का इतना शोधन करने वाली बनी कि दोष दर्शन दृष्टि नष्ट हो गई। दोष दर्शन की दृष्टि रही ही नहीं। हम सामान्यतया इनसान की बात करें तो अमूमन हर इनसान में यह दृष्टि मिलेगी कि वह कहीं न कहीं दूसरे में दोष की बात करेगा। कहीं न कहीं दूसरे में कमी बताने की बात करेगा। कहीं न कहीं उसको न्यूनता नजर आएगी। यह दृष्टि हमें अध्यात्म की ओर ऊपर नहीं उठने देती है। यह दृष्टि हमको उसी में घुमाए रखती है। हम उसी में घूमते रहते हैं। हमें कहीं न कहीं, कोई न कोई त्रुटि/कमी नजर आती रहेगी।

ज्ञानिवृन्द कहते हैं कि कमियां देखनी हैं तो स्वयं की देखो। मैं कौन हूं, मेरा रूप क्या है और मैं किस प्रकार से जी रहा हूं? मेरे जीने का तरीका कितना ठीक है? भक्त हृदय अपनी कमी को देखने की बात करता है। वह अपनी कमी

को दूर करने के उपाय ढूंढ़ता है। भले ही वह स्तुति के माध्यम से परमात्मा के चरणों में अपनी बात को रखकर ढूंढ़े किंतु वह जानता है कि इसको ढूंढ़ना मुझे ही पड़ेगा कि मैं इस अपनी कमी को कैसे दूर करूं?

महासती मृगावती की दृष्टि बदल गई। वह एकदम परिपक्व बन गईं। महासती चंदनबाला के द्वारा उपालंभ दिए जाने पर भी उसके मन में कोई रोष व्याप्त नहीं हुआ। किसी प्रकार का दोष दर्शन का भाव व्यक्त नहीं हुआ। मैंने ऐसा कौनसा कार्य कर दिया जिससे मुझे उपालंभ दिया जा रहा है। बल्कि अपनी भूल, अपनी गलती पर उनकी दृष्टि गई। उनको लगा कि मेरे निमित्त से मेरी गुरुवर्या को इतना सोचना पड़ा। मेरे कारण से उनको यह पीड़ा झेलनी पड़ी। मेरी एक भूल, एक गलती के कारण उनका मन व्यथित हुआ। इनको उपालंभ देने जैसी स्थिति में आना पड़ा। यह मेरे लिए उचित नहीं। वे आत्म-चिंतन, आत्म भावों में लीन हो गईं। अपनी आत्मा के उस कृत्य का पश्चात्ताप करने लगी। उसी पश्चात्ताप की अग्नि में उनके घाती कर्म नष्ट हो गये, उनको केवलज्ञान की प्राप्ति हो गई। अपनी भूल देखने वाला केवलज्ञान को प्राप्त करता है और दूसरों के दोष को देखने वाला अपने भीतर अज्ञान पैदा करने वाला होता है।

दूसरों को देखने वाला अपने आपको नहीं देख पाता है। उसकी दृष्टि बाहर की बाहर बनी रह जाती है। वह दूसरों की भूलें तो देखेगा किंतु यह नहीं देख पाता कि दूसरों की भूलों को देखता हुआ वह कितनी भूल कर रहा है। दूसरों की भूल मेरी नजर में आ जाए तो अलग बात है किंतु मैं उनको गौर करके देखूं तो यह मेरी बड़ी भूल है। इस भूल को जब तक मैं नहीं समझ लूंगा तब तक मैं आत्मदर्शन का अधिकारी नहीं बन पाऊंगा। अर्जुन क्यों सफल हो गया और दुर्योधन क्यों अनुत्तीर्ण हो गया? यदि उनके चारित्र पर हम विचार करेंगे तो पाएंगे कि दुर्योधन की सोच दोष दर्शन की थी। उसकी दृष्टि पांडवों को नीचा दिखाने की बनी रहती थी। ईर्ष्या व प्रतिशोध की भावना मन में पलती रहती थी। जब भी मौका मिलता, वह उन्हें नीचा दिखाने के लिए आतुर रहता।

यह दृष्टि हमें सफल नहीं होने देती। हम तुलना करेंगे अपनी कि मेरी दृष्टि कैसी है? मैं किसी में दोष देख रहा होता हूं। मैं किसी को नीचा दिखाने के लिए प्रयत्न करता रहता हूं या मैं अपने दोषों का परिमार्जन करने के लिए प्रयत्नशील रहता हूं? जो अपने दोष को देखने वाला होता है, वह अपनी आत्मा को सुधारता है। दोषों को निकाल कर बाहर करने का प्रयत्न करता है। स्वयं को,

अपने जीवन को निर्दोष बनाने का लक्ष्य बनाता है और निर्दोष बनने की दिशा में गतिशील होता है।

बंधुओ, यह मनुष्य जन्म निर्दोष जीवन जीने के लिए होना चाहिए। अन्य अनेक जन्मों में हमने दोषों का सेवन किया है। निश्चित ही किया है। यही कारण है कि हम अभी तक संसार में बंधे हुए हैं। अभी जो मनुष्य जीवन मिला है, उसको हम यह कहते हैं कि यह मोक्ष का किनारा है। समुद्र का जैसे किनारा होता है वैसे ही नर तन (मनुष्य जीवन) संसार का किनारा है। इस किनारे पर आकर हम यदि बाहर नहीं निकल पाएं, मुक्ति की ओर नहीं बढ़ पाएं तो इस संसार सागर में ही निमज्जित हो जाएंगे और उसके बाद वापस किनारा कब हाथ आएगा, कहना आसान नहीं है।

मोह का भंवर बड़ा जबरदस्त होता है। हमने कभी भंवर देखा होगा! समुद्रों में कहीं-कहीं भंवर होता है। नदियों में भी भंवर होता है। उसके बीच में यदि नौका आ जाए और उसको ठीक से नहीं संभाला जाए तो वह उलट जाएगी। भंवर के बीच में नौका को बचाना बहुत कठिन होता है।

मोह भंवर घिरा चेतन चहुं ओर है,
चला तो बहुत पर हुई नहीं भोर है,
पृच्छा नहीं प्रेक्षा नहीं, राह अनजान जी, मैं तो हूं नादान...

हमारे आचार्य भगवंतों ने बहुत बड़ा उपकार किया हमारे पर कि आज भी जिनेश्वर देवों की वाणी प्रचुर मात्रा में हमारे सामने मौजूद है। यह हमें रास्ता दिखाती है। पर हम यदि मोह भंवर में घिरकर उस रास्ते को देखना ही नहीं चाहें, उसको समझना ही नहीं चाहें, उससे निकलना ही नहीं चाहें तो यह हमारा बड़ा दोष है।

आचार्य सुधर्मास्वामी से आज तक के आचार्य भगवंतों के माध्यम से हमें तीर्थंकर देवों की वाणी का रसास्वादन करने का मौका मिलता है। संत-भगवंतों के पास भी वही वाणी आचार्यों से प्राप्त है और उस वाणी से वे हमें लाभान्वित करते हैं। हमें दिशा देते हैं, रास्ता बताते हैं। चलने का काम हमें ही करना पड़ेगा। यदि हम उस दिशा में नहीं चल पाते हैं, यदि हम उस राह को नहीं देख पाते हैं तो यह हमारी नादानी होगी। मोह भंवर में घिरे हुए व्यक्ति की स्थिति उस व्यक्ति की तरह होती है जिसकी आंखों के सामने रंगीन चश्मा लगा हुआ हो। वह क्या देखेगा? उसको सही कलर नजर नहीं आएगा। जो रंग चश्मे का है,

चश्मे के ग्लास का है, उसको दुनिया के सारे पदार्थ उसी रंग में रंगे हुए नजर आएंगे और जो भक्ति के रंग में रंग जाता है, उसको सारी दुनिया भक्तिमय लगेगी। वह पूरी दुनिया को भक्ति में तन्मय हुआ देखेगा। वह हर इनसान को भक्त मानेगा और उसको लगेगा कि हर घट में परमात्मा बसे हुए हैं। कोई ऐसा जीवन नहीं है, जिसमें भगवान नहीं हैं, जिसमें भगवत्ता नहीं है। कण-कण में, हर जीवन में परमात्मा रहे हुए हैं। यदि हर जीवन में परमात्मा रहे हुए हैं तो मैं किसी को आघात कैसे पहुंचाऊं? मैं किसी को कैसे पीड़ित करूं?

हम सोचें धर्म रुचि अणगार के बारे में, जो पृथ्वीकाय, अपकाय, तेउकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय, त्रसकाय के जीवों की विराधना न करने के लिए भी प्रतिज्ञा ग्रहण किये हुए थे। त्रसकाय की छटपटाहट देखकर उनका करुण-कोमल हृदय क्रंदन करने लगता है। करने लगा। गुरु महाराज का आदेश, गुरु महाराज का निर्देश कि यह कड़वे तूंबे, यह कड़वे तूंबे का बना हुआ आहार तुम्हारे जीवन की हानि करने वाला है, इसलिए एकांत निर्जन स्थान पर इसको परठ दो।

वे परठने के लिए आए। उस परठने का परिणाम क्या होता है, यह देखना चाहा। उन्होंने एक बूंद परठा। उस एक बूंद ने परिणाम बता दिया कि क्या होने वाला है। उससे उनकी सोच, उनका विचार अंतर्मुखी बना कि मेरा शरीर तपस्या से वैसे ही शुष्क हो गया है, यह कितने दिन चलेगा, कोई पता नहीं है। पर इतने सारे जीव तड़पते हुए मृत्यु को प्राप्त हों उससे पता नहीं कौन-सी गति में, कैसे-कैसे दु:खों का भोग करेंगे? नहीं, नहीं, नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। यह उचित नहीं होगा। उन्होंने उस कड़वे तूंबे के आहार का सेवन करके अपनी आत्मा को संलेखना से जोड़ा। भयंकर वेदना भी हुई। इसके बावजूद उनके परिणाम बड़े विशुद्ध रहे और मृत्यु को प्राप्त कर अनुत्तर विमान, देवलोक में पहुंच गए।

निश्चित ही बिना आराधना के देवलोक में प्रवेश नहीं हो सकता। उस दिव्य स्थान पर उसी का आगमन होता है, उसी को प्रवेश मिलता है जिसने संयम की शुद्ध आराधना कर ली हो। धर्मरुचि अणगार को उस स्थान में प्रवेश मिला। वह आत्मा वहां पहुंची। निश्चित ही दया और करुणा हमारे जीवन की बहुत मूल्यवान चीज है। भक्ति में भी वही चीज मुख्य है। कण-कण में, हर जीव में, हर प्राणी में जब हम आत्मा और परमात्मा का दर्शन करने लगते हैं तो किसी भी प्राणी की विराधना हमसे कैसे हो पाएगी? हो ही नहीं सकती।

श्रीमद् आचारांग सूत्र में बहुत स्पष्ट कहा गया है कि तू जिसको मारने का मन में विचार भी कर रहा है, किसी भी जीव को मारने का विचार भी यदि कर रहा है तो वह तू स्वयं है। एकात्म भाव की यह अनुभूति, एकात्म भाव का यह उत्कृष्ट आपको अन्यत्र कहां मिलेगा? ऐसे ग्रंथ, ऐसे साहित्य, ऐसे सूत्र तीर्थंकर देवों के हमारे सामने मौजूद हैं, जो हमें बता सकते हैं कि 'जो से प्रभु, प्रभु सो तू है, द्वैत कल्पना मेटो।' कितनी बड़ी बात कही है। हमारे आगमों ने कहा है- प्राण, भूत, जीव, सत्त्व की विराधना नहीं करना। उनकी आसातना नहीं करना। उनकी आसातना, अवज्ञा करना हमें मिथ्यात्व की ओर ले जाने वाली हो सकती है। बहुत बड़ी बात है। सामान्य नहीं है किंतु समझने वाले के लिए ही बात बहुत बड़ी है। नहीं समझने वाले के लिए तो कोहनूर हीरा भी पत्थर है। नहीं समझने वाले के लिए कोई भी मूल्यवान चीज, महत्त्वपूर्ण वस्तु व्यर्थ है।

वैसे ही बहुत मूल्यवान सूत्र, बहुत मूल्यवान शिक्षाएं समझने वाले के लिए काम की होती हैं अन्यथा किसी काम की नहीं है। निकम्मी होती है। जो उसको अमल नहीं ले पाता है और जो उसको समझ नहीं पाता है उसके लिए वे चीजें निरर्थक हैं। भार रूप हैं।

बंधुओ! हमें विचार करना है कि इस मनुष्य जन्म को हम कैसे सार्थक करें। कैसे भक्ति में हम तन्मय हो जाएं? हम आरंभ और परिग्रह को बढ़ाने की फिक्र में रहते हैं। परिग्रह के प्रति हमारा उल्लास बन जाता है। जहां परिग्रह में बहुत उल्लास की भावना बनती है, वहां आरंभ के भाव छिपे हुए होते हैं। बिना किसी आरंभ के परिग्रह को प्राप्त करना बहुत कठिन होता है। श्रीमद् सूत्रकृतांग सूत्र में बताया गया है कि दो ही बंधन हैं-आरंभ और परिग्रह। इनमें जब तक हमारी आत्मा डूबी रहेगी, हम कर्म बंधन की जड़ों से जकड़े जाते रहेंगे। उनसे मुक्त नहीं हो पाएंगे। इसलिए हमारी दृष्टि उस आरंभ और परिग्रह को समझने वाली बने और समझकर उससे कैसे मुक्त हुआ जा सकता है, उस दिशा में अपना प्रयत्न बने जिससे हम भक्ति की दिशा में अग्रसर हो सकें। स्वयं को उसमें विभोर बना सकें। एक बार हम बोलें-

धर्म जिनेश्वर गाऊं रंग शुं,
धर्म जिनेश्वर गाऊं रंग शुं।

भक्ति के रंग में इतना रंग जाऊं कि बीच में उपस्थित होने वाली बाधाएं बाधा रूप न बन सकें। वह भाव तब होगा जब मेरे मन में अपार भक्ति

होगी। मेरे मन में परमात्मा से गहरी प्रीत होगी। जब मेरा जीवन भक्ति के अनुरूप बन जायेगा तब ही वह भावना बन पाएगी। उसके बिना वह भावना नहीं बनेगी। शब्द उच्चरित हो जाएंगे, शब्द बोले जा सकते हैं किंतु शब्दों का महत्त्व आत्मीय भाव से होता है। हमारे आत्मीय भाव के आधार पर शब्दों का महत्त्व होगा। शब्दों का अपने आप में मूल्य नहीं है। मूल्य जरूर है किंतु चेतना के स्पर्श से और चेतना का जितना पॉवर मिलेगा, उस पॉवर के आधार पर वे शब्द उतने मूल्यवान बन पाते हैं।

हम आनन्दघनजी के उन शब्दों एवं उस भक्ति से अपने आपको कैसे सराबोर कर सकते हैं, कैसे लगन से परमात्म भक्ति में लीन हो सकते हैं, इस दिशा में हमें विचार करना चाहिए और जो मनुष्य जन्म प्राप्त हुआ है, उसकी सफलता को सुनिश्चित किया जाना चाहिए। अपना एक लक्ष्य बने। एक उद्देश्य स्थिर करें कि मुझे क्या करना है? मुझे किस दिशा में जाना है। आप प्रवचन सुनने आते हो, व्याख्यान सुनने आते हो, संतों के दर्शन के लिए उपस्थित होते हो। संतों के दर्शन करते हैं, मंगल पाठ सुनते हैं। यह भक्ति है किंतु यह केवल यहीं तक इसी रूप में ही सीमित न रह जाये। इससे आगे हमारा क्या लक्ष्य हो सकता है और हम उस तक कैसे पहुंच सकते हैं, इस दिशा में निरंतर हमारा अभ्यास, हमारा प्रयास जारी रहेगा तो इस पुण्य के महान पुंज रूप से मिले हुए मनुष्य जन्म को सार्थक बनाया जा सकता है अन्यथा चन्द्रकांत मणि भी यदि हाथ में आ जाए किंतु उसका उपयोग करने का हमारे पास कोई तरीका नहीं है तो उसके मिलने और न मिलने में क्या फर्क हो पाएगा? कोई लाभ होगा क्या? लाभ तो क्या होगा हम संकट में अवश्य पड़ सकते हैं। संकट में ऐसे घिर जाएंगे कि उसकी सुरक्षा कैसे करें?

वैसे ही रत्नों से भी अनमोल यह मनुष्य जन्म जो हमें मिला है, उसका सदुपयोग करने का तरीका सीखें। वह तरीका है-

भज मन भक्ति युक्त भगवान,
भरोसा क्या जिंदगानी का।

आचार्य गुरुदेव श्री नानालाल जी म.सा. प्राय: करके आनन्दघनजी या विनयचंद जी की चौबीसियों से प्रवचन आरंभ किया करते थे किंतु पिछले समय में उन्होंने इस भजन को मुख्य बना लिया था।

भज मन भक्ति युक्त भगवान,

भरोसा क्या जिंदगानी का।
क्या जिंदगानी का, भरोसा क्या जिंदगानी का।
भज मन भक्ति युक्त भगवान,
भरोसा क्या जिंदगानी का।।

राजनांदगांव चातुर्मास की बात है। उस चातुर्मास में उन्होंने ध्यान की महत्त्वपूर्ण विधाओं का अनुभव किया। अपने आपमें प्रयोग किया। दर्शकगण उन मुद्राओं से अनुभूत होते और जब उनको लगा कि लोग दर्शन में नहीं, प्रदर्शन में लग रहे हैं, आत्मदर्शन की बात तो दूर और खाली चर्चाओं की हवाएं चलती रहती हैं, उसके बाद उन्होंने ध्यान अलग बंद रूम में, बंद कमरे में करना शुरू कर दिया किंतु ध्यान के बाद भी उनकी मुख मुद्रा पर वह सौम्यता झलकती रहती थी। भक्ति जिस हृदय से प्रकट हुई है, उसके चेहरे की रंगत निश्चित रूप से बदली हुई मिलेगी।

हम भी इस मनुष्य जीवन को सफल करना चाहते हैं तभी प्रवचन में उपस्थित होते हैं। तभी तो हम संत के सान्निध्य में रहने का विचार करते हैं। तो साथियो! हम अवश्यमेव इस भक्ति की दिशा में अपने आपको बढ़ावें और तन्मय हो जाएं।

भज मन भक्ति युक्त भगवान,
भरोसा क्या जिंदगानी का।

इस भाव-विभोर अवस्था में हम पहुंच जाएं और तन्मय हो जाएं। एक बार उस अवस्था में पहुंचे, अनुभव करें तो मन कहेगा कि बार-बार मैं उस अवस्था में पहुंचूं। मन करेगा कि उसी अवस्था में बना रह जाऊं। वापस वहां से लौटूं ही नहीं। वापस वहां से लौटना उसको नहीं सुहाएगा किंतु इसके लिए अभ्यास-प्रयास जरूरी होगा। जो जितना अभ्यास करेगा, जितना प्रयत्न करेगा, वह उस दिशा में उतनी ही कामयाबी हासिल कर सकता है। ऐसा हम विश्वास करते हैं। ऐसा हम करेंगे तो अपने आपको धन्य बनाएंगे।

इतना ही कहते हुए विराम।

16 नवम्बर, 2019
जैन मंदिर, गुलाब नगर
जोधपुर

12

नये पथ का निर्माण करें हम

धर्म जिनेश्वर गाऊं रंग शुं भंग, म पडशो हो प्रीत जिनेश्वर...

एक बड़ा मर्म प्रकाशित किया है कविता में, स्तुति में कि धर्म जिनेश्वर, एक बहुत बड़ी विडंबना इस दुनिया में देखने को मिल रही है। धर्म-धर्म की रट हर व्यक्ति लगा रहा है। हर इनसान धर्म की बात कर रहा है, पर धर्म के मर्म को वह नहीं जान पा रहा है। व्यक्ति अशांत है, पर अशांति के कारण को नहीं जान रहा है। व्यक्ति शांति चाहता है, सुख-समाधि की इच्छा करता है, पर दु:खी है। असमाधि में है। दु:खी क्यों है? असमाधि में क्यों है? उस पर वह विचार नहीं करता है।

हम पेड़ को देख रहे हैं, फलों को देखते हैं किंतु उसके बीज की ओर हमारा ध्यान नहीं है। हम इमारत को देख रहे हैं, उसकी नींव को नहीं। जैसे बीज अदृश्य होता है, इमारत की नींव अदृश्य होती है, वैसे ही हमारे दु:ख के कारण अदृश्य बने हुए हैं। उनको हम नहीं देख पा रहे हैं। जब तक कारण नहीं जानेंगे, कारण को नहीं हटाया जाएगा तब तक सुख रूपी कार्य की सिद्धि नहीं हो पाएगी।

बीमारी का इलाज ऊपर-ऊपर करते रहें। बुखार में मेटासिन की गोली खा लेने से बुखार डाउन हो गया और हमने सोचा कि ठीक हो गया, पर क्या बुखार ठीक हो गया? (प्रतिध्वनि-नहीं) बुखार एक बार मेटासिन लेने से डाउन हो गया किंतु उसके जर्म्स मेटासिन से हटने वाले नहीं हैं। वह तो जांच के बाद ही मालूम पड़ेगा कि बुखार मलेरिया का है, वायरल है या टाइफाइड का है या टी.बी.या अन्य किसी इंफेक्शन का? जिस इंफेक्शन से बुखार है, उसकी औषधि दी जाएगी तो वह बुखार जड़ से हटेगा, नहीं तो मेटासिन से एक बार बुखार हटेगा और वापस आएगा। हटता रहेगा वापस आता रहेगा। वह जड़ से नहीं निकलेगा।

वैसे ही हम शोध करेंगे, समीक्षा करेंगे कि हमारे दु:ख के कारण क्या

हैं? हम किस कारण से दु:खी होते हैं? यदि धन को दु:ख का कारण मानते हैं तो वह दु:ख का कारण नहीं है। उसकी बीमारी कुछ और है। धन ने जितना बिगाड़ नहीं किया है, उतना बिगाड़ धन के आकर्षण ने किया है। शालिभद्र के पास धन की कमी नहीं थी, पर वे दु:खी नहीं थे क्योंकि लगाव नहीं था, आकर्षण नहीं था। उन्होंने धन को पकड़ने की कोशिश नहीं की। हमें दु:ख के उस बीज को, उस बीमारी को पकड़ना पड़ेगा। वह बीज और बीमारी है-आसक्ति। वह बीमारी है-आकर्षण। जितना हमारा आकर्षण बढ़ता है, जितनी हमारी आसक्ति बढ़ती है, उतनी हमारी बीमारी बढ़ेगी, उतना दु:ख बढ़ेगा।

यदि हम यह जान लें कि धन का आकर्षण मुझे प्रभावित नहीं करेगा या नहीं करे, हम यदि उससे आकर्षित नहीं होते हैं, तटस्थ रहते हैं तो धन हमारा कुछ भी नहीं बिगाड़ेगा। धन से बिगाड़ तब होता है, जब हम उसकी तरफ आकर्षित हो जाते हैं। धीरे-धीरे हमारी मानसिकता उसकी गुलामी की हो जाती है। उस समय वह धन हमारा अहित करने वाला होता है।

जैसे धन की बात है, वैसे ही पदार्थ की बात है। वैसे ही संसार की बात है। संसार दु:खमय कब बनता है? जब हम इच्छाएं, आकांक्षाएं, अपेक्षाएं बहुत ज्यादा जोड़ लेते हैं तो वह हमें दु:खी बनाता है। संसार में रहने वाले यदि अपेक्षा और अभिलाषाओं से जुड़ें नहीं तो वे दु:खी नहीं होंगे। अयोध्या के राजा के रूप में राम का राज्याभिषेक करने की तैयारियां चल रही हैं पर बीच में ही ऐसा घटनाक्रम बना कि राम को अयोध्या को त्यागना अनिवार्य हो गया।

यदि राम को राजा बनने की अपेक्षा होती तो अयोध्या का त्याग उनके लिए भारी दु:ख का कारण होता। दु:ख का कारण होता या नहीं होता? (प्रतिध्वनि-होता) किंतु रामायण के प्रसंग से यदि हम विचार करते हैं तो राम को कहीं से कहीं तक कोई दु:ख नहीं है, कोई पीड़ा नहीं है। जैसे राम जीये, क्या हम नहीं जी सकते हैं? हम बात को टालने की कोशिश करते हैं कि वे तो राम थे। वे तो मर्यादा पुरुषोत्तम थे। मर्यादा पुरुषोत्तम जन्म से थे या मर्यादा पुरुषोत्तम मर्यादा का पालने करने से बने? (प्रतिध्वनि- पालने करने से बने) जन्म तो जैसे हमारा हुआ है, वैसी ही लगभग प्रक्रिया उनकी थी। उनके और हमारे जन्म में ज्यादा अंतर क्या है? (प्रत्युत्तर- कुछ भी अंतर नहीं है) इसलिए भगवान महावीर की वाणी है, वे कहते हैं कि जन्म से व्यक्ति न तो क्षत्रिय होता है, न ब्राह्मण होता है, न वैश्य होता है, न ही शूद्र होता है। अपने कर्म के आधार पर वह

क्षत्रिय या ब्राह्मण आदि की श्रेणी में आता है।

वैसे ही यह महत्त्व की बात नहीं है कि जन्म से हमारे में क्या रहा है, हम कैसे रहे हैं। महत्त्वपूर्ण यह है कि हम जब से समझने लगे तब से हम क्या कर रहे हैं। यदि हम सही दिशा में चलते हैं तो अपने को दु:ख से बचा सकते हैं। दु:ख किसको कहते हैं? हमारे मन का संवेदन, जिसका हम प्रतिकूल रूप में संवेदन करते हैं, जो हमको अच्छा नहीं लग रहा है, उसको हम दु:ख और पीड़ा की संज्ञा देते हैं। कष्ट दो व्यक्तियों में समान होगा किंतु एक व्यक्ति दु:खी हो जाता है और एक व्यक्ति को थोड़ा-सा भी दु:ख नहीं होता है। किसी को एक चींटी काट जाती है तो वह दु:खी हो जाता है और रोने भी लग जाता है। सर्प काटने की बात तो बहुत आगे की है। एक तरफ वह व्यक्ति है, दूसरी तरफ खंदक ऋषि की खाल उतारी जा रही है। खाल को खींचा जा रहा है। चमड़ी शरीर से खींचा जाना क्या आसान काम था? नहीं। क्या पीड़ा नहीं हुई? क्या कष्ट नहीं हुआ? थोड़ी अपनी चमड़ी उतारकर या उतरवाकर देखो। उनके मुंह से 'उफ' भी निकला? मुंह से कोई सिसकारी भी नहीं निकली। क्या हुई कोई पीड़ा? क्या हुआ कोई दु:ख? हमको लगेगा कि कोई पीड़ा हुई होगी किंतु सहन कर ली। यह हम सोच सकते हैं कि उनको पीड़ा हुई तो उन्होंने सहन कर ली।

समझ लो, सहन कर ली। क्या हमारे में सहन शक्ति नहीं है? हम क्यों सहन नहीं कर सकते हैं? यही प्रश्न हमारे सामने खड़ा हो जाता है, जब उनमें सहन शक्ति थी, उन्होंने सहा तो हम क्यों नहीं सह सकते हैं? किंतु ज्ञान की बात करेंगे तो बात हमारे सामने कुछ और ही आएगी कि वे शरीर के भाव से ऊपर उठ चुके थे। आदमी जब शरीर के भाव से ऊपर उठ जाता है तो शरीर में घटने वाली घटनाएं उसे प्रभावित नहीं कर सकती हैं, क्योंकि शरीर से उन्होंने अपनी चेतना को अपने भीतर केंद्रित कर लिया था।

जब तक हमारी चेतना का प्रवाह शरीर में होगा, जब तक शरीर पर हमारा ध्यान केंद्रित होगा तब तक शरीर में होने वाली पीड़ा हमें दु:खी करेगी। शरीर में होने वाला कष्ट हमें दु:खी करेगा। किंतु जैसे ही संबंध कट गया, शरीर से ध्यान हटा लिया, शरीर के प्रति तटस्थता धारण कर ली, उसके बाद तज्जनीय पीड़ा, तज्जनीय दु:ख हमें नहीं होगा। ऐसा अभ्यास से ही किया जा सकता है। ऐसा नहीं कि हम ऐसा अभ्यास नहीं कर सकते हैं। हम शरीर और चेतना की भिन्नता को अनुभूत नहीं कर सकते। नहीं कर सकने की हमारी यदि

मानसिकता होती है तो यह एक नकारात्मक सोच है। ऐसा व्यक्ति किसी कार्य में जल्दी से सफल होता नहीं है। उसके सामने दस प्रश्न हर समय खड़े होते हैं। कैसे होगा? यह तो बहुत कठिन है। क्या कठिन है?

हिमालय पर चढ़ना आसान है या कठिन है? (प्रतिध्वनि-कठिन है) यदि हमने अखबारों में पढ़ा होगा, तो पता होगा कि लोग हिमालय पर चढ़ गए या नहीं चढ़ गए? (प्रतिध्वनि-चढ़ गए) सुना तो यह भी गया कि जिनके पांव की पूरी अनुकूलताएं नहीं थीं, वे भी चढ़ गए। खाली मन से चढ़े या हकीकत में चढ़े? सपने में चढ़े या हकीकत में चढ़े? (प्रतिध्वनि-हकीकत में चढ़े) कैसे चढ़ गए? 'मनोविजेता जगतो विजेता।' जिसने मन में ठान ली कि मुझे यह करना है, वह कर सकता है। शरीर उसके लिए कितना अनुकूल है, उसकी ओर यदि देखेंगे, उसकी समीक्षा करेंगे तो शायद नहीं कर पाएंगे। मन का इंजन यदि सशक्त है तो वह शरीर की गाड़ी को खींच लेगा। मन का इंजन यदि सशक्त नहीं है तो दुविधाएं हर जगह रहेंगी। कोई भी ऐसी जगह नहीं है, जहां दुविधाएं न हों। वह गृहस्थ में है या चाहे साधु जीवन में है।

मन की शक्ति यदि विकसित नहीं हुई तो यहां भी दु:खी रहेंगे और साधु बन जाएंगे तो सुखी हो जाएंगे, ऐसा हम नहीं कह सकेंगे। वहां पर भी उसको दु:ख रहेगा। वहां पर भी उसको पीड़ा रहेगी, क्योंकि अभी मन या मन की शक्ति को उसने वैसा नहीं जगाया है। भगवान महावीर तो यह कहते हैं कि ऐसा कोई कार्य नहीं है, जो इनसान न कर सके। न करने की बात हमारे दिमाग की है। हमारे मन का भय है। हमारा मन भयभीत होता है कि इतना बड़ा काम मैं कैसे करूंगा? मैं हिमालय पर कैसे चढ़ूंगा? यह तो बहुत जटिल काम है और मैं उस काम से बचने की कोशिश करूंगा तो सफलता मेरे निकट नहीं आने वाली है।

कोई भी कार्य करो, उसकी शुरुआत नई होती है और कठिन भी होती है। नए मार्ग से गुजरना भी प्रारंभ में कठिन होता है। जिस मार्ग से रोज हम जा रहे हैं, वह मार्ग हमें बड़ा आसान और सुगम लगता है। नया मार्ग उससे दो कदम कम ही होगा किंतु उस मार्ग पर चलते हुए हमारी सोच, हमारे विचार शायद कुछ भिन्न रहेंगे। मन में थोड़ी आशंका रहेगी कि पता नहीं क्या होगा? कैसा है? किंतु उस मार्ग से जब चले जाएंगे, उसी मार्ग पर दो, चार, पांच, दस बार चलना हो जायेगा तो वह मार्ग भी आसान हो जाएगा।

वैसे ही हम जिस मार्ग पर चल रहे हैं, वह मार्ग हमें आसान लगता है

क्योंकि रात-दिन का देखा हुआ है। कौन-सा मार्ग? राग का और द्वेष का, आसक्ति का मार्ग। क्योंकि इसमें हम रात-दिन चलते रहे हैं, रात-दिन अनुभव किया है। रात-दिन हम उसमें मशगूल रहे हैं अत: उस मार्ग से हमें कोई कठिनाई नहीं होगी। थोड़ा सा और मैं स्पष्ट करूं तो एक लड़ाकू है, बात-बात पर लड़ता है, बात-बात पर झगड़ता है। उसको लड़ने-झगड़ने में कोई दिक्कत आएगी? उसको लड़ने-झगड़ने में कोई दिक्कत नहीं आएगी।

सेना के जवान कहां खड़े हैं? (प्रतिध्वनि-सीमा पर) सीमा पर खड़े हैं और हमको ले जाकर खड़ा कर दें तो कैसे लगेगा? आसान लगेगा या जटिल लगेगा? (प्रतिध्वनि-जटिल लगेगा) क्यों लगेगा जटिल? वहां पर जो खड़े हैं, वे भी इनसान हैं। सेना के जवान, जो वहां खड़े हैं, वे भी तो इनसान हैं। वे खड़े रह रहे हैं। हम क्यों नहीं रह सकते? चूंकि हमारे लिए नया है, इसलिए हमको यह कठिन लगता है।

अखबारों में आप दिल्ली के प्रदूषण की बातें पढ़ते हो पर दिल्ली में रहने वालों को कैसा लग रहा है? क्यों जैन साहब? (दिल्ली से आए हुए श्रावक जी से पूछते हैं) कैसे लगता है आपको? (दिल्ली के श्रावक का उत्तर- भगवन् सांस लेने में दिक्कत होती है) अरे! सांस लेने में दिक्कत होती है तो फिर हमको आप क्यों ले जा रहे हो वहां पर? क्यों हमको ले जा रहे हो? (दिल्ली के श्रावक का उत्तर- दिल्ली में मानसिक प्रदूषण दूर कराने के लिए) भाजपा को दिल्ली में लाल किले पर झंडा फहराने के लिए कितना समय लगा? कितने वर्ष लगे? मुझे तो अभी 35 वर्ष ही हुए हैं विनती सुनते हुए। भाजपा को उससे ज्यादा प्रयत्न करना पड़ा। शायद 35 वर्षों तक भी वह सफलता प्राप्त नहीं कर पायी। क्या 35 वर्षों के भीतर अपनी सरकार बना ली? दिल्ली पर झंडा फहराना इतना आसान काम नहीं है।

हकीकत में बात वही है कि जैसे आज नया आदमी जाएगा तो उसके लिए परेशानी हो सकती है पर रात-दिन वहां रहने वालों का धीरे-धीरे वैसा ही अभ्यास बन जाता है। वैसे ही हम रात-दिन राग-द्वेष में जी रहे हैं। वैसा ही अभ्यास हो गया, इसलिए घर को छोड़ना बड़ा कठिन होता है। आप और अनुभव करो कि जिस स्थानक में आप रोज जा रहे हैं, उस स्थानक में अपने आप गाड़ी मुड़ जाएगी और नए मार्ग में जाना पड़ रहा है तो थोड़ा फर्क होता है या नहीं होता है? (प्रतिध्वनि-होता है) बता रहा हूं कि हमारी मनोवृत्ति में जब इतने में ही फर्क आ रहा है तो नया करने के लिए कुछ सोचना कठिन अवश्य

होगा पर करेंगे तो होगा। बस कुछ विशेष बल लगाना पड़ेगा। यह तब होता है जब हम कमजोर मन के होते हैं।

राम जैसा विल पॉवर हो तो एक बार भी सोचने की जरूरत नहीं। उन्होंने एक बार भी नहीं सोचा कि जंगल में, वन में रहूंगा तो क्या होगा? कितनी सुविधाएं जुटा करके ले गए साथ में? सुविधाएं कितनी ले गए थे साथ में? एक फूटी कौड़ी, एक दिन का अनाज, एक दिन का भाता, एक दिन का पाथेय भी साथ नहीं ले गए। कहां भोजन मिलेगा, कोई भरोसा नहीं है, कोई पता नहीं है। क्यों नहीं ले गए? जिसको अपने जीवन पर भरोसा होता है, उसको सब चीजें हर जगह सुलभ हो जाती है।

हम सेठ धन्नाजी की कहानी पढ़ें तो उनके लिए 'पगे पगे निधानानि' का कथन फलित होता है कि जहां उनके पग पड़े वहां धन। वहां खजाना। ऐसा क्या था उनके जीवन में कि जहां उन्होंने पग धरा, सारी बहारें उनके लिए तैयार हो गई? यदि हम बहुत बारीकी से इसका विचार करें तो हम मानेंगे कि पूर्व जन्म का पुण्य था। यह था, वो था। वो सब थे, किंतु वर्तमान का उनका पुरुषार्थ, आत्मविश्वास प्रबल था। कभी यह भय नहीं खाया कि मैं अकेला क्या करूंगा? घर से निकलना हुआ तो निकल गए। कुछ भी साथ नहीं ले गए। सारी सुविधाएं अपने आप आगे से मिलती गईं। मैं यह बात और बता दूं कि ऐसा जिसका आत्मविश्वास होता है, पुण्य स्वयं उसके लिए आगे से आगे व्यवस्था करता है। जो यहीं पर सारी बातें करने की कोशिश करता है, विचार करता रहता है कि करूं या नहीं करूं, उसके लिए सारी दुविधाएं दुनिया में खड़ी रहती हैं।

एक व्यक्ति को सुविधा मिलती है और एक व्यक्ति को दुविधा मिलती है। पुरुषार्थी को सदा सुविधा मिलती है और पुरुषार्थहीन, अपरिश्रमी, श्रम से मुंह चुराने वाले, अपने आपको बचाने की कोशिश करने वाले के सामने हर वक्त दुविधाएं मुंह बाये खड़ी रहेंगी। लोग लांघ लेते हैं नदियों को किंतु वह व्यक्ति नाला नहीं नाली को भी लांघने में हिचकेगा। एक व्यक्ति गढ़ जीत लेता है और एक व्यक्ति सांसें थामे रह जाता है। ओ हो! ओ हो! बस! इतना है कि उसको हार्ट अटैक नहीं आया। वह केवल देखने वाला होगा। वह केवल दर्शक होगा। वह मैदान में कभी उतरेगा नहीं। उसे अनुभूति हो ही नहीं सकती।

किसी माता के संतान नहीं है तो समाज में, सरकार में व्यवस्था है कि वह किसी बच्चे को गोद ले सकती है। वह अपने पसंद के किसी भी बच्चे को गोद

ले और शायद उसका रजिस्ट्रेशन वगैरह हो जाता है। रजिस्ट्रेशन के बाद वह उसका बच्चा हो गया। बच्चा तो हो गया किंतु बेटे को, संतान को जन्म देने का अनुभव क्या उसे हो पाएगा? (प्रतिध्वनि-नहीं) वह अनुभव उसे नहीं हो पाएगा। वैसे ही जब तक कोई स्वयं जिस फील्ड में नहीं बढ़ेगा, जिस रास्ते में नहीं जाएगा तब तक उसे उसकी अनुभूति नहीं हो सकती है।

शांति का रास्ता किधर है और अशांति का रास्ता किधर है? हमारा कमजोर मन अशांति इकट्ठी करता है और हमारा विल पॉवर, हमारा स्ट्रॉन्ग मन हमारे लिए शांति की पूरी व्यवस्था करता है। एक-एक उत्तम पुरुषों के चारित्र को आप सुनें। धन्नाजी की बात हो या राम जी की। इन लोगों ने कभी ऐसा महसूस नहीं किया कि मैं असहाय हूं। मेरे साथ कौन है? उनका चारित्र संदेश देता है कि मुझे किसी के साथ की आवश्यकता नहीं है। मैं किसी का चेहरा देखने के लिए खड़ा रहने वाला नहीं हूं। कुछ लोग लकीर के फकीर होते हैं और कुछ लोग फकीर होते हैं। वे लकीर के लिए नहीं, वस्तुत: फकीर होते हैं क्योंकि फिक्र को वे जीत लेते हैं। उनकी चिंता उनको सताती नहीं है। उनकी चिंता एक नया मार्ग प्रकट करती है।

राम ने एक नया पथ गढ़ दिया। धन्ना जी ने एक नए मार्ग का निर्माण कर दिया। हकीकत में यह असंभव बात नहीं है। यह कार्य जैसे उन इनसानों ने किया वैसे ही हम भी वैसा इतिहास रच सकते हैं। उससे भी और आगे बढ़कर नया इतिहास हम बना सकते हैं किंतु उसके लिए हमारे भीतर की ऊर्जा सकारात्मक होनी चाहिए। वह कभी भी नकारे की तरफ न जाए। 'मैं नहीं कर सकता', इस दिशा में उसका विचार नहीं होना चाहिए। जिसने कदम ही नहीं बढ़ाया, वह मंजिल पाएगा कैसे? कदम बढ़ाने वाला देर से भी हो किंतु मंजिल को पा लेता है। कदम नहीं बढ़ाने वाला ख्वाब देख सकता है, वह सपने देख सकता है किंतु मंजिल को प्राप्त नहीं कर सकता।

हम उस दर्पण में अपने चेहरे को देखेंगे और एक सबक लेंगे कि हम सपने देखने वाले, ख्वाब देखने वाले नहीं हैं। हम कदम बढ़ाने वाले हैं। यदि हमारी गिनती कदम बढ़ाने वालों में है, यदि हम कदम बढ़ाने वालों के स्तर पर चल रहे हैं तो हमें कोई चिंता करने की आवश्यकता नहीं है। यदि हम सपने देखने वाले हैं तो भी हमें कोई चिंता नहीं करनी चाहिए। काहे की चिंता! जब मैं कदम बढ़ाने वाला ही नहीं हूं तो आगे गड्ढा है या पहाड़, उससे मुझे क्या लेना-देना?

मैं क्यों चिंता करूं? किंतु होता यह है कि जो व्यक्ति चलने वाला होता है, वह चिंता नहीं करता पर सपने देखने वाला दूसरों को देख-देखकर चिंतित हो जाता है कि अरे! कैसे होगा?

बंधुओ! यह मनुष्य जन्म कुछ करने का है। यह एक अवसर है। 'खणं जाणाहि पंडिए।' इस अवसर को जानो। ध्यान देना! यह अवसर सदा हाथ में रहने वाला नहीं है। मुहूर्त ज्योतिष के अनुसार शुभ मुहूर्त बहुत कम आया करते हैं। हर 24 घंटे में शुभ मुहूर्त नहीं मिला करते और 24 घंटे के 24 घंटे सारे शुभ नहीं हुआ करते। जो घड़ी, जो मुहूर्त, जो वेला शुभ है, उसको साधना है। आज की शुभ घड़ी कौन-सी है? आज की शुभ घड़ी कौन-सी है? (एक श्रावक द्वारा उत्तर-यहां व्याख्यान में बैठे हैं, यह घड़ी शुभ है) व्याख्यान में बैठे हैं वो? 24 घंटे में वह शुभ घड़ी है जिस समय हमारे भीतर कुछ पुरुषार्थ, कुछ करने की भावना जगे। वह सबसे शुभ घड़ी है। उससे बढ़कर और जिंदगी में कोई शुभ घड़ी नहीं होगी। उससे बढ़कर उस दिन की कोई शुभ घड़ी नहीं होगी। इसलिए हम देखें कि मेरे भीतर क्या कुछ करने का भाव जग रहा है? क्या उत्साह जग रहा है? मैं क्या करने को उद्यत हूं? नहीं तो यह सोयी हुई जिंदगी तो सोयी हुई है ही।

सोये हुए व्यक्ति को यदि नदी के प्रवाह में छोड़ दें तो हो सकता है कि वह भी पानी के बहाव में हजारों किलोमीटर यात्रा कर ले किंतु क्या वह वस्तुत: उसकी यात्रा कही जाएगी? (प्रतिध्वनि-नहीं) वैसे ही हम सोये-सोये चाहे कितना ही जी लें, वह जीना क्या जीना है? (प्रतिध्वनि-नहीं) हम क्या मनुष्य जीवन को जान पाए हैं? हमने मनुष्य बनकर क्या विशेष किया? यदि हमने विशेष कुछ नहीं किया तो जैसे कीड़े-मकोड़े जन्म लेते हैं, वैसे ही हमारा जन्म हुआ और वैसे ही हमारी मृत्यु हो जायेगी। उसमें हमने न विशेष कुछ किया और न कुछ पाया। मनुष्य की बुद्धि, मनुष्य की सोच, मनुष्य की समझ कितनी प्रखर है? उसको कितनी श्रेष्ठ बुद्धि मिली है? कितनी सोचने की क्षमता मिली है। उसके बावजूद वह यदि नहीं सोचे, सही दिशा का चयन नहीं कर सके तो यह बहुत बड़ी विडंबना होगी। उसकी चूक होगी। हम यदि समय पर सावधान हो गए और चाहे कैसी भी कठिनाइयां आ गईं, हमने मुंह नहीं मोड़ा तो हम अपनी जिंदगी में कुछ ऐसा कर गुजरेंगे जो पीछे वालों के लिए एक पथ होगा, एक रास्ता होगा।

रास्ते पर चलने वालों की कमी नहीं है किंतु नए पथ का निर्माण करने

वालों की भारी कमी है। हम केवल रास्तों पर नहीं चलें, नए पथ का निर्माण भी करें। नई सोच, नई समझ, नई उमंग आज वैज्ञानिक युग में लोग कितने नए-नए आविष्कार करते हुए चले जा रहे हैं? नए-नए कितने फॉर्मूले ईजाद हो गए हैं। अध्ययन-अध्यापन के क्षेत्र में कहां से कहां विकास हो गया है। बहुत सारी चीजें मिलीं किंतु हमारे जीवन की शैली उलझी हुई पड़ी है। आज भी परिवार उलझता जा रहा है। आज भी घर में समस्याएं खड़ी हैं। आज भी अनबन बनी हुई है। भाई-भाई में बोलचाल नहीं है। बाप-बेटे में बोलचाल नहीं है। युग कितना आगे बढ़ गया और हम कहां खड़े रह गए? क्या हमें कभी विचार नहीं आता है? क्या हमें कभी ऐसी समझ नहीं आती कि मैं क्या कर रहा हूं? क्या इसी से मेरा कल्याण हो जाएगा? मैं अपने विचारों को उन्नत बनाने का प्रयत्न करूं। अच्छी सोच तब पैदा होती है जब या तो हम अच्छे लोगों के साथ रहें या अच्छे, श्रेष्ठ साहित्य का अध्ययन करें।

हमें आगम में एक संदेश मिलता है, एक संकेत मिलता है कि परमार्थ का सेवन करो। यदि हमारे में उतना सामर्थ्य नहीं है, अभी उतनी समझ नहीं आ रही है, तो परमार्थ के ज्ञाता की आसेवना करो। उसकी उपासना करो। उसका सान्निध्य प्राप्त करो। एक एडवोकेट, एक सीए बनने वाला किसी दूसरे सीए के पास रहकर, उसके अंडर में रहकर काम करता है तो वह जल्दी सीखता है। एक वकालत करने वाला भी वैसा ही करता है। उससे उसको सीख मिलती है।

वैसे ही हम परमार्थ की दिशा में अपनी सोच को बढ़ाएं। ऐसे लोगों का सहयोग, ऐसे लोगों का साथ जुटाएंगे तो हमारी सोच प्रखर बन जाएगी। यदि वह अवसर हमें नहीं मिलता है, ऐसे लोगों का संपर्क-सान्निध्य नहीं है तो ऐसे उत्तम पुरुषों का जीवन वर्णन, जीवन चारित्र जो हमें उपलब्ध हो, हम उसका अध्ययन करें। हां, अध्ययन करने के पहले हमको देखना होगा कि मेरी सोच और समझ क्या है? मैं क्या लेना चाहता हूं उस अध्ययन से? नहीं तो गुरुदेव एक कहानी फरमाया करते थे कि एक जगह महाभारत का वाचन हो रहा था। एक ग्रामीण महाभारत का वाचन पूरा होने के बाद आया और कहने लगा कि पंडित जी महाराज! मेरे से जिंदगी में एक चूक हो गई, एक भारी चूक हो गई। यदि यह महाभारत मैं पहले सुन लेता तो मेरी जिंदगी में बड़ा परिवर्तन हो जाता। पंडित जी बड़े खुश हो रहे थे कि भक्त के मन में वैराग जग रहा है।

पंडित जी ने बड़े हर्ष भाव से, उन्मुक्त भाव से पूछा कि भाई ऐसा क्या

लगा कि तुम्हारे जीवन में बहुत बड़ा परिवर्तन हो जाता? उसने कहा कि पंडित जी महाराज! मैंने आज ही सुना कि युधिष्ठिर ने जुआ खेलते हुए दांव पर अपनी पत्नी को भी लगा दिया। यह बात मुझे पहले मालूम पड़ी होती तो मैं भी अपनी पत्नी को दांव पर लगा देता। वह क्या करता? पहले मालूम हो जाता तो वह क्या करता? इसलिए महाभारत सुन रहा था क्या? आप भी इसीलिए व्याख्यान सुन रहे हैं क्या? (प्रतिध्वनि- नहीं) आचार्य पूज्य गुरुदेव का रतलाम में प्रवचन चल रहा था। आचार्य श्री ने फरमाया कि एका रहना चाहिए। यह बात सुनकर एक भक्त ने आंक लगा दिया। सुनने वाले किस दृष्टि से सुनते हैं यह तो वे ही जान सकते हैं। उधर ग्रामीण की पत्नी आई और कहा कि पंडित जी महाराज, मैं धन्य हो गई। यही बात पहले सुन लेती तो आज मेरी जिंदगी कुछ और ही होती। पंडित जी ने खीझते हुए पूछा कि तुम्हारी जिंदगी फिर क्या हो जाती? तुम भी बता दो। उस पत्नी ने कहा कि मुझे आज मालूम पड़ा कि द्रौपदी ने पांच पति वरे और पतिव्रता कहलाई। मैं अकेले एक पति के पीछे क्यों पड़ी रहती?

देख लो, सोच लो, विचार कर लो। यदि हमारी बुद्धि वैसी रहेगी तो ये उत्तम ग्रंथ पढ़े हुए भी काम के नहीं होंगे। इसलिए पहले हमको अपनी समझ सुधारने की दिशा में प्रयत्न करना चाहिए। कहते हैं कि एक जगह गीता का वाचन हो रहा था। एक भक्त बड़े भावों से गीता सुन रहा था। उसका चेहरा यह बता रहा था कि वह मुग्ध हो रहा था। पंडित जी ने गीता वाचन पूरा होने के बाद कहा कि भाई तुम बड़े मुग्ध हो रहे थे। क्या तुमने पहले गीता सुनी हुई है? उसने कहा कि नहीं पंडित जी महाराज, नहीं सुनी हुई है। पंडित ने पूछा कि क्या तुम्हें संस्कृत भाषा का ज्ञान है? क्या मैं जो बोल रहा था, उसके अर्थ को तुम समझ रहे थे? उसने कहा कि पंडित जी महाराज, मैं कुछ नहीं जान रहा था। पंडित ने कहा कि फिर तुम ऐसे खुश क्यों थे? तुम इतने मुग्ध क्यों हो रहे थे? उसने कहा कि मैं तो इतना समझ रहा था कि मैं अर्जुन हूं और आप श्रीकृष्ण। जैसे श्रीकृष्ण ने अर्जुन को गीता सुनाई, वैसे ही आज आपके मुंह से गीता सुन रहा हूं। यही मेरे परम हर्ष का विषय है।

सोचो कि कुछ भी समझ नहीं आ रहा है फिर भी उत्तम भाव हैं। ऐसे उत्तम भावों से यदि किसी ग्रंथ को पढ़ेंगे या महापुरुषों का सान्निध्य प्राप्त करेंगे तो जीवन के लिए नई दिशा हम ले सकेंगे। हम अपनी सोच को नहीं सुधार पाएंगे तो चाहे कितने भी, कैसे ही महापुरुषों के पास रह जाएं, तीर्थंकरों के साथ रह जाएं

हमारी समझ वैसी की वैसी बनी रहेगी। वह ऊपर नहीं उठेगी।

गौशालक और गौतम की एक ही राशि है। दोनों भगवान के पास आए। गौतम ज्ञानी हो गए और गौशालक अपनी चंचलवृत्ति के कारण भगवान महावीर की निकटता प्राप्त करने के बाद भी कुछ हासिल नहीं कर पाया। बल्कि उसकी नीयत थी, वह चाहता था कि भगवान को झूठा सिद्ध करूं। उसकी बुद्धि किधर जा रही थी? (प्रतिध्वनि-नकारात्मक दिशा में) ऐसी बुद्धि से हम अपने जीवन का विकास नहीं कर सकते। सही दिशा में सोचें, सही दिशा में बढ़ें। पीछे मुड़कर देखने की आवश्यकता नहीं है कि मैं कितना चला हूं। देखो कि मुझे कितना चलना है। देखना क्या है? कितना चल गया, यह देखना है या कितना चलना है यह देखना है!

कहते हैं कि गधा वैशाख में भी चरता है और सावन में भी चरता है। वैशाख में चरते हुए सुखी होता है पर सावन में चरते हुए दु:खी होता है। क्यों होता है? क्या हुआ? (सभा में बैठे एक श्रावक कहते हैं-सावन में उसको हरा-हरा दीखता है) वह खाता रहता है, खाता रहता है और पीछे मुड़कर देखता है कि इतनी सारी घास पड़ी है, कब तक खाऊंगा? और वैशाख में? दो-चार मुंह मारकर देखता है तो पीछे साफ। वह सोचता है कि आहा! मैंने बहुत चर लिया। मैंने मैदान साफ कर दिया। वह किससे तृप्त हो रहा है? पीछे देखकर। हमें पीछे देखकर तृप्ति नहीं होने वाली कि मैं कितना चल गया? यह देखने से मंजिल नहीं मिलेगी। मंजिल मिलेगी चलने से। अत: यह मत देखो कि कितना चला। सोचो चलना कितना है और चलते रहो। केवल सोचो मत।

कहां तक आ गए हम? अनादि काल से यहां तक आए। कितना आ गए और कितना बाकी है? कोई फाइनल डिसिजन हुआ क्या? (प्रतिध्वनि-नहीं) सुमुख गाथापति के जीवन में फाइनल डिसिजन हो गया कि वह पंद्रह भव करके मोक्ष में चला जाएगा। आनन्द श्रावक के जीवन का डिसिजन हो गया कि देवलोक में गया है और देवलोक से मनुष्य बनकर मुक्ति को प्राप्त कर लेगा। हम देखें कि हमको कितना चलना बाकी है? पीछे जो चलकर आए हैं, उसको देखने से मन में थकान आ जायेगी कि अरे इतना चल गया, अब थक गया। यह थकान नहीं आनी चाहिए। थकान नहीं आने के लिए पीछे कितना चला, यह मत देखो। यह देखो कि कितना चलना है? यह विचार कर हिम्मत जगाओ कि बस यह रही मंजिल। चलूंगा तो पा ही लूंगा।

हमारा उत्साह मंद नहीं पड़े। हम आगे की ओर बढ़ते चलें। चलते रहें। 'चरैवेति, चरैवेति।' वेदों में बताया गया है कि चलते रहो, चलते रहो। जब तक मुकाम पर नहीं पहुंचो तब तक पीछे मुड़ने की बात मत करो। मंजिल एक दिन तुम्हारे चरण चूमेगी। यदि पीछे देखते रहोगे तो गति मंद हो जाएगी, एकदम तीव्र नहीं रहेगी। बार-बार पीछे मुड़कर देखने से गति अवरोध होता है। इसलिए हम उन्नत पुरुषों का, महापुरुषों का आलंबन लें। उनके जीवन को देखें, पढ़ें और नई स्फुरणा अपने भीतर पैदा करें। नई स्फुरणा अपने भीतर अनुभव करें। यदि इस जीवन में सफल होना है, इसे सार्थक करना है तो नया जोश, नई उमंग अपने भीतर पैदा करके वह करें, जो पिछले अनन्त जन्मों में नहीं कर पाए। ऐसा कर वह करने में समर्थ बनेंगे, सक्षम बनेंगे। इसके लिए मन को सशक्त बनाएं। मन की जीत होगी तो दुनिया को जीतने वाले बनोगे।

'मनोविजेता जगतो विजेता' अर्थात् जिसने मन को जीत लिया, वह दुनिया को जीतने वाला बनेगा। मन आसक्ति में अटके नहीं, मन आसक्ति में रुके नहीं। अनासक्त भाव से और अनेकांत दृष्टि से हमारी गति चले, हमारी गति बढ़े। ऐसा हमारा प्रयत्न हमें अवश्यमेव मंजिल प्राप्त करायेगा।

इतना ही कहते हुए विराम।

17 नवम्बर, 2019
जैन मंदिर, गुलाब नगर
जोधपुर

13

महावीर का मंगल पथ

धर्म जिनेश्वर गाऊं रंग शुं भंग, म पडशो हो प्रीत जिनेश्वर...

एक प्रश्न पूछा गया कि धर्म क्या करता है? यदि आपसे ही पूछ लें कि धर्म क्या करता है, धर्म का कार्य क्या है तो क्या जवाब होगा? मैं ही उत्तर दे देता हूं। धर्म के दो काम हैं-मिटाना और यथावत रखना।

इसे थोड़ा समझेंगे हम। आत्मा पर पड़े मैल को मिटाना है। जो मैल लगा है, उसको हटाना और उसको साफ रखना, धर्म के दो काम हैं। जैसे मलीन वस्त्र को साबुन से साफ करके आलमारी वगैरह में रख देते हैं तो वह साफ बना रहता है, वैसे ही कर्मों की निर्जरा से आत्मा साफ होती है और संवर से वह सुरक्षित रहती है। उस पर कर्म रज लगती नहीं है।

थोड़ा और बारीकी से विचार करेंगे। दीवार पर तेल लगा हुआ है। अभी नया-नया रंग, ऑयल पेंट लगाया जा रहा है। इतने में अंधड़ आए तो उसमें मिट्टी चिपकेगी या नहीं चिपकेगी? (प्रतिध्वनि-चिपकेगी) और एक ऑयल पेंट सूख चुका है। अब कितना भी अंधड़ आ जाए, उस पर मिट्टी नहीं चिपकेगी। मिट्टी लगेगी पर चिपकेगी नहीं। जो मिट्टी लगेगी वह हवा के दूसरे झोंके से साफ हो जाएगी, हट जाएगी। वह मिट्टी झड़ जाएगी। तीसरा है कि उस पर ग्लास लगा दिया गया। अब दीवार को मिट्टी लगती नहीं है। ग्लास पर लगी मिट्टी दीवार पर नहीं लगेगी। ऐसा ही कार्य धर्म का है। हमारा एक पारिभाषिक शब्द है- संवर। इसका अर्थ होता है, कवर करना। आत्मा को ढक लेना। आत्मा को ढकने से कर्मों की रज उस आत्मा पर नहीं लगेगी। दूसरा कार्य, जो पहले लगा हुआ है, कर्म उसको झटकेगा।

कर्मों के दारुण वेदन की झलक यदि देखना चाहें तो दु:खविपाक सूत्र देखें। उसके एक अध्ययन में मृगालोढ़ा का वर्णन है। दुनिया में हमने भी बहुत-से

स्थान देखे होंगे, बहुत-से लोगों को देखा होगा। धनाढ्य लोगों को भी देखा। सुख में जीने वाले लोगों को भी देखा और दु:खी प्राणियों को भी देखा है। शोषण करने वालों को भी हमने सुना है। हम जान भी रहे हैं कि किस-किस प्रकार से लोग किस-किस का शोषण करते हैं। पोषण करने वाले पोषण भी करते हैं। हम जो भी क्रियाएं कर रहे होते हैं, मन से, वचन से, काया से, यह मत समझो कि केवल काया की प्रवृत्ति का ही कर्मबंधन होता है। मन से जो विचार किया जाता है और वचन से जो बोला जाता है, उससे भी कर्मों का बंध होता है।

हम भी कभी-कभी बड़े भयंकर कर्मबंध कर जाते हैं। हो सकता है कि काया से कोई प्रवृत्ति ही नहीं करें किंतु मन से जिसकी भयंकर प्रवृत्ति चल रही हो, किसी को मारने, प्रताड़ित करने, दु:खी करने, जैसे विचार चल रहे हों तो मानसिक रूप से भी वह कर्मों का बंध करने वाला होता है।

आचार्य पूज्य गुरुदेव दीक्षा के लिए तत्पर हुए। मुमुक्षु भाव जगा और घर में आग्रह होने लगा कि मेरा आज्ञा पत्र होना चाहिए, दीक्षा फाइनल होनी चाहिए। परिवार वाले करने को तैयार नहीं। मोह होता है, ममत्व होता है और जब तक अपना वश चलता है, उसे चलाया जाता है। गुरुदेव ने तेला कर लिया और कहा कि मैं पारणा तब तक नहीं करूंगा जब तक आज्ञा पत्र नहीं हो जाए। घर वालों ने लिख दिया आज्ञा पत्र। लिखकर उनको दे दिया। उन्होंने पॉकेट में रख लिया। ठीक है, गुरु महाराज को ले जाकर सौंप दूंगा और वे पारणा करने के लिए बैठ गए। जैसे ही एक-दो घूंट लिया होगा भाई ने पॉकेट से आज्ञा पत्र को निकाला और फाड़ दिया। वे उठ गए।

उन्होंने कहा कि मेरा जब तक विधिवत आज्ञा पत्र नहीं हो जाता है तब तक इस घर का अन्न-जल भी नहीं लूंगा। यह निश्चित है कि शरीर को टिकाने के लिए खुराक देनी पड़ेगी। जब तक चलेगा ठीक है। जिस दिन खाने की आवश्यकता होगी, खाना खाना ही होगा तो गांव के दूसरे घरों से लाकर भोजन कर लूंगा। दूसरे घरों में भोजन कर लूंगा पर इस घर से कुछ भी नहीं खाऊंगा। वापस आज्ञा पत्र हो गया। अब क्लियर हो गया, अब स्पष्ट हो गया। हो सकता है उनकी कोई विशेष बात नहीं रही हो। एक विनोद की बात रही होगी कि चलो इसका पारणा हो गया, आगे देखेंगे अब।

एक छोटी-सी बात है यह किंतु ऐसे ही हम कितनी बातें मजाक-मजाक में, विनोद-विनोद में कर लेते हैं। मजाक में यदि कोई बात कही जाती

है, उसके भी दुष्परिणाम होते हैं। एक घर में बेटा आया और मां से कहता है कि मां भूख लगी है, मुझे भोजन परोस दो। मां कहती है कि बेटा छींके में पड़ा है, तू ही उतार कर ले ले। बेटे को खीझ आ गई। उसने खीझ में कहा कि तू उठकर नहीं दे सकती क्या, तुम्हारे पैर टूट गए? मां भी जवाब देती है कि तुम्हारे हाथ टूट गए क्या जो तू छींके से भोजन नहीं उतार सकता? समझ नहीं होती है तो ऐसा बोला जाता है या यूं कहें कि ग्रामीण इलाकों में ऐसी भाषा सामान्य है। ऐसी भाषा भी कर्म बंधन कराने वाली होती है।

गुरु और शिष्य जा रहे हैं। दो अपराधियों को न्यायालय से न्याय मिलता है। दो अपराधी लगभग समान अपराध करने वाले किंतु एक को दंड दिया जाता है कि इसके हाथ काट दिए जाएं और दूसरे को दंड दिया जाता है कि इसके पैर काट दिए जाएं। आज ऐसी दंड विधा नहीं है। शारीरिक प्रताड़ना या शारीरिक अवयव के छेदन-भेदन का विधान नहीं है। मृत्युदंड अलग बात है किंतु शरीर से अपाहिज करने का मेरे खयाल से कानून में प्रावधान नहीं है। आप उसको जेल में रख सकते हो। आप उसको फाइनेंशियली, आर्थिक दृष्टि से दंड दे सकते हो किंतु अवयव का छेदन-भेदन नहीं कर सकते हो। किंतु एक जमाना ऐसा भी था। मेरे खयाल से बाहर कई देशों में ऐसा प्रावधान आज भी होगा। (सभा में ध्वनि- अरब देशों में अभी भी ऐसा प्रावधान है) बाहर के देशों में ऐसी भी स्थितियां बनती होंगी।

शिष्य ने गुरुदेव से पूछा, गुरुदेव दोनों का समान अपराध है फिर भी दंड में भिन्नता क्यों है? गुरु ने कहा, वत्स! हम केवल पेड़ के फलों को देख रहे हैं, उसके बीज को नहीं देख रहे हैं। हमको दीख रहा है कि यह दंड दिया गया है। हम केवल वर्तमान अपराध का ही महत्त्व समझ रहे हैं, किंतु केवल वर्तमान अपराध ही प्रधान नहीं होता है। उसके पीछे के कारण भी होते हैं। हम कई बार यह देखते हैं, लोगों को कहते हुए भी सुनते हैं कि मैंने ऐसा कुछ भी नहीं किया किंतु कुछ लोगों ने मुझे फंसा दिया है। सुनते हैं ना? (प्रतिध्वनि- हां) लोग बोलते हैं ना? (प्रतिध्वनि- हां) फंसा दिया है। तुमने अभी कुछ नहीं किया, फिर भी सरकार की दृष्टि में गुनहगार हो गए। इसका कारण क्या है? जब वर्तमान में मैंने कुछ भी नहीं किया फिर भी गुनहगार सिद्ध होता है तो इसके पीछे कोई न कोई रीजन होगा। बिना कारण गुनहगार क्यों बन गया? बहुत स्पष्ट है कि पहले उसने किसी पर झूठा दोषारोपण किया होगा।

हम गजसुकुमाल मुनि को सुनते हैं, गजसुकुमाल की कहानी सुनते

हैं। हमने यह भी सुना होगा कि सिर पर जो अंगारे रखे गए, वह 99 लाख भव पहले किए गए कर्मों का उदय था। कितने पुराने भव के कर्म? (प्रतिध्वनि-99 लाख भव पहले के कर्म) आपके खाते-बही कितने साल चलते हैं? आपका रिकॉर्ड कब तक मान्य किया जाता है? (प्रतिध्वनि- सात साल तक) सात साल और उसके बाद पुराने खाते हटा दें तो कोई बात नहीं है। किंतु यहां सात वर्ष ही नहीं, सात जन्म ही नहीं, 99 लाख भव। 99 लाख भवों का कर्जा, उस समय चुकाना पड़ा। हम क्या कर रहे हैं? एक-एक पॉइंट्स नोट हो रहे हैं। सीसीटीवी कैमरा या सेटेलाइट, हम जो भी कर रहे हैं, वहां पर रिकॉर्ड हो रहा है। हो रहा है या नहीं हो रहा है? (प्रतिध्वनि- हो रहा है) वहां हमें कैच किया जा रहा है। उसमें सब चीजें स्पष्ट हो रही हैं।

वैसे ही हमारे द्वारा जो भी किया जाता है - चाहे मन से करो, वचन से या काया से। मां ने बेटे से कहा था कि क्या तुम्हारे हाथ टूट गए जो छींके से रोटी स्वयं नहीं उतार पा रहा है? उस जीव ने जो अपराध किया है, उसको दंड मिला है कि उसके हाथ काट दिए जाएं और बेटे ने कहा कि तुम्हारे पैर टूटे गए हैं क्या? तुम उठकर क्यों नहीं दे रही हो? उसके बेटे के जीव को यह दंड मिला कि उसके पांव काट दिए जाएं।

बोओगे जैसा बीज, तरु वैसा लहराएगा।
जैसा करोगे, वैसा ही फल आगे आएगा।।

जैसे बीज बोयेंगे, वैसे ही फल आएंगे। 'बोया बीज बबूल का तो आम कहां से होय।' एक व्यक्ति ने बबूल का बीज बोया और उसके पड़ोसी ने आम का बीज। पड़ोसी के आम के फल को देखकर वह सोचे कि मेरे पेड़ पर आम लगेंगे तो क्या आम लगेंगे? (प्रतिध्वनि- नहीं) उसके आम नहीं लगेंगे। उसके जो फल होंगे, वे ही लगेंगे। जैसा पेड़ लगायेंगे, वैसे ही उसके फल लगेंगे।

वैसे ही बुरे कर्मों का नतीजा हमने सुन लिया मृगालोढ़ा का। दुःखविपाक सूत्र के 10 अध्ययन इसी प्रकार अशुभ कर्मों के विपाक से भरे हुए हैं कि जीव किस तरह से दुःखी होता है। व्यक्ति कई तरह से कर्म करता है। हम जब विहार करते हुए किसी गांव विशेष से निकलते हैं तो कहीं-कहीं कत्लखानों में बेशुमार जीवों की घात होती है। लोग कत्ल करते हुए नजर आते हैं। अभी उनको कुछ भी नहीं लग रहा है। काट रहे हैं। एक दिन में पता नहीं कितने जीवों की घात होती है। सन् 2000 में जो सर्वे हुआ था, उसके रिकार्ड के अनुसार बताया गया कि 44 हजार करोड़

पशु और पक्षी काटे गए थे। आज भी कितने कत्लखाने सुनते हैं? लगभग 36 हजार कत्लखाने हैं। (प्रतिध्वनि- 36 हजार कत्लखाने वैध हैं, बाकी अवैध भी होंगे)

उत्तर प्रदेश में योगी सरकार ने आते ही अवैध कत्लखानों को बंद कराने की तैयारी की। एक कत्लखाना बंद होता है तो कितने ही पशुओं का बचाव हो जाता है और एक नया कत्लखाना यदि चालू होता है तो कितने ही पशुओं का वध उसमें होने लगता है। दिल्ली स्थित एक कत्लखाना की प्रतिदिन की क्षमता कानूनन अढ़ाई हजार बड़े पशुओं को काटने की है। ढाई हजार पशु प्रतिदिन काटने की उसकी क्षमता है। एक पौंड अनाज तैयार होने में जितना पानी खर्च होता है, उससे 100 गुना पानी एक पौंड मांस के बनाने में खर्च होता है।[1] पानी क्यों सूख रहा है?

भगवान महावीर के सिद्धांतों के अनुसार यदि जीवन जीया जाता है तो अमन-चैन आ जायेगा। एक शोध के आधार से कल ही बताया गया है कि मांसाहार यदि बंद हो जाए तो प्रदूषण बंद हो जाएगा। कितनी बड़ी बात है? हम इसको कितना प्रचारित कर पाते हैं और इसके लिए कितना प्रयत्न कर पायेंगे, यह अब आप लोगों पर निर्भर है। भगवान महावीर ने कहा कि वेस्टेज किसी पदार्थ का नहीं होना चाहिए। एक गिलास पानी पीने के लिए लेते हैं, आधा गिलास पी लिया और आधा गिलास फेंकेंगे तो भगवान इसका निषेध करते हैं। पीने के लिए चार गिलास पानी भी पी सकते हैं, कोई बात नहीं है, कोई मना नहीं है। अगर आधा गिलास पानी पीना है तो आधा गिलास पानी ही लें। पानी वेस्ट नहीं होना चाहिए। पानी व्यर्थ नहीं जाना चाहिए। भगवान महावीर ने कहा कि

1. इंदौर निवासी और तीर्थंकर पत्रिका के सम्पादक डॉक्टर नेमिचन्द जैन ने शाकाहार क्रांति अंक (जनवरी 2001) में लिखा है कि एक पौंड गेहूं के उत्पादन में जितना जल लगता है, उससे 100 गुना जल एक पौंड मांस उत्पादन में लगता है। इसी अंक में उन्होंने सरकारी आंकड़ों के अनुसार बताया है कि आंध्र प्रदेश स्थित अलकबीर (रुद्रारम) कत्लखाने की सालाना पेयजल की खपत 48 करोड़ लीटर है। इसी प्रकार मुंबई स्थित देवनार कत्लखाना प्रतिवर्ष 44,58,000 करोड़ लीटर पेयजल का उपयोग कर रहा है। उनके अनुसार देश में अधिकृत कत्लखानों की संख्या 4000 है एवं अवैध कत्लखानों की संख्या लगभग 2 लाख है। आप विचार कर सकते हैं कि मांस उत्पादन में पेयजल की कितनी खपत होती है। जितने कत्लखाने खुलेंगे, पेयजल का संकट उतना ही गहरायेगा। इसके अतिरिक्त गाड़ियों की साफ-सफाई में केवल जोधपुर में ही लाखों लीटर पानी की खपत होती है। यह कथन जोधपुर चातुर्मास काल में एक प्रवचन में कर चुका हूं।

किसी भी पदार्थ की अवज्ञा नहीं होनी चाहिए, अवहेलना नहीं होनी चाहिए। चाहे निर्जीव पदार्थ भी क्यों न हो। एक कागज भी व्यर्थ में नहीं फाड़ा जाना चाहिए। आपको मालूम है कि कागजों के निर्माण में कितनी वनस्पतियों का नाश होता है? कितने पेड़ों को काटा जाता है, कितने बांस के पेड़ों को काटा जाता है, तब जाकर आपके लिखने के लायक कागज बनता है।

हम जितने पदार्थों का दुरुपयोग करेंगे, वह कभी भी लाभ देने वाला नहीं होगा। भगवान महावीर ने हमें अपनी वृत्ति का संक्षिप्तीकरण करने के लिए कहा है। अपनी वृत्ति को संक्षिप्त करो अर्थात् अपनी आवश्यकताओं को कम करो। यह जीने का तरीका बताया। जीने के लिए मिनिमम आवश्यकताएं होंगी। उसके लिए मनाही नहीं है किंतु आज व्यक्ति आवश्यकताओं को बढ़ाते हुए चला जा रहा है, जो उचित नहीं। जब आवश्यकताएं बढ़ाना भी उचित नहीं तो वस्तुओं या पदार्थों को अनावश्यक नष्ट करना कथमपि उचित नहीं है।

मुझे नहीं मालूम कि जोधपुर में विवाह-शादी के प्रसंगों पर कितने पदार्थ होते हैं और कितनी आवश्यकता होती है। बड़े-बड़े शहरों में डेढ़ सौ, दो सौ पदार्थ, आइटम्स बनते हैं। क्या वस्तुत: इतनी आवश्यकता होती है? क्या उतनी अपेक्षा होती है? जितनी आवश्यकताएं बढ़ाएंगे हम उतनी ही हिंसा को न्योता देंगे। उतना ही वेस्टेज होगा। इसलिए हमें अपनी आवश्यकताओं को सीमित करना चाहिए। वृत्ति को संक्षिप्त करना भी बताया गया है। हम अपनी आवश्यकताओं को सीमित करते हैं, इससे हमें लाभ होता है। हमारे कर्मों की निर्जरा होती है और नए कर्म आते हुए रुक जाते हैं। हम आवश्यकताओं को जितना फैलाते हुए चले जाते हैं, उतना ही हिंसा को न्योता देते हैं। उतना ही प्राणी वध करने की दिशा में हमारे कदम बढ़ते हैं। इसलिए हमें वृत्ति संक्षिप्त की ओर ध्यान देना चाहिए।

बहुत सारी चीजों का, बहुत सारी समस्याओं का समाधान हमको वृति संक्षिप्त करने से मिलेगा। अपनी मर्यादाओं को, अपनी आवश्यकताओं को सीमित करने से मिलेगा। जब आवश्यकताएं सीमित हो जाएंगी तो फिर मुझे क्या चाहिए? मुझे क्या चाहिए? अनावश्यक आरंभ किसके लिए करूंगा? किसके लिए परिग्रह-संग्रह करूंगा?

शालिभद्र के पास अपार संपत्ति थी किंतु आवश्यकताएं सीमित थीं। अपेक्षाएं नहीं थीं। मौज-शौक की बात नहीं थी। सिर्फ जीवन जीने की बात थी। एक तरफ मृगालोढ़ा को देखें दूसरी तरफ शालिभद्र को देखें। दोनों का अंतर

हम स्वयं अनुभव कर पाएंगे। यह किसकी बदौलत है? कर्मों के कारण।

कर्मों के खेल निराले हैं।

ऋषि मुनि भी इससे हारे हैं।

बंधुओ! अशोक का अर्थ होता है, शोक रहित। कोई शोक नहीं। यह व्यवस्था तब होती है, जब हमारी अपेक्षाएं, हमारी आवश्यकताएं सीमित होती हैं। हमें किसी प्रकार का शोक नहीं रहेगा। जब हम अपना फैलाव करते हैं, फिर अपेक्षा पूरी नहीं होती है, आवश्यकताएं पूरी नहीं होती हैं तो मन खिन्न होता है। मन उदास होता है। उद्यान का पर्यायवाची आराम होता है। आराम यानी जिसमें आत्मा रमण करे। जिसमें आत्मा रमण करे उसको उद्यान कहा गया है। शोक रहित आत्मा आत्मरमणता की ओर गति करती है। हम अपनी आवश्यकताओं को कम करेंगे, सीमित करेंगे। आत्मरमणता की ओर, आत्म-लीनता की ओर, आत्म परिसंलीनता तप की ओर हम अपनी आत्मा को बढ़ाने में समर्थ होंगे। ऐसे जो अपने आपको समर्थ बना लेता है, हो सकता है वह बहुत सारे कर्मों से हलका हो जाए।

जैसा मैंने बताया कि ऑयल पेंट हो रहा हो और आंधी का एक झोंका आये तो ढेर सारे रेत के कण, ढेर सारी धूल उस दीवार पर लग जाए। वैसे ही जब हम कषाय करते हैं, क्रोध करते हैं, मान करते हैं, माया करते हैं, लोभ करते हैं, राग-द्वेष, ईर्ष्या, डाह, जैसी किसी भी प्रवृत्ति में जाते हैं, तो उस समय हमारी आत्मा की दीवार पर ऑयल पेंट हो रहा है। उस समय कर्मों की रज बड़ी तीव्र गति से आती है और आत्मा के साथ चिपक जाती है। उसके कड़वे परिणाम, दारुण परिणाम आत्मा को भोगने पड़ते हैं। इसलिए बंधुओं हमें प्रभु महावीर के निर्देश को ध्यान में लेना चाहिए। प्रभु महावीर ने जो संकेत किया है उसको ध्यान में लेते हुए हम अपनी आवश्यकताओं को सीमित करें।

श्रावक के 12 व्रत हैं। उस पर समीक्षा करेंगे तो संदेश मिलेगा कि अपनी आवश्यकताओं का परिणमन करो, सीमित करो। उसकी सीमा करो। अपना फैलाव सीमित करो। फैलाव करना है तो दिल का फैलाव करो। दिल की उदारता होनी चाहिए। दिल इतना उदार होना चाहिए कि सारा विश्व हमारे दिल में समा जाए। 'वसुधैव कुटुंबकम्।' पूरी दुनिया, पूरा विश्व हमारे दिल में समा जाए। हम अपनी अपेक्षाओं को इतनी सीमित करें कि इस सृष्टि से थोड़ा सा लेकर मैं अपने जीवन का निर्वाह कर सकूं। बस केवल मैं अपने लिए सीमित अन्न-

जल-वस्त्र आदि ग्रहण करके अपने जीवन को चलाऊंगा। इस प्रकार का लक्ष्य वृत्ति संक्षेप से बनता है।

भगवान महावीर ने दो प्रकार का धर्म बताया। एक तो अणगार धर्म, दूसरा आगार धर्म। स्थूल प्राणातिपात विरमण, यह आगार धर्म और अणगार धर्म में सर्वथा प्रकार से प्राणातिपात का त्याग करना होता है। अर्थात् सूक्ष्म से सूक्ष्म, छोटे से छोटे प्राणी की भी घात हमारी किसी प्रवृत्ति से नहीं होनी चाहिए। अभी आप सब का ध्यान खिंच गया कि फोटो लिया। पास की बिल्डिंग से किसी जैनेतर बहिन ने मोबाइल से फोटो ली थी। संघ कार्यकर्ताओं ने उसे डिलीट करवा दिया। अब आज के युग की एकदम छोटी-सी बात है, किंतु एक क्लिक करने में तेउकाय के असंख्यात जीवों की घात होती है। दिन में मोबाइल कितनी बार चलता है? आवश्यकता से चलता है या बिना आवश्यकता के भी चलता है? (सभा में बैठे एक श्रावक कहते हैं- बिना आवश्यकता के ज्यादा चलता है) श्रावक थोड़ी ना चलाता है। श्रावक नहीं चलाता है ना? (प्रतिध्वनि- चलाते हैं बावजी!)

(कुछ लोग हँसने लग जाते हैं) नहीं, नहीं, हँसने की बात नहीं है। सोचने की बात है। सोचने की बात है कि ये चीजें हमारी संवेदना को कम करने वाली हैं। जीवों के प्रति जो संवेदना हमारे भीतर होनी चाहिए, वह संवेदना हमारी क्षीण होती जा रही है। हम हरी घास पर बहुत खुले मस्तिष्क से, मस्ती से चलते हैं। मन में एक बार भी विचार नहीं आता है कि मैं कहां चल रहा हूं। चलने के लिए जगह है तो फिर मैं हरी वनस्पति पर पांव क्यों दूं? बोलो जाते हैं या नहीं जाते हैं? और आज यदि बड़ी सोसाइटी का भोजन, बड़े विवाह शादी का भोजन है तो उस स्थान पर लॉन तो नहीं है ना! आपके तो त्याग होगा लॉन पर जाने का? (प्रतिध्वनि-नहीं है) करा दूं पच्चक्खाण कि भोजन के लिए लॉन पर नहीं जाएंगे।

ढेर सारे जीवों की घात करके हम क्या खाना गले उतारेंगे? एक छोटा-सा 12-13 वर्ष का बच्चा था। इंदौर के सौरभ सिंघवी ने पच्चक्खाण ले लिया कि एक साल लॉन पर जाकर खाना नहीं खाऊंगा। एक जगह विवाह-शादी में ऐसा प्रसंग हुआ कि वहां विवाह के भोजन का आयोजन लॉन पर था। उसके अलावा दूसरी जगह ही नहीं थी जाने की। उसके पापा चले गए, मम्मी चली गई और उसको कहा कि अभी तो चले आओ, फिर आलोचना कर लेना, प्रायश्चित्त कर लेना। उसने कहा कि एक खाने के लिए मैं त्याग को छोड़ दूं और लॉन पर इतने सारे जीवों की घात कर दूं खाली खाने जैसी सड़ी चीज के लिए? मुझे ऐसा खाना

नहीं खाना। ऐसा खाना ही नहीं खाना। उसके पापा बोले कि मैं लाकर दे दूं तो वह बोला कि आप लाकर भी दोगे तो मेरे लिए लाओगे। मैं ऐसा खाना नहीं खाऊंगा।

12-13 वर्ष के बच्चे के भीतर यह संवेदना है। 'छोटा छोटा बालूड़ा, आया धर्म की ओट' आप लोग बोल रहे हो तो किसको सुना रहे हो? कहते हैं कि सम्राट चन्द्रगुप्त को स्वप्न आये, जिसमें एक सपना था कि एक बैलगाड़ी माल से भरी हुई है और छोटे-छोटे बछड़े जुते हुए हैं। बड़े बैल नहीं हैं, छोटे-छोटे बछड़े जुते हुए हैं। उन्होंने भद्रबाहुस्वामी से उस स्वप्न का अर्थ जानना चाहा तो उन्होंने बताया कि आने वाले समय में छोटे-छोटे लोगों में वैराग जगेगा। छोटे-छोटे बच्चों में वैराग जगेगा, भाव जगेगा और जिन शासन की गाड़ी को वे खींचने वाले बनेंगे। आप कहोगे कि इसीलिए बावजी हम तो बोलते ही नहीं हैं।

'छोटा छोटा बालूड़ा, आया धर्म की ओट' जो कहा गया है, वही बता रहा हूं मैं। वह छोटा बालक 12 वर्ष का, उस समय उम्र 12 वर्ष की थी। वह कहता है कि लॉन पर जाकर इतने जीवों की घात करके खाऊं? ऐसा खाना मुझे नहीं खाना। बोलो, 12 साल के बच्चे में यह समझ है किंतु हमारी समझ? सोचते ही नहीं हैं एक बार भी। विचार भी नहीं आता है कि पांव रखूं या नहीं रखूं? जूते पहने हुए हैं और चलते हैं तो जूते से कट-कट मर जाते होंगे बेचारे जीव। कितने जीवों की घात होती है? क्या ऐसा खाना जैनियों के और श्रावक के गले उतरेगा? इतने जीवों की घात करके?

यह संवेदना कम क्यों पड़ी? साफ है कि हमने अपेक्षाओं को धीरे-धीरे इतना बढ़ा लिया कि संवेदना विलीन होती जा रही है। ये आकांक्षाएं जितनी बढ़ाई हैं, ये सारी की सारी हमारे लिए घातक बनी हैं। हमारे जीवन के लिए घातक बनी हैं। इसलिए हम अपनी आवश्यकताओं को सीमित करें। कोई फर्क नहीं पड़ेगा यदि आपने प्रतिज्ञा ले ली तो। आप कहोगे कि बावजी नहीं जाएंगे तो लोग क्या कहेंगे? पच्चक्खाण है कि मैं लॉन पर चलकर खाना नहीं खाऊंगा। लॉन पर लाकर देंगे तो भी खाना नहीं खाऊंगा। क्या फर्क पड़ेगा? रोज विवाह-शादी में जाकर खाते हो क्या? घर पर खाते हो या नहीं खाते हो? (प्रतिध्वनि- खाते हैं) अब लॉन में नहीं खाना विवाह-शादी में। शादी में जाने की मनाही नहीं है किंतु लॉन पर चलकर हिंसा करके ऐसा खाना कैसे खाएं?

पहले जब मोबाइल नहीं था तो उस समय भी काम चलता था या नहीं चलता था? (प्रतिध्वनि- चलता था) फोन भी कभी-कभार लगा लेते थे, पड़ा

रहता था पर अब तो जैसे ही थोड़ा आदमी फ्री हुआ नहीं कि मोबाइल चालू कर दिया। एक बार भी मन में विचार नहीं आता कि इससे कितने जीवों की घात कर रहे हैं! आता है विचार? नहीं कुछ तो गेम खेलेंगे। अन्य कोई कार्यक्रम देखने लग जाएंगे। पता नहीं क्या-क्या करने के लिए चालू कर देंगे? यह ढेर सारी हिंसा, यह प्राणी वध अनावश्यक ही हो रहा है। उसको भगवान ने अनर्थ हिंसा कहा है। दो प्रकार की हिंसा बताई है। एक अर्थ हिंसा और दूसरी अनर्थ हिंसा। अर्थ हिंसा उसे कहा गया है जो जरूरी है, जिसके बिना काम नहीं चल सकता।

खाना शरीर के लिए जरूरी है। रहने के लिए मकान की आवश्यकता हो सकती है। पहनने के लिए वस्त्रों की आवश्यकता हो सकती है तो खाना, पहनना, रहना आदि ये सारी चीजें यदि कोई श्रावक उपलब्ध करता है तो वह जरूरी है। वह उसके लिए आवश्यक है किंतु हर समय मोबाइल मचकाते रहना जरूरी नहीं है। हर समय लॉन पर टहलते रहें, यह जरूरी नहीं है। यह अनर्थ हिंसा है। जो चीजें जरूरी नहीं हैं, उनका उपयोग यदि श्रावक करता है तो वह अनर्थ दंड का भागी बनता है। अनर्थ हिंसा का भागी होगा। श्रावक को ऐसी अनर्थ हिंसा से बचना चाहिए। आठवां व्रत आपका क्या है? अनर्थ दंड विरमण। अनर्थ दंड का मैं सेवन नहीं करूंगा। किंतु अर्थ का ध्यान नहीं होता है और हम प्रतिक्रमण कर देते हैं, 'मिच्छा मि दुक्कडं' बोलते जाते हैं। उसकी सार्थकता कितनी सिद्ध होती है?

बंधुओ! थोड़ा सा ही चला मृगालोढ़ा का वर्णन। मूल बात है कि हम कर्मों के खेल नहीं समझ पाते हैं और क्रिया करते हुए चले जाते हैं। हिंसा, झूठ, छल, कपट और पता नहीं क्या-क्या करते हुए चले जाते हैं। उन सारी क्रियाओं से बंधने वाले कर्मों का परिणाम हमारी आत्मा को ही भोगना पड़ेगा। इसलिए हम अपनी आवश्यकताओं को सीमित करें। अपने जीवन को मर्यादित करें। भगवान महावीर के सिद्धांतों के अनुसार, सिद्धांत के धरातल पर जीने का प्रयत्न करें। इससे हमें शांति मिलेगी, समाधि मिलेगी। केवल हमको ही शांति और समाधि नहीं मिलेगी बल्कि पूरे विश्व को शांति और समाधि का संदेश जाएगा। पूरा विश्व शांति और समाधि की दिशा में गति करेगा। हम ऐसा प्रयत्न करें व अपने आपको धन्य बनाएं। इतना ही कहते हुए विराम।

18 नवम्बर, 2019
अशोक उद्यान अपार्टमेन्ट्स, जोधपुर

14

खोलें आँख अस्तित्व की

शांति जिन एक मुज विनति, सुणो त्रिभवन राय रे...

'शांति स्वरूप केम जानिये।' एक प्रश्न खड़ा किया गया है कि शांति के स्वरूप को कैसे जानें? इस प्रश्न के पीछे गहरा रहस्य छिपा हुआ है। किसी अन्य की शांति हमें नहीं मिल सकती है। शांति का उपाय हमको स्वयं करना पड़ेगा।

आज रेडीमेड का युग चल रहा है। सब चीजें रेडीमेड मिलनी चाहिए किंतु यहां यह ध्वनित किया गया है कि तुम्हें पुरुषार्थ करना होगा, परिश्रम करना होगा, मेहनत करनी होगी। बिना पुरुषार्थ के सफलता नहीं मिलेगी। बिना परिश्रम के कार्य सिद्ध नहीं होगा। बिना मेहनत के परिणाम नहीं मिलेगा। हमें मेहनत करनी होगी, परिश्रम करना होगा।

यहां एक दूसरी बात और सामने आती है। एक प्रश्न खड़ा होता है कि क्या मेहनत करने से सफलता मिल जाती है? क्या परिश्रम करने से आदमी सफल हो जाता है?

हम बहुत लोगों को मेहनत करते हुए देखते हैं। किंतु बहुत-से ऐसे लोगों को सफल नहीं होते हुए भी देखते हैं। वे बहुत मेहनत करते हैं, बहुत परिश्रम करते हैं। सुबह-शाम देखो तो वही हालत नजर आती है। यह भी देखा जाता है कि कम मेहनत और कम परिश्रम करने वाले सफलता को प्राप्त कर लेते हैं। वस्तुत: केवल मेहनत और परिश्रम ही सफलता की सूचक नहीं है। सफलता के लिए एक और तत्त्व की भी आवश्यकता है। एक भाव की भी उसमें आवश्यकता रही हुई है। वह है, समर्पण भाव। उसके बिना सफलता नहीं मिल सकती है।

समर्पण भाव का अर्थ क्या है? (सभा में बैठे कुछ श्रावक दरवाजे की तरफ देखने लग गए तो आचार्य भगवंत बोले कि दरवाजे की तरफ मत देखो, दरवाजे की तरफ नहीं देखना है। मेरी तरफ देखो। किधर देखना है? दरवाजे की

तरफ आंखें नहीं जानी चाहिए।)

समर्पण का अर्थ क्या है? जब तक समर्पित भाव से नहीं सुनेंगे तब तक कुछ हासिल होने वाला नहीं है। समर्पण की व्याख्या भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में भिन्न-भिन्न प्रकार से हो सकती है किंतु सारांश यदि लें तो वह है जो प्रभु महावीर ने कहा कि जो करो उसी में तन्मय हो जाओ, उसी में लीन हो जाओ। अपने को उससे जुदा मत रखो। यह भाव, यह विचार हमारे बनते हैं और हम उसमें यदि जीते हैं तो हमारा परिश्रम सफल हो जाता है। कम परिश्रम विशेष लाभ देने वाला होता है।

एक व्यक्ति समर्पित नहीं है, तन्मय नहीं है, तल्लीन नहीं है। वह काम तो करता है किंतु मन बिखरा हुआ है। आचारांग सूत्र में भगवान महावीर कहते हैं कि 'अणेगचित्तो खलु अयं पुरिसो।' यह पुरुष अनेक चित्त वाला हो गया है। आज हम सफल नहीं हो रहे हैं, उसका भी एक कारण है कि हम बिखरे हुए हैं। जब तक हम बिखरे हुए रहेंगे, सफल नहीं होंगे। चाहे सामाजिक क्षेत्र हो या पारिवारिक अथवा अपने स्वयं के जीवन का क्षेत्र। क्षेत्र कोई भी हो समर्पण भाव जरूरी है।

सामाजिक क्षेत्र में आज हम क्यों पिछड़ रहे हैं? राष्ट्र के भी पिछड़ने का एक बहुत बड़ा कारण है- जातीय भेद, धर्म के भेद। ऐसे अनेक भेदों में हमको विभाजित कर दिया गया। मानवता खंड-खंड में बंट गई। जब मानवता खंड-खंड में बंट जाती है तो सफल होना मुश्किल है, सफल होने में व्यक्ति समर्थ नहीं हो पाता। उसकी सफलता संदिग्ध हो जाती है। बल्कि यह समझ लो कि सफल हो ही नहीं पाता। सामाजिक क्षेत्र में भी हम कहीं न कहीं किसी मानसिकता में अपने आप में बंटे हुए हैं। जब तक हम बंटे रहेंगे, जब तक यह मानसिक भिन्नताएं हमारी बनी रहेंगी तब तक हम किसी एक कार्य को अच्छी तरह से संपन्न करने में समर्थ नहीं होंगे।

वही दशा हमारी स्वयं की है। जब तक हम मानसिक रूप से एक नहीं बन जाएंगे तब तक हमें सिद्धि मिलने वाली नहीं है। भगवान महावीर साधना में लीन हो गए। एक ही लक्ष्य किया। वैसा ही लक्ष्य हम बनाएं। जिस कार्य को करें उसी में समर्पित हो जायें तो सफलता मिलेगी। शायद मंडन मिश्र नाम होगा, जिसने ब्रह्म सूत्र के शांकर भाष्य पर टीका लिखी थी। उनकी पत्नी रोज उनको खाना पहुंचाती। समय पर खाना पहुंचाती, पानी पहुंचाती। जब उनका टीका लिखने का कार्य पूरा हुआ उस दिन पत्नी को देखा, जो अर्द्ध वार्धक्य को प्राप्त

हो चुकी थी। उन्होंने कहा, तुम कौन हो? वह पूछते हैं कि तुम कौन हो? उसने बताया- मैं आपकी अर्द्धांगिनी, भामती हूं। यह सुन वे विचार में पड़ गए कि धन्य इसके समर्पण को। मैंने तो लिखने का काम किया है। इसने लिखने का तो काम नहीं किया पर इसकी साधना को कम नहीं आंका जा सकता। मेरी पत्नी होते हुए भी उसने एक बार भी मेरे पास कोई शिकायत नहीं की और मेरे कार्य में हर वक्त सहयोगी बनती रही।

उसका नाम भामती था तो उन्होंने उस टीका का नाम 'भामती टीका' रख दिया। बात यह नहीं है कि टीका पर उसका नाम रख दिया। बात यह है कि इतने वर्षों तक लिखने में उनका माइंड था तो पूरा दिमाग उसी में लगा हुआ था। साथ ही भामती की साधना यह थी कि वह उतने वर्षों तक बिना व्यवधान किये उनकी सेवा में तत्पर रही। ऐसा नहीं कि पति मेरे से बात ही नहीं कर रहे हैं। आज की कोई औरत होती तो धाम धूम मचा देती और शायद कोर्ट से तलाक ले लेती। पूणिया श्रावक की सामायिक के बारे में हम बहुत बार सुनते हैं, सुन चुके हैं। बावन डूंगरी जितना धन उसकी दलाली में कम पड़ रहा था। क्या खासियत थी ऐसी? खासियत यह थी कि वह सामायिक में समर्पित हो जाता। जब उस समय दूसरा कोई विकल्प रहता ही नहीं है तो दूसरी तरफ उसका ध्यान जाता ही नहीं है।

वंदना और पर्युपासना के लिए भी यह बताया गया है कि जिसकी उपासना करने जा रहे हो, उसमें तल्लीन हो जाओ। मन, वचन, काया एक हो जानी चाहिए। जब तक मन, वचन, काया अलग-अलग रहेंगे तब तक गाड़ी नहीं चलेगी, तब तक सफलता नहीं मिल सकती। जब तीनों एक हो जाएंगे, एकाकार बन जाएंगे तो सफलता में कहीं देर नहीं लगेगी। गजसुकुमाल मुनि दीक्षित हुए। दीक्षा लेते ही उनके भीतर अध्यवसाय पैदा हुआ कि भगवंत जल्दी से जल्दी मोक्ष जाने के लिए कौन-सा उपाय है? मुझे वह उपाय बताएं जिससे मैं बहुत शीघ्रता से मोक्ष को प्राप्त हो जाऊं। मुक्ति को प्राप्त हो जाऊं।

हम भी सामायिक, पौषध, संवर तो करते हैं। जगा कभी ऐसा विचार? एक बार भी जगा ऐसा विचार? कभी ऐसी भावना हुई कि वह दिन कब आएगा? ऐसा वह दिन मेरा कब आएगा कि मैं जल्दी से जल्दी मुक्ति को प्राप्त कर पाऊं? यह भाव, इस प्रकार का जो अध्यवसाय पैदा होता है, उस अध्यवसाय का नाम है, संवेग। उसी को संवेग कहते हैं। बस मौका मिले और अभी छलांग लगा लूं।

पर करेंगे नहीं। ऐसा भाव और ऐसी तन्मयता जब आती है तो फिर सफलता पीछे नहीं रहती है। वह सफल होता है।

गजसुकुमाल मुनि की तीव्रता देखकर भगवान अरिष्टनेमि कहते हैं कि महाकाल श्मशान पर पहुंचकर भिक्षु की 12वीं प्रतिमा की आराधना करो। वह शार्ट मार्ग है। भिक्षु की 12वीं प्रतिमा स्वीकार कर लेना ही मोक्ष का हेतु नहीं है, सिद्धि का हेतु नहीं है, मुक्ति का हेतु नहीं है। भिक्षु की 12वीं प्रतिमा स्वीकार कर लेने के बाद भी साधक भटक सकता है। थोकड़ा जिसको याद है वह बता सकता है कि यदि उसकी आराधना भव्य तरीके से संपन्न होती है तो अवधिज्ञान, मनपर्यव ज्ञान या केवलज्ञान, इन तीनों ज्ञानों में से कोई एक ज्ञान प्रकट हो जाता है और यदि उससे भ्रष्ट हो जाता है, चित्त स्खलित हो जाता है, मन, वचन, काया तीनों एक न हो, उनमें बिखराव हो जाता है तो डिप्रेशन में आ जाएगा, पागल हो जाएगा। पता नहीं कौन-कौन-से रोग उसको घेर लेंगे। इसलिए भिक्षु की 12वीं प्रतिमा स्वीकार कर लेना ही मुक्ति का हेतु नहीं है। किंतु भगवान देख रहे थे कि इसका हेतु क्या बनने वाला है? इसलिए भगवान ने गजसुकुमाल मुनि को वह रास्ता बताया। गजसुकुमाल मुनि उसमें लीन हो गए। उनके सिर पर अंगारे रखे गए। वे अंगारे धधकते रहे पर उनका न मन स्खलित हुआ, न काया स्खलित हुई और न ही वचन।

सीमेंट, गिट्टी और बालू को मिलाकर बनाई गई छत सूखने पर एकदम कड़क हो जाती है। फिर तीनों को अलग-अलग करना हो तो किया जाएगा? (प्रतिध्वनि- असंभव है) हो सकता है वह संभव हो, किंतु जहां मन, वचन, काया एक हो गए, द्रढ़ीभूत हो गए तो उनका बिखरना मुश्किल हो जाएगा। गजसुकुमाल मुनि की वही तल्लीनता, वही तद्रूपता मोक्ष दिलाने में सहायक बनी।

आज भी कई लोग पूछ लेते हैं कि अभी तो मोक्ष नहीं है। मोक्ष ऐसे ही थोड़ी ना मिलेगा। वहां किस अवस्था में रहना होता है? ऋषभ जी मोक्ष में किस अवस्था में रहना होता है? अरे! वहां पर ऐसे हिलना-डुलना नहीं होता। वहां हिलना-डुलना नहीं चलता है। यह शैलस्तंभ, पत्थर का खंभा हिलता है क्या? शायद भूकंप आए तो वह भी हिल जाए। ज्यादा प्रेशर हो तो वह भी जमीन में धंस जाए, पर सिद्ध भगवान के वहां जिस रूप में आत्म प्रदेशों का स्वरूप रहा हुआ है, हजारों, लाखों, करोड़ों हाथी मिलकर भी उसको खींचें तो हिला भी

नहीं सकते हैं। उनमें प्रकंपन भी पैदा नहीं कर सकते। इतनी सघनता, इतनी दृढ़ता, इतनी स्थिरता होती है। यह स्थिरता हमें यहां पर प्राप्त करनी होती है। वहां तो जाकर बस हमने जगह बनाई है। वहां स्थित हो जाना है। किंतु यह स्वरूप निखरेगा कहां? यह स्वरूप यहीं पर प्रकट होगा। इसलिए हम अपनी पहचान करें कि मेरा मन, मेरा वचन, मेरी काया कितनी चंचल है? वह कितनी स्थिर है?

सामायिक क्या है? मान लो, किसी ने पूछ लिया कि सामायिक का अर्थ क्या समझे? हम कह देंगे कि समभाव, यह भाव, वो भाव, जो भी है। उपाध्याय यशोविजय जी कहते हैं कि 'सामायिकं स्थिरतारूपम्।' सामायिक स्थिरता रूप है। सामायिक क्या है? (जोर देकर) स्थिरता रूप है। तुम कितने स्थिर बने? तुम्हारे भीतर प्रकंपन है या नहीं है? किसी प्रकार का प्रकंपन नहीं होना। कैसा ही संकट आ जाए किंतु हमारा चित्त प्रकंपित नहीं हो, तब सामायिक सिद्ध होती है।

हमने सामायिक को बहुत हलका-फुलका बना लिया है। मुंहपत्ती बांध लो, चादर चोल-पट्टा बदला तो बदला, नहीं बदला तो नहीं बदला। कपड़े हमने चेंज किए या नहीं किए, एक मुहूर्त मिला लिया कितने मिनट में आ जाएंगे? (प्रतिध्वनि- 48 मिनट में) 48 मिनट में। यदि अकेले बैठे सामायिक कर रहे हैं तो घड़ी में कितनी बार देखेंगे? जिनके पास चाबी वाली घड़ी नहीं है, रेती की घड़ी हो तो हर थोड़ी देर में हिला-हिला कर देखेंगे कि रेती झरनी बंद तो नहीं हो गई। मन सामायिक में है या कहां है? बस 48 मिनट पूरे करने हैं।

पूणिया श्रावक की सामायिक इतनी स्थिर, इतनी स्थिर कि बीच में मगध सम्राट श्रेणिक भी आ गए घर में तो उसमें कोई विचलन पैदा नहीं हुआ। भागचंद जी[1], अभी मालूम पड़ जाए कि नरेंद्र मोदी आ रहे हैं तो कितनी बार ध्यान जायेगा और कितनी बार आपकी आंखें दरवाजे की तरफ जाएंगी? या बैठे रहेंगे सामायिक में? शरीर पड़ा रहेगा सामायिक में किंतु मन कहां जाएगा? (प्रतिध्वनि- दरवाजे की तरफ) और आ गए तो खड़े तो नहीं हो जाएंगे उनके लिए? बोलो क्या होगा? मान लो कि संत नहीं हैं और आने के बाद लोग उनकी फोटो ले रहे हैं तो बड़ा मन दु:खेगा कि सामायिक में बैठे हैं। यदि मौका लगा तो लुक-छिपकर चले जाएंगे तो अलग बात है।

कहते हैं, 'कैसे हो कल्याण, करनी काली है। नहीं होगा भुगतान हुण्डी

1. श्री भागचंद जी सिंगी (अजमेर-जोधपुर)

जाली है।' सफलता ऐसे नहीं मिलेगी। हम कितने ही समय तक धर्म की आराधना करते रहें, सफलता नहीं मिलेगी। हमने यह भी तो सुना है कि साधु जीवन एक बार नहीं, कितनी बार ले लिया है। ये ओगे, पातरे, वस्त्र इकट्ठे करें तो एक मेरु पर्वत नहीं, कई मेरु पर्वत खड़े हो जाएं। अब आप सोच लो कि हमने कितनी बार साधु जीवन ले लिया! सफलता क्यों नहीं मिली? क्योंकि हमारा मन, वचन, काया बिखरे हुए रहे। वे एक रूप नहीं बन पाए। सीमेंट, गिट्टी और रेती (बजरी) जो अभी अलग-अलग पड़ी है उन तीनों को मिलाने वाला पानी नहीं मिला तो तीनों अलग-अलग पड़े रहे गए और वह एक मिल जाता है तो तीनों को एक कर देता है।

वह एक नहीं मिला। वह समर्पणा नहीं आई तो तीनों अलग-अलग पड़े रह गए। समर्पणा का भाव आ जाए तो तीनों एकमेक हो जाते हैं। फिर उनमें कोई भिन्नता नहीं होती। फिर उनमें कोई दूरी नहीं होती। सफलता और शांति आदमी को तब मिलती है। जब वह इसमें सफल न हो जाए, जब तक सफलता मिले नहीं तो शांति कहां से मिलेगी? हमारा प्रयत्न ही नहीं रहा होगा किंतु मैं जहां तक सोचता हूं कि हमारा प्रयत्न अभी कुछ नहीं है। बोलो, अपने मन को साधने के लिए हम कितना प्रयत्न करते हैं? सामायिक का नियम लिया हुआ है, इसलिए कर रहे हैं या मन को साधने के लिए?

गन्ना देखा होगा ना? बांस देखा होगा ना? उनके बीच-बीच में गांठें होती हैं तो गांठें क्यों आ रही हैं? गांठ किसलिए? (प्रतिध्वनि- स्थिर रखने के लिए) वह अभी बढ़ रहा है। बिना गांठ के वह ऊंचाई प्राप्त नहीं कर सकता, क्योंकि पतला है। यदि गांठ बीच में नहीं आएगी तो गिर जाएगा। बीच-बीच में गांठें आने का मतलब है कि और आगे बढ़ना, और आगे बढ़ना और आगे बढ़ने के लिए बीच-बीच ये गांठें आ जाती हैं। इससे वह मजबूती से आगे बढ़ता हुआ चला जाता है। दूसरी जगह पोली होगी किंतु गांठ की जगह सख्त है या नहीं है? (प्रतिध्वनि- सख्त है)

वैसे ही मन, वचन, काया सख्त होगी तो उतनी ही ऊंचाइयों को प्राप्त करते हुए चले जाएंगे। पर हमने कभी मन को ऊंचाइयों तक ले जाने के लिए कोई प्रयत्न ही नहीं किया। सामायिक जरूर करते हैं। स्वाध्याय भी करते होंगे। 100 गाथा, 200 गाथा कभी पढ़ लेते हैं। जैसे तोता बोलता है, वैसे ही हम बोलते हुए चले जाते हैं। उसका स्वाद भीतर कितना गया है?

एक कहानी सुनी होगी। कहानी क्या एक एग्जाम्पल, एक उदाहरण। एक शिष्य गुरु से कहता है कि गुरुदेव इतना समय हो गया, मैं साधना कर रहा हूं, उसका स्वाद ही नहीं आ रहा है, लग ही नहीं रहा है कि मैं साधना कर रहा हूं। करता जा रहा हूं पर उसकी कोई अनुभूति नहीं हो रही है। जो अनुभूति होनी चाहिए, वह नहीं हो रही है। मैं आपको बताऊं कि यदि कोई थोड़ी भी तकलीफ आ जाए तो सामायिक छूट जाती है। क्यों छूट जाती है? क्योंकि हमें जो आनन्द आना चाहिए, उसकी जो अनुभूति और जो स्वाद आना चाहिए, वह नहीं मिला। बस करना है इसलिए कर रहे हैं, कर रहे हैं और वह भी संत-महात्मा आए तब तक तो ठीक है और नहीं आए तो फिर? कभी हो जाएगी तो हो जाएगी, नहीं होगी तो नहीं होगी।

कई लोग नियम लेते हैं। साल-छ: महीने में जब वापस मिलते हैं, तब पूछने पर नियम के बारे में उत्तर यह आता है कि दो महीने तक ठीक था। दो महीने के बाद विवाह-शादी आ गई, ये हो गया, वो हो गया और फिर वह लिंक टूटा तो... (प्रतिध्वनि- टूटता जाता है) अध्यक्ष साहब चातुर्मास में दो-दो दया करने के लिए सोगन ली हुई है। आपके भी सोगन ली हुई है ना! (अध्यक्ष जी बोलते हैं- हां बावजी 11 सामायिक का नियम दिलाया था) हां, 11 सामायिक का भी था और दो-दो दया का अलग दिलाया हुआ है। किंतु जिन्होंने नियम लिया हुआ है, उनमें से कितने लोग समता भवन में उपस्थित हैं? आप कहेंगे कि अभी तो उधारी चल रही है। वह उधारी पूरी होगी या धीरे-धीरे बढ़ती चली जाएगी? वह धीरे-धीरे पूरी हो जाएगी? पता नहीं। क्यों? क्योंकि उसमें जो तन्मयता होनी चाहिए, जो आनन्द होना चाहिए, वह हमने लिया नहीं। महाराज ने हमको नियम दिया, प्रेरणा दी तो कर लिए पच्चक्खाण, दो-दो दया कर भी ली किंतु दया करके किया क्या? जो उसमें तन्मयता आनी चाहिए, वह नहीं आ पायी, उसका मजा नहीं आया।

यही कारण है कि हमारी धार्मिक क्रियाएं छूट जाती हैं और हम उनसे अलग रह जाते हैं। पूणिया श्रावक की सामायिक क्यों महत्त्वपूर्ण थी? बहुत स्पष्ट है कि वह उसमें एकमेक हो जाता था। उससे यह फायदा होता है कि हमारा मनोबल स्ट्रॉन्ग होता है। हमारी आत्मा की शक्ति विकसित होती है, आत्मा मजबूत हो जाती है, आत्मा बलवान हो जाती है। कोई भी संकट और कैसी भी परिस्थितियां आ जाएं आत्मा विचलित नहीं होगी। मेरे सामने कैसा भी प्रसंग

हो तो विचलन की स्थिति नहीं बनेगी।

भगवान कहते हैं कि यदि मारने के लिए कोई उतारू हो जाए तो निडर बन खड़े रहो। जैसे अर्जुन माली मुद्गर लेकर खड़ा है। कब वह गिर जाए, कुछ पता नहीं। उसके बावजूद सेठ सुदर्शन के रोम खड़े नहीं हुए? क्यों नहीं रोंगटे खड़े हो गए? खड़े हुए क्या रोम? (प्रतिध्वनि-नहीं) आखिर कारण क्या था? उसने अपने मन, वचन, काया को एक कर लिया, गोपन कर लिया। कछुआ अपने पैरों को सिकोड़कर अपनी छतरी में ले लेता है तो ऊपर कोई वार करे तो उसका कुछ बिगड़ता नहीं है किंतु उसकी चंचलता उसके लिए घातक बन जाती है। थोड़ी देर बाद वह देखता है कि खतरा चला गया या अभी तक है। वह एक पैर बाहर निकालता है और आदमी उस पर वार कर देता है। यदि उसकी चंचलता, चपलता नहीं हो तो उसको हानि पहुंचाना, उसका वध करना बहुत कठिन काम है।

वैसे ही हमारे भीतर जब चंचलता आती है, चपलता आती है तो उसी में हमारी घात होती है। उसके बिना घात होना संभव नहीं है। सामायिक बहुत महत्त्वपूर्ण साधना है किंतु हम उसमें समर्पित नहीं हो पाते हैं। हम सामायिक करते जरूर हैं किंतु करने के साथ करना क्या चाहिए, वह नहीं करते हैं। सामायिक में क्या करना चाहिए? धर्म की श्रद्धा है तो है फिर भी जो होना चाहिए, वह चीज नहीं है। क्या नहीं है?

श्रद्धा के साथ उसमें जो लीनता आनी चाहिए, जो समर्पण भाव आना चाहिए, वह नहीं है तो वह श्रद्धा भी हमारी हमें लाभ देने वाली नहीं होती।

मैंने एक बार पहले भी बताया था सुलसा की श्रद्धा के बारे में कि ब्रह्मा, विष्णु, महेश और 25वें तीर्थंकर के दृश्य सामने आ गए। हूबहू आकृतियां सामने आ गईं। हमारे सामने बहुरुपिया भी आवे तो वह विचलित करता है। हम उसके पीछे दौड़ने लगते हैं। वहां पर भी ब्रह्मा, विष्णु, महेश के आकार को, रूप को देखने के लिए जनता टूट पड़ी किंतु वह नहीं आई तो नहीं ही आई। कौन नहीं आई? (प्रतिध्वनि- सुलसा) वह समर्पण भाव था, वह श्रद्धा का धर्म के प्रति रहा हुआ भाव था। उसमें लीनता थी। दूसरे से मतलब है ही नहीं। वही अम्बड़ संन्यासी जब सुलसा के घर पर पहुंच जाता है तब 'निस्सिही-निस्सिही' शब्द का प्रयोग करता है। वह सोचती है कि कोई श्रावक आया है। कोई स्वधर्मी भाई आया है। वह आगे बढ़ती है किंतु जैसे ही अम्बड़ संन्यासी को देखती है वहीं

खड़ी हो जाती है। वह वहीं खड़ी हो जाती है।

सकडाल पुत्र, एक नाम दे रहा हूं। कौन था सकडाल पुत्र? सकडाल स्थूलिभद्र का पिता था किंतु यह सकडाल पुत्र दूसरा है। वह सकडाल पुत्र पहले गौशालक को मानता था। उसके धार्मिक गुरु गौशालक थे। भगवान महावीर ने उसको बोध दिया और उसने धर्म तत्त्व को जाना। धर्म तत्त्व को जानने पर वह उसमें इतना मक्कम हो गया, इतना मक्कम हो गया कि जब गौशालक को मालूम पड़ा कि सकडाल पुत्र ने मेरी आम्ना को छोड़ दिया तो वह उसको प्रभावित करने लगा। उसने सकडाल पुत्र से कुछ बात करने की सोची किंतु सकडाल पुत्र उनको कोई तवज्जो नहीं दे रहा है, कोई महत्त्व नहीं दे रहा है।

हम कहेंगे महाराज इतना तो नहीं हो सकता है। यह मानवता से भी बात अलग हो गई कि घर में कोई आ गया, किंतु उससे बात ही नहीं करना। यहां बात है अन्य तीर्थी को महत्त्व नहीं देने का। जब गौशालक ने देखा कि किसी भी तरह से ये मेरी बात को सुनने के लिए तैयार नहीं है तो भगवान महावीर की प्रशंसा शुरू की कि भगवान महावीर ऐसे हैं, भगवान महावीर वैसे हैं। तब सकडाल पुत्र कहता है कि तुमने मेरे देवगुरु, धर्मगुरु रूप भगवान महावीर की प्रशंसा की है इसलिए पाट, पाटला आदि जो भी तुम्हें कुल निर्वाह के लिए जरूरी है, उसको ले जा सकते हो।

व्यवहार, व्यवहार के स्थान पर होता है और धर्म, धर्म के स्थान पर। श्रद्धा के साथ समझौता नहीं होता है। श्रद्धा, श्रद्धा होती है और व्यवहार, व्यवहार। वह दृढ़ता तब होती है जब धर्म के प्रति हमारा मन समर्पित हो जाता है। धर्म के प्रति हमारा मन लीन हो जाता है तो फिर कठिनाइयां सामने नहीं आती। अर्हन्नक श्रावक को देव कहते हैं कि तुम्हारे जहाज को मैंने अंगुली पर उठा लिया है अब बोलो कि धर्म झूठा है नहीं तो गिराऊंगा नीचे किंतु अर्हन्नक श्रावक क्या अपनी वृत्ति को छोड़ता है? क्या धर्म को झूठा-गलत मानता है? (प्रतिध्वनि- नहीं)

सत्य, सत्य ही रहेगा और सत्य यदि जहाज को तिराने में समर्थ नहीं है तो असत्य तो कभी भी नहीं तिरा सकता है। धर्म से जहाज नहीं चलेगा तो अधर्म से तो कभी भी नहीं चल सकता। यह उसकी श्रद्धा थी। आज हमारी श्रद्धा गलत हो चुकी है। इसलिए हम मानते हैं कि बिना झूठ के व्यापार नहीं हो सकता। हमने यह पक्का मान लिया कि बिना झूठ के व्यापार नहीं चलेगा, बिना छल के

व्यापार नहीं चलेगा। यह हमने पक्का मान ही लिया तो झूठ-कपट कैसे छोड़ सकेंगे। क्या हमारे पहले के श्रावक झूठ बोलकर व्यापार करते थे? आनन्द श्रावक छल-कपट करके व्यापार करता था? (प्रतिध्वनि- नहीं) क्या उसी प्रकार से उसने धन कमाया था? (प्रतिध्वनि- नहीं) नहीं कमाया। किंतु हमने मान लिया कि बिना झूठ बोले गति नहीं है।

पूज्य गुरुदेव कई बार फरमाया करते थे कि यदि तुम यह मान लो कि झूठ के बिना काम नहीं चलता है, बिना झूठ के व्यापार नहीं चलता है तो एक दिन की प्रतिज्ञा कर लो कि आज सच बोलना ही नहीं। ठीक है? (एक श्रावक बोलते हैं- बावजी ऐसे तो काम नहीं चलेगा) अरे! आप तो कह रहे हो कि झूठ के बिना नहीं चलता और आप ही कह रहे हो कि सच के बिना काम नहीं चलता। किसी ने प्रतिज्ञा ले ली। घर पर गया। श्रीमती जी ने पूछा कि भूख लगी है तो हां बोलना नहीं है कि लगी है। ना ही कहना पड़ेगा। वह पूछे कि भूख हो तो खाना परोस दूं। उस समय भूख लगी भी हो तो कहना तो यही होगा कि नहीं लगी है। क्योंकि आज सच बोलना नहीं है। ठीक है? चलेगा ना? दो में से एक निर्णय कर लो कि सच बोलना या झूठ बोलना! आज निर्णय कर लो कि क्या बोलना! सच बोलना या झूठ बोलना! देख लो। कोई भी आ जाए, कैसा भी प्रसंग आ जाए, इनकम टैक्स वाले आकर पूछ लें कि फाइल कहां है तो क्या जवाब दोगे? आज तो झूठ नहीं बोलना! आज तो सच बोलना है। कर लो निर्णय सच या झूठ!

सफलता के लिए जितना परिश्रम जरूरी है, उससे भी बढ़कर समर्पण जरूरी है। उसी में लीन हो जाओ। एक रोकड़ खाता-बही का काम करने वाले का ध्यान यदि इधर-उधर बिखरा रहे तो गलती होगी या नहीं होगी? और उसी में दत्त-चित्त होकर काम करता है तो? गुरुदेव ये भी फरमाया करते थे कि यदि उसको मालूम पड़ जाए कि हो सकता है कभी भी इनकम टैक्स की रेड आ जाये और हमको पता है कि खाते में कहीं थोड़ी मिस्टेक है तो उस समय भूख-प्यास कुछ भी लगती नहीं है। मालूम ही नहीं होता है कि उसको भूख-प्यास लगी है। उसको ध्यान ही नहीं पड़ेगा। उसको पानी पीने की इच्छा ही नहीं होगी। कोई उसके पास पानी की गिलास रखकर गया है तो वह भूल जाएगा कि यहां कोई पानी की गिलास रखकर गया है। इतना उसका एकाग्र भाव हो जाता है। खाता-बही को ठीक करने में वह इतना लीन हो जाता है।

हम लीन हो पाए क्या, बताओ? हम धर्म साधना में कितने लीन हो पाए? हमारी लीनता बढ़े, हमारी समर्पणा बढ़े इसके लिए हमने क्या प्रयत्न किया? हमको क्या प्रयत्न करना चाहिए? वैसा यदि प्रयत्न हो गया तो शास्त्रकार कहते हैं, ग्रंथकार कहते हैं कि हजारों बार नमन करने की और हजारों बार वंदना करने की आवश्यकता नहीं है। लंबी-चौड़ी वंदना करने की कोई जरूरत नहीं है। भगवान ऋषभ देव से लेकर भगवान महावीर तक किसी भी एक तीर्थंकर को एक भी वंदना कर ले, एक बार नमस्कार कर ले, तो वह एक नमस्कार ही सारे कर्मों का नाश करने वाला होगा।

एक से ज्यादा नमस्कार नहीं चाहिए। सौ, दो सौ, पांच सौ नमस्कार नहीं चाहिए। ज्यादा नहीं चाहिए। केवल एक नमस्कार में तर जाएगा। कब तर जाएगा? कब तर जाएगा? जब उसमें एकमेक हो जाएगा। भरत चक्रवर्ती अरिसा भवन में केवलज्ञानी हो गए। मरु देवी माता हाथी के हौदे पर बैठे हुए ऋषभ देव भगवान में लीन हो गई और कर्मों का क्षय कर दिया। हम सामायिक में केवल समय नहीं बितावें। उसमें आत्मशक्ति को विकसित करें। हम उसमें मन को केंद्रित करें। हमारा मन, वचन, काया उसमें लीन हो जाये।

इस प्रकार की दृढ़ता हमारी साधना का ध्येय होना चाहिए। उस ध्येय को उसी प्रकार से साधने का प्रयत्न करेंगे तो वह प्रयत्न, उसमें रहा हुआ समर्पण हमें सफलता दिलाने वाला बनेगा। साधना की उस गहराइयों में पहुंचेंगे, जिस गहराई में पूणिया श्रावक पहुंचा, जिस गहराई में कामदेव श्रावक पहुंचा, जिस गहराई में सकडाल पुत्र और सुलसा श्राविका पहुंची। हम भी उस गहराई में पहुंच सकते हैं किंतु तब, जब उसमें समर्पित हो जाएं, लीन हो जाएं। ऐसा हमारा प्रयत्न बने।

इतना ही कहते हुए विराम।

21 नवम्बर, 2019
जैन स्थानक, पाल गांव
जोधपुर

“हम केवल सुनें ही नहीं, हम पढ़ें ही नहीं, हम संवर और पौषध करें ही नहीं, उसको शोधें। स्वयं को साधें। अपने भीतर की शोध करें कि मेरे जीवन में दुविधा कितनी है।”

“हमें नमन से निर्वाण तक पहुंचना है। पर जब तक नमन सही नहीं होगा तब तक निर्माण नहीं होगा और बिना निर्माण के निर्वाण नहीं हो पायेगा। इसलिए नमें।”

प्रकाशक

साधुमार्गी पब्लिकेशन

अन्तर्गत – श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ

समता भवन, आचार्य श्री नानेश मार्ग,
श्री जैन पी. जी. कॉलेज के सामने,
नोखा रोड, गंगाशहर, बीकानेर–334401 (राज.)
दूरभाष : 0151–2270261, 3292177, 2270359

visit us : www.sadhumargi.com
e-mail : ho@sadhumargi.com

राम चमक रहे भानु समाना

Price : ₹ 100/-